In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

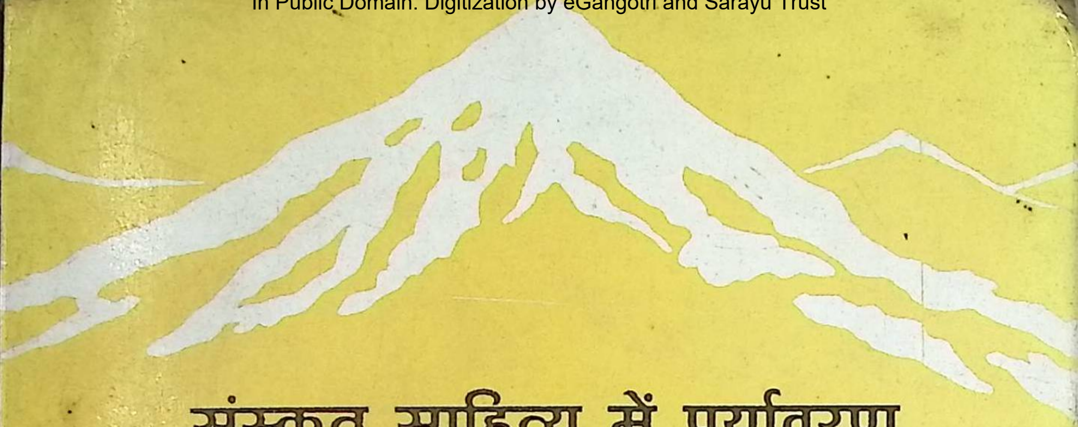

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण
एवं
कालिदास की वनस्पतियाँ

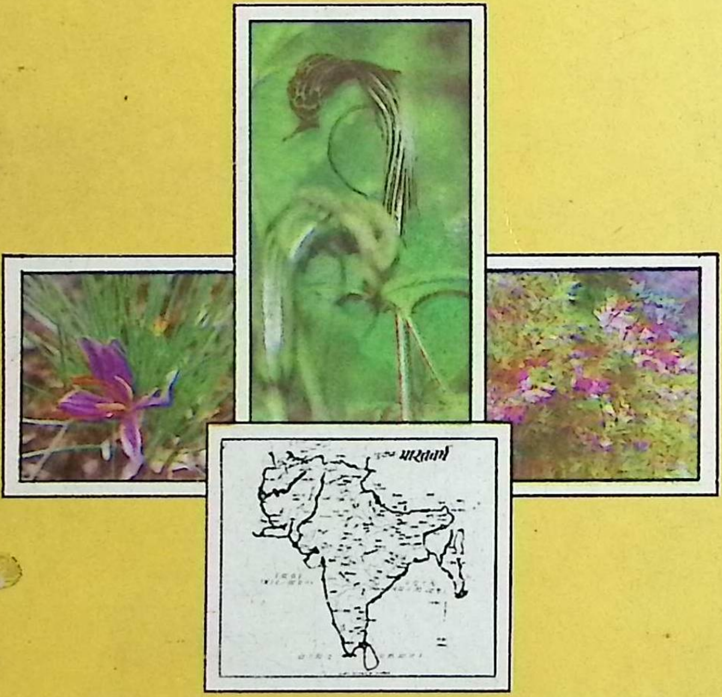

डा० मायाराम उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियां

(सचित्र)

स्व. कविराज गौरी लाल चानना
भूतपूर्व सम्पादक एवं प्रधानमंत्री, अ.भा.आ. महासम्मेलन
के परिवार की ओर से
महासम्मेलन पुस्तकालय को सादर भेंट

भूमिका :

आचार्य वृहस्पति देव त्रिगुणा

लेखक :

डॉ. मायाराम उनियाल
वनौषधिविद्यापति (श्री लंका)
सहायक निदेशक (आयुर्वेद)

बी-98, अवन्तिका, सैक्टर-1, रोहिणी, दिल्ली-110085

प्रकाशक :

श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर

दतिया, मध्य प्रदेश

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकाशक :

श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर

दतिया, मध्य प्रदेश

प्रथम संस्करण : 1994

प्रतियां : 1500

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 160.00

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26

रेखा चित्र : कु. सीमा उनियाल

मुद्रक : प्रतीक इन्टरप्राईजेस,
भाना भवन, ए–18, अवन्तिका, सैक्टर 2, रोहिणी, दिल्ली–110085.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राक्कथन

कवि को प्रकृति के साथ जितना सामंजस्य होता है उतना किसी और श्रेणी के मानव का नहीं होता। वस्तुतः कवि का निर्माण जिन तत्वों से होता है वे तत्व ही कुछ ऐसे हैं जो अन्तर्दृष्टि से सुरूचि और सहानुभूति के निरन्तर प्रभाव से कार्यशील रहते हैं। कल्पना जो वस्तुओ एवं भाव के साधारणीकरण की प्रतिभा जिसके दर्शन सामान्यतः मनुष्य में नहीं होते। प्रकृति के साथ कवि का यह सामंजस्य प्रकृति के विभिन्न रूपों की मार्मिक अभिव्यक्तियों में सहज ही प्रतिबिंबित होता रहता है और प्रकृति इन नाना रूपों में भी अत्यंत मनोहारी है। कवि सम्राट कालिदास के काव्यों में तो मानव प्रकृति के नैसर्गिक सजीव एवं मनोहारी दृश्यों की छटा बराबर परिलक्षित होती रहती है।

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियाँ डा. मायाराम उनियाल की नवीनतम रचना है। उन्होंने कालिदास के साहित्य एवं बाल्मीकीय रामायण आदि संस्कृत साहित्य में वर्णित वनस्पतियों के संदर्भ स्थलों का संकलन किया है जिनका कि आयुर्वेद द्रव्यगुणशास्त्र से विशेष सम्बन्ध है। यह संकलन जहां शिक्षाप्रद है, वहीं मनोरंजक भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्य में वन, उपवन, नदी, तड़ाग, उद्यान, पुष्पधारा यंत्र (फुवारे) आदि प्राकृतिक सौंन्दर्य की महत्ता कवियों ने अपनी रचनाओं में सदैव व्यक्त की है। वनौषधि सम्बन्धी द्रव्यगुणशास्त्र का भण्डार वेदों से लेकर पौराणिक ग्रंथों एवं भारतीय संस्कृति में विस्तृत रूप से उपलब्ध है जिसका कि गौरव भारत के कवियों एवं ऋषि–मुनियों को है।

डा. उनियाल जी ने संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं वनस्पतियों सम्बन्धी विषय सामग्री का चयन, तथा निघण्टु ग्रंथों में वर्णित गुणधर्मों का उल्लेख इस पुस्तक में किया है वह उपादेय है। ग्रंथारम्भ में कालिदास के काव्यों में वनों की विशेषताये, उनके काव्यों में वर्णित भौगोलिक स्थान, हिमालय के नैसर्गिक स्वरूप का चित्रण, पर्यावरण का महत्व बाल्मीकीय रामायण में वर्णित वनस्पतियों के सन्दर्भ एवं वानस्पतिक स्वरूप तथा गुणधर्मों की जानकारी दी है, वह प्रशंसनीय है।

डा. उनियाल जी द्वारा लिखित पुस्तक का प्रकाशन आयुर्वेद वाड्.मय अनुसंधान की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान कहा जा सकता है। डा. उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनस्पति शास्त्र के न केवल अधिकारी विद्वान् हैं, अपितु इन्होंने स्वयं तीन दशकों से दुर्गम पर्वतांचलों का वनौषधि अनुसंधान के लिए कई बार भ्रमण किया और अनेक संशोधनात्मक लेखों तथा पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

अतः प्रस्तुत पुस्तक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति में वन एवं पर्यावरण संरक्षण की उपादेयता में भी यह सामग्री विशेष उपयोगी सिद्ध होगी ही, साथ ही आयुर्वेद के विद्वानों एवं जन–साधारण के लिए भी उपादेय होगी ऐसी मेरी धारणा है। इस उपयोगी पुस्तक के प्रणयेता डा. मायाराम उनियाल जो केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद (केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार) नई-दिल्ली में सहायक निदेशक के पद पर सेवारत हैं धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक का साहित्यिक क्षेत्रों एवं आयुर्वेद जगत में हार्दिक स्वागत होगा।

....

नई दिल्ली
जून, 1994

राजवैद्य आचार्य बृहस्पतिदेव त्रिगुणा
पद्मभूषण
अध्यक्ष, वैज्ञानिक परामर्शदात्री समिति (आयुर्वेद)
केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद
(भारत सरकार) नई दिल्ली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्व. कविराज गौरी लाल चौतन्य
भूतपूर्व सम्पादक एवं प्रधानमंत्री, अ.भा.आ. महासम्मेलन
की ओर से
महासम्मेलन पुस्तकालय को सादर भेंट

प्रस्तुति

कवि का प्रकृति के साथ जितना सामंजस्य होता है उतना किसी और श्रेणी के मानव का नहीं होता। वस्तुतः कवि का निर्माण जिन तत्वों से होता है वे तत्व ही कुछ ऐसे हैं जो कि अंतर्दृष्टि से प्रवाहित होते रहते हैं। कल्पना जो वस्तु स्थितियों को ऐसे आलोक में देखती हे जिसका साधारण मानव की दृष्टि में अभाव होता है। प्रकृति के साथ कवि का सामंजस्य प्रकृति के विभिन्न रूपो की मार्मिक अभिव्यक्तियों में सहज रूप से प्रतिविम्बित होती रहती है और प्रकृति इन नाना रूपों में अत्यंत मनोहारी दृष्टिगोचर होती है। जिसमें वनस्पति जगत, पक्षिजगत, वन्यप्राणिजगत आदि हैं। कवि सम्राट विश्वविख्यात महाकवि कालिदास के काव्यों में वर्णित सामग्री के ज्ञान का अध्ययन नितांत आवश्यक है। संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास ने एक महान काव्यकार के रूप में जन्म लिया। आम धारणा के अनुसार कवि कालिदास राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक अद्वितीय पंडित थे। यद्यपि इनके कविकाल में काफी विवाद है तथापि इनका काल ईसवी सन् से पंद्रवी शताब्दी से पूर्व माना जाता है। संस्कृत साहित्य में कवि कालिदास का एक महान कवि रूप में स्थान है। मनुष्य का चित्र व्यक्त करने, स्वभाव का वर्णन करने और मधुर छन्दो को गूंथने में कालिदास के समान कोई कवि नहीं है। कहा भी है 'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्' प्रकृति के सजीव एवं नग्न चित्रण करने में कालिदास का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने काव्यों में पक्षी, मृग, तड़ाग, नदी, वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्प आदि विषयों पर विशेष प्रकाश डाला है।

कवि कालिदास ने अपने काव्यों एवं नाटकों में वनस्पतियों का वर्णन उपमा–विषयक, श्रृंगारप्रधान स्थलों एवं नैसर्गिक वनों, उद्यानों का बहुत विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं। कवि कालिदास ने मेघदूत नामक खण्ड काव्य में यक्षराज ने मेघ को दूत बनाकर अलकापुरी में अपनी प्रिया को सन्देश देते हुए मेंघ से कहते हैं कि जिस अलकापुरी में सुन्दरियां हाथ में लीला कमल धारण करती हैं, केशों को कुन्द के पुष्पों में गूंथती हैं, जिनके

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुखों की शोभा लोध्र पुष्प की रज से श्वेतता धारण करती हैं और वेणी में कुश व पुष्प कानों में सुन्दर शिरीष पुष्प एवं मस्तक पर कदम्ब पुष्प धारण करती हैं ऐसी वह अलकापुरी है। यथा–

हस्ते लीला कमल के वालकुन्दानुविद्धम।
नीतालोध्रप्रसवरजसा, पाण्डुतामाननेश्रीः।।
चूडापाशे नवकुरवकं चारूकर्णेशिरीषम्,।
सीमन्ते च त्वदुपगमनं यत्रनीपंबधूनाम्।। **"मेघदूत"**

इसी अलकापुरी में स्थित दोहद् वृक्षों का वर्णन भी कवि ने सुन्दर रूप से किया है जिसमें लाल फूल वाला अशोक स्त्रीताडन से विकसित होना एवं कामनियों की मदिरायुक्त मुख को वकपुष्प द्वारा पवित्र करना तथा सुन्दरियों के दर्शन मात्र से तिलक वृक्ष के पुष्पों का पुष्पित होना कवि के प्रकृति प्रेम एवं अनुराग को स्पष्ट करता है।

कालिदास के काव्य में हिमालय के शैल खण्डों, कैलाश, मानसरोवर एवं इन हिमखण्डों से प्रवाहित होने वाली नदियां मन्दाकिनी, सरस्वती, अलकनन्दा, गंगा, जमुना, भागीरथी, काली एवं धौली आदि नदियों के संदर्भ स्थलों का उल्लेख है। यथा–

मन्दाकिन्या सलिल शिशिरैः सेव्यमानाम्। **"मेघदूत"**
भागीरथी निर्झरणी काराणां वोठामुहुः कम्पित देवदारुः।।
"कुमारसम्भवः"

हिमालय में असंख्य रत्न जडी–बूटियां, संजीवनी, विशल्यकर्णी सोम, आदि दीव्यौषधियां, कल्पवृक्ष, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देव, किरात आदि निवास करते हैं उसी नगाधिराज हिमालय को महाकवि ने देवताओं की आत्मा कह कर अपने काव्यों में उल्लेख किया है। यथा–

अन्तरत्ननाप्रभवस्ययस्यहिमं न सौभाग्य विलोपिजातम्। कुमारसम्भव
अस्तित्तुरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।।

महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कर्मस्थली उज्जयनी एवं उज्जयनी से प्रवाहित होने वाली क्षिप्रा नदी का भी विस्तृत रूप से अपने काव्यों में उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किया है। कालिदास के काव्यो में कतिपय ऐतिहासिक नगरों, पर्वतों वनों, उपवनों एवं नदियों का विस्तृत रूप से उल्लेख है जिसका विवरण कालिदास के साहित्य में वनस्पतियां एवं आयुर्वेद में दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालीदास की वनस्पतियाँ है। जिसमें कि कवि कालिदास ने अपने जीवन के व्यावहारिक अनुभवों एवं कल्पनाओं के आधार पर प्रकृति का सजीव चित्रण कर वनस्पति जगत की महिमा को सर्वोपरी माना है। वनस्पतियां मानवजीवन की सुरक्षा तथा पर्यावरण प्रदूषण रोकने में सक्षम हैं। प्रदूषण से निपटने के लिए वातावरण में फैले हुए प्रदूषण (विष) को पीने के लिए भगवान शिव की तरह सबसे अधिक सफल माध्यम वृक्ष पाये गये हैं जिसकी उपादेयता का उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में किया है। पुस्तक में कालिदास की वनस्पतियों के संदर्भ स्थलों की जानकारी के साथ–साथ आयुर्वेद में वर्णित गुण–धर्मों का उपयोग उपं आमयिक प्रयोगों का भी उल्लेख कियागया हे। इसके अतिरिक्त वाल्मिकीय रामायण काल में आयुर्वेद, स्वस्थवृत,. एवं वनस्पतियों के संदर्भ स्थलों का भी उल्लेख है। विषय सामग्री में वनस्पतियो के संस्कृत, हिन्दी वानस्पतिक नाम, वानस्पतिक स्वरूप एवं रेखाचित्र आदि दिये गये हैं।

मेरा यह प्रयास कहां तक सफल हो सका है यह तो समीक्षकों तथा विद्वानों के निर्णय की बात है। इस पुस्तक को तैयार करते समय यह उद्देश्य ध्यान में था कि कवि कालिदास को वनस्पतियों के भौगोलिक अध्ययन का प्रत्यक्ष ज्ञान है जिसकी उपादेयता आयुर्वेद साहित्य की अभिवृद्धि में सहायक हो सकती है। इसी संकल्प को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1968 में गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में इस कार्य को प्रारम्भ किया जिनका प्रकाशन सचित्र आयुर्वेद के माध्यम से किया गया, आज पुस्तक के रूप में आप विद्वानों के सामने प्रस्तुत है।

पुस्तक लेखन में पूर्ववर्ती आचार्यों की यशस्वी कृतियां मेरे लिए प्रेरणा की स्रोत रही हैं। मुख्य रूप से संस्कृत साहित्यमां वैद्य वापालाल जी कृत गुजराती भाषा एवं बाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद वैद्य अम्बालाल जोशी, जोधपुर एवं अन्यान्य कतिपय लेखकों की कृतियों के संद्रर्भ स्थलों से पर्याप्त सहयोग मिला है एतदर्थ सभी सम्मानीय रचनाकारों का हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक की भूमिका

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेखन हेतु पं. राजवैद्य आचार्य वृहस्पतिदेव त्रिगुणा पद्मभूषण एवं अध्यक्ष परामर्शदात्री समिति, शासीनिकाय केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) नई दिल्ली का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। रेखा चित्र तयार करने में मेरी सुपुत्री कुमारी सीमा उनियाल का सहयोग मिला उसके लिए उन्हें बधाई देता हूँ। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा लि. नागपुर एवं श्री रमेश कुमार शर्मा आयुर्वेद मन्दिर दतिया ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके इस साहित्य को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया एतदर्थ भवन का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। उचित परामर्श एवं निर्देशन हेतु लेखक डा. विवेकानन्द पाण्डेय, निदेशक, केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली का भी आभार प्रकट करता हूँ। मुद्रण एवं लेखनत्रुटियों के लिए पाठकों से विनर्म भाव से क्षमा चाहता हूँ यदि प्रयास संस्कृत साहित्य एवं आयुर्वेद विज्ञान के प्रसार के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ तो मैं स्वयं को सफल समझूंगा।

विदुषांभनुचरः
डॉ. मायाराम उनियाल
बी-98, अवन्तिका, सैक्टर I रोहिणी,
नई दिल्ली-110085.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विषय-सूची-अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
कहाँ जन्में थे कालिदास	3-4
कालिदास क्या विदिशा के निवासी थे	5-10
संस्कृत कवियों द्वारा हिमालय का वर्णन	10-11
हिमालय की गोद में बसे कैलाश–मानसरोवर	12-17
कालिदास के काब्यों में वनसम्पदा की महिमा	17-22
हिमालय में पर्यावरण एवं वनस्पतियों का विकास	22-29
भारतीय संस्कृति एवं नारी जीवन में पर्यावरण का महत्व	29-33
पर्यावरण विनाश एवं ईन्धन की समस्या	33-37
संस्कृत साहित्य मे वनों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व	37-59
पर्यावरण संतुलन एवं भारतय संस्कृति में वन संरक्षण	59-68
वाल्मीकीय रामायण क्षीरसागर से अमृत का अवतरण एवं आरोग्यदेव धन्वन्तरि	68-76
आरादि क्रम से कालिदास के साहित्य में वर्णित वनस्पतियाँ	77-245
संदर्भ ग्रन्थ	246

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कालिदास के साहित्य में वर्णित वनस्पतियों की तालिका

		पृष्ठ संख्या
1.	अगुरु Aquilaria agallocha Roxb	79, 80, 124
2.	अक्ष (विभीतक) Terminalia belerica Roxb	77, 79
3.	अतिमुक्तक (माधवी) Hiptage benghalensis kurz	81
4.	अपराजिता Clitoria ternatea Linn	82
5.	अरविन्द (कमल) Nymphaea alba Linn or N. stellata	83
6.	अर्क (अलर्क) Calotropis procera (Ait) R.Br.	84, 85
7.	अर्जुन Terminalia arjuna W. of A.	86, 87, 115
8.	अलक्तक Laccifer lacca	88
9.	अम्भोज Nymphea alba Linn.	89
10.	अग्निमन्थ (अरिणी) Premna latifolia Roxb.	90
11.	अशोक Soraca indica Linn	91, 95
12.	असिपत्र	96
13.	आम्र (सहकार) Mangifera indica Linn.	97, 99
14.	इक्षु (ईख) Saccharum officinarum Linn.	100
15.	इंगुदी Balanites aegypteiaca Linn.	101
16.	इन्दीवर Nymphaea stellata walld	103
17.	उत्पल Nymphaea stellata walld	104
18.	उदुम्बर (गूलर) Ficus racemosa Linn.	106
19.	उशीर (खश) Vetiveria zizanisides (Linn.) Nash.	107
20.	एला (इलायची) Elettaria cardamomum Moton.	108
21.	कदम्ब Anthocephalus indicus A. Rich.	109, 111
22.	कमल Nelumbo nuciferra Carten.	111, 114

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

23. कदली Musa sapinetum Linn. 115, 116
24. कन्दली Crinum defixum Ker. 117
25. कर्णिकार (अमलतास) Cassia fistula Linn. 118, 120
26. कर्कन्धु (बेर) Zizyphus numularia W. & A. 149
27. कल्पवृक्ष 120
28. कालीयक (पीतचन्दन) Santalum album Linn. 121
29. कास Saccharum sponatum Linn. 123
30. कीचकः (वांस) Bambusa bambos Druee 148
31. कालागुरु Aquilaria agallocha Roxb 124
32. कुंकुंम (केशर) Crocus saitivus Linn. 127
33. किंशुक (पलाश) Buttea monosparma (Linn.) Kuntz. 125, 126
34. कीचक (वांस) Bambusa bambos 148
35. कुटज (कूंड़ा) Holarrhena antidyesaterica wall. 131, 132
36. कुन्द Jasminum pubecenes willd. 133, 134
37. कुमुद–उत्पलभेद Nymphia 136
38. कुवलय (नीलोत्पल भेदः) Nymphia 137
39. कुरवक Rhododendron arborium 128, 131
40. कुश Desmostachya bipinnata Linn. 137
41. कूटशाल्मली Ceiba pentandra Linn. 140
42. कुसुम्भ Carthamus tinctorius Linn. 139
43 केतकी (केवडा) Pandanus tectorius soland. 141, 142
44. केसर (वकुल) Mimusops elengi Linn. 143
45. कोविदार Bauhinia Verigata Linn. 146, 147
46. खर्जूरी Phoenix dactylifera Linn. 151, 152
47. चन्दन Santalum album linn. 152, 155
48. जपा (गुडहल) Hibiscus rosasinensis Linn. 156
49. जम्बू (जामुन) Syzygium cumini Skeel. 157, 158

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

50. तमाल Cinnamomum tamala Nees 159, 160
51. ताम्बूल (पान) Piper betle Linn. 161, 162
52. ताल Borassus flabelifer Linn. 163, 164
53. तिन्तणी (इमली) Tamarindus indicus Linn. 165
54. तिलक Wendlandia exerata-pers. 166, 167
55. दर्भ Desmostachya bipinnata 167
56. दूर्वा (दूव) Cydndon dactylon Pers 168
57. देवदारू Cedrus deodara Roxb. 169
58. द्राक्षा (दाख) Vitis Vinifera Linn. 171, 172
59. नक्तमाल (करंज) Pongamia glabra Linn. 174
60. नवमल्लिका Jansminum arborescens Roxb. 176
61. नमेरुवृक्ष Calophyllum inophylla 173
62. नारीकेल Cocus nucifera Linn. 177
63. निचुल (हिज्जल) Barringtonia acutangula Garlen. 179
64. नीवार Oriza sp. 180
65. नीप (कदम्ब) Anthocephalus indicus A. Rich. 181
66. नीलोत्पल : (नीलकमल) 181
67. पंकज (कमल) 182, 183
68. पाटला (पाठल) Stereospermus suoveolens. 186
69. पारिजात (हारहिंगार) Nyctanthes arbortistis Linn. 183, 185
70. पुन्नाग Calophyllum inophyllum Linn. 189
71. प्रियंगु Callicarpa maczophylla 190, 191
72. प्लक्ष Ficus lacor Buch Han 187
73. पुण्डरीक (कमल) पुष्करबीज 188, 190
74. प्रियाल (चिरौंजी) Buchanania lanzan spreng. 193
75. पूगं Areca catechu Linn. 194, 195
76. फलिनी (प्रियङ्गु) 196

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

77.	बन्धूक Pen apetes phaenicea W. & A.	196
78.	बिम्बी Cocc nia indica W. of A.	197, 198
79.	बकुल Mimusops elengi Linn.	199
80.	बीजपूरक Citrus medica Linn.	201
81.	भद्रमुस्ता Cyprus Scariosus. R. Br.	201
82.	भूर्ज Betula utilis D. Don	202, 202
83.	मधूक Madhuea indica. J.F.	204
84.	मंदार Erythrina indica Roxb.	205
85.	मलय (चन्दन)	207
86.	माधवी Hiptage bengholensis. Lurz.	207
87.	मालती Jasminum grandiflorum Linn.	209
88.	मुस्ता (मोथा) Cyperus rotundus Linn.	210
89.	मृणाल (कमल) Nelumbo nucifera Gorten.	212
90.	यब (जौ) Hordeum vulgare Linn.	213
91.	यूथिका (जुही) Jasminum auriclatum Vlol	214
92.	रक्तपाटला Stercospermum suaveolens.	215
93.	रम्भा (कदली) Musa sapinetum. Linn.	216
94.	लवंग (लोंग) Eugenia caryophylus.	216
95.	लाक्षा (लाख) Laccifer lacca	218
96.	लोध्र (लोध) Symplocos paniculata wall.	219
97.	वानीर (जलवेतस) Salix caprea Linn.	220
98.	विकंकत (कंडाई)	222
99.	बेत्र (वेंत) Calamus tenuts Roxb.	223
100.	वेतस (वज्जुल) Salix tetrasperma Roxb.	224
101.	शल्लकी Boswellia serrata Roxb.	225
102.	शमी (खेजड़ी) Prosopis spicigera Linn.	226
103.	शर (कुश) Sacchareum munja Roxb.	228

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

104. शाल Shorea robusta. Gaertn. 228, 229

105. शिरीष Albizia lebbeck. Benth. 230, 231

106. शिलीन्ध्र (खूंव) Agaricus. 232

107. शेफालिका Vitex trifolia Linn. 233

108. शैलेय (छड़ीला) Parmelia Perlata. Ach. 236

109. शैवाल 237

110. सप्तपर्ण (सतौना) Alostonia Schalaris. R. Br. 238

111. सर्ज (शालनिर्यास) Vateria indica. Linn. 239

112. सरल (चीड़) Pinus longifolia. Roxb. 240

113. सहकार (आम) Mangifera indica Linn. 241

114. सिद्धार्थ (सरसों) Brassica compertris. 241

115. सिन्दुवार : Vitex Negundo Linn. 242

116. स्थलपद्म (ब्रह्मकमल) Sassurea ovolata. 243

117. स्यन्दन (सांदन) Ougenia dalbergioides Bouth. 244

118. हरिचन्दन Santalum album Linn. 245

119. सन्दर्भ ग्रन्थ 246

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सन्दर्भ ग्रंथ संकेत तालिका

ग्रंथ नाम	संकेत
अभिज्ञान शाकुन्तल अध्याय	अभि.शा.
ऋतुसंहार अध्याय	ऋ.सं.
कुमार संम्भव	कु.स.
मालवाग्निमित्रम्	मा.मि.
मेघदूत	मेघ.दू.
रघुवंश	रघु.वं.
विक्रमोर्वशीम्	वि.मो.
बाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद	बा.आ.
चरक संहिता	च.सं.
भावप्रकाश निघण्टु	भा.नि.
धन्वन्तरि निघण्टु	ध.नि.
राज निघण्टु	रा.नि.
निघण्टुरत्नाकर	नि.र.
शालिग्राम निघण्टु	शा.नि.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समर्पण स्वर्गीय पूज्यनीय माता जी
श्रीमती फतरी देवी

—मायाराम उनियाल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बम्बई में आयोजित पर्यावरण संगोष्ठी में डॉ० मायाराम उनियाल हर्बल अकादमी पुरस्कार से सम्मानित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्री रमेश कुमार निर्देशक, श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर दतिया एवं डॉ० मायाराम उनियाल जड़ी-बूटियों की पहचान करते हुए परिलक्षित।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

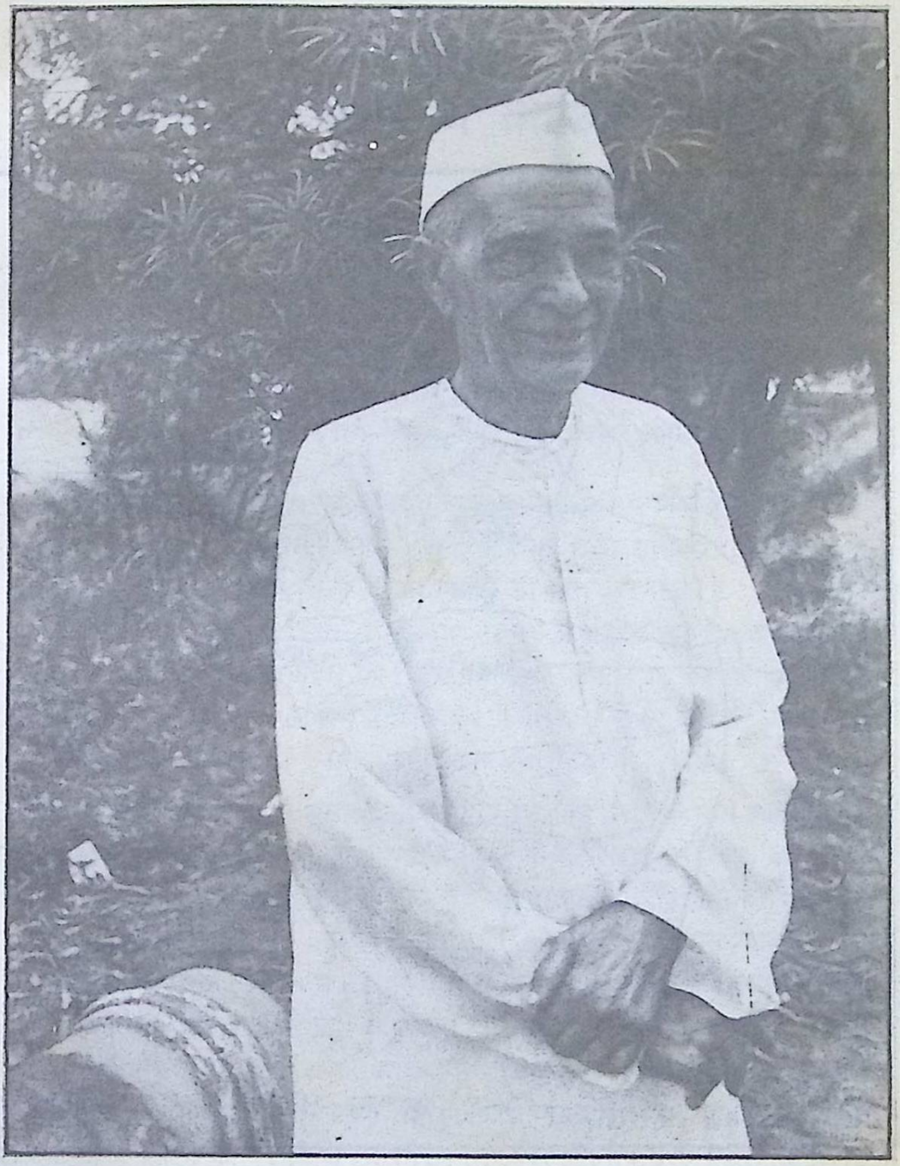

पुण्यश्लोक वैद्यराज पण्डित राम नारायण शर्मा जी की
पावन स्मृति में प्रकाशित

—रमेश कुमार शर्मा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

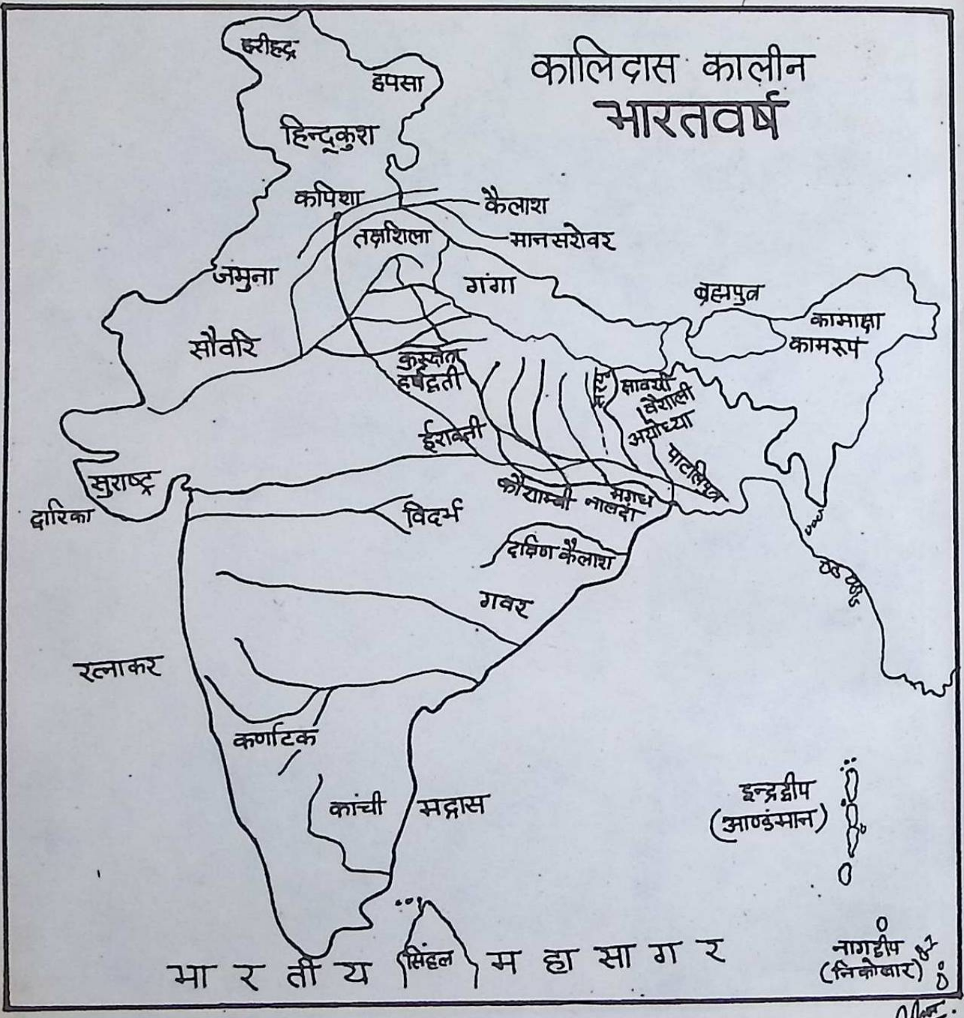

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कहां जन्में थे कालिदास

कालिदास के जन्म स्थान को लेकर अनेक मत हैं। कोई उन्हें बंगाल का बतलाता है तो कोई बिहार का। कोई हिमालय, नेपाल या कश्मीर का सूचित करता है। मालवा पर खुद अपना प्रेम प्रदर्शित कर कालिदास ने मालवा की जनता को अपना स्वजन मानने को विवश कर दिया है, इसमें किसी शंका का अवसर भी नहीं है।

जिस प्रकार कालिदास के समय को लेकर मतभेद उत्पन्न किए गए हैं और ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ईसवी सन् की छठी शताब्दी तक खींचतान की गई है, जिसका श्रेय अंग्रेजी इतिहासकारों की भ्रांत धारणा को है। उसी प्रकार कालिदास के स्थान को लेकर भी अनेक मतभेद प्रचाारित हुए हैं। कोई बंगाल का बतलाता है तो कोई बिहार का। कोई हिमालय, नेपाल या कश्मीर का सूचित करता है। मालवा पर स्वयं प्रेम प्रदर्शित कर कालिदास ने मालवा की जनता को अपना स्वजन मानने को स्वाभाविक विवश बना दिया है।

मेघदूत में विदिशा से अलका पहुंचने के लिए सीधे उत्तर के मार्ग को छोड़कर कालिदास पश्चिम में स्थित उज्जयनी पहुंचाने के लिए मेघ को प्रेरित करता है। यह उसका पक्षपात अपनी भूमि के प्रति सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होता है। मेघदूत कवि का छोटा सा खण्ड काव्य है। लगभग 150 श्लोकों के इस काव्य के 11 श्लोक वह अवन्ती के वर्णन में भेंट कर देता है, यह विशिष्ट बात है। यद्यपि उज्जैन के समकक्ष और उससे समृद्ध नगर उस समय भी भारत में अन्य रहे हैं, किन्तु रघुवंश का निर्माता रघुवीर की साकेतनगरी को देखने के लिए मेघों को नहीं भिजवाता। और महाकालेश्वर की सांध्य आरती का प्रत्यक्षदर्शी कवि अपने काव्य नाटकों में काशी के विश्वनाथ का स्मरण नहीं दिलाता है। उसी प्रकार यदि कुछ विद्वानों की भ्रांत धारणा के अनुकूल वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन था या राज्य सभा का पंडित था तो वह उस चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) का स्मरण ममता पूर्वक अपनी प्रिय नगरी अबंतिका को स्वर्ग के ज्योतिमय खण्ड के रूप में प्रस्तुत करता है। यह साधारण बात नहीं है। यदि उसके समय चन्द्रगुप्त की राजधानी पटना थी, तब भी उसका कोई संकेत न कर वह जंग समय विदिशा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में कोई भी राजधानी नहीं रही है। यद्यपि राजकुमार अशोक ने विदिशा में वास किया था, फिर भी राजधानी के रूप में विदिशा को महत्व नहीं मिला था, यह शुंगवंशीय अग्निमित्र की ही राजधानी रही है। इसके पश्चात् राजधानी का गौरव विदिशा को नहीं मिला। तब स्पष्ट है कि मेघदूत का कवि अपने समय जिस राजधानी को जगमगाती प्रत्यक्ष देखता है, उसी का स्पष्ट उल्लेख करता है। वह अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में विदिशा को राजधानी बतलाता तो स्वाभाविक होता कि वह जिस नायक को लक्ष्य कर रचना करता है, उसकी राजधानी का महज संकेत करता है। परन्तु जब स्वतंत्र खण्ड काव्य 'मेघदूत' में विदिशा को राजधानी सूचित करता है तो यह स्पष्ट होता है कि वह शुंग–काल में अपने समक्ष विदिशा को राजधानी के गौरव से मण्डित कर रहा है। इसमें वह स्वयं अपनी स्थिति, काल भी बतला देता है। और तब उसके नाटक (मालविकाग्नि मित्र) में दिए गए इस संकेत से कि जब अग्नि मित्र शासन कर रहा हो तथा गोप्तारिनाग्नि से बहुत स्पष्ट सूचना मिलती है कि वह अग्नि मित्र को शासन करते हुए विदिशा में देखने वाला प्रत्यक्षदर्शी है।

कवि अपने काव्य 'छोटे से मेघदूत' में चार श्लोक खर्चकर दशार्ण और उसकी राजधानी विदिशा की चर्चा करता है और एक श्लोक में निर्विन्ध्या (नर्वज नदी) एक में सिंधु (कालि–सिंघ) नदी का वर्णन कर सहसा रुक जाता है तथा उज्जैयनि की ओर प्रस्थान करता है।

कवि की अन्तः सलिला मानो प्रवाहित होकर क्षिप्रा और गंधवती के साथ संगम की सुखानुभूति कर त्रिवेणी की पावना प्रकट कर रही है। अवन्ती और दशार्ण की दिशा पाकर कवि आनन्द में विभोर हो काव्य के सहज विषयान्तर को भी विस्मृत कर देता है तथा छोटे से काव्य के कई पद्य–प्रसून अपनी ममतामयी मालबभूमि को समर्पित करने लग जाता है। उत्तर के दूर प्रवासी मेघा को भी कवि अपने साथ अपने घर का मेहमान बना कर बीच में रोक लेता है। कालिदास के इस मालवमही के मोह को प्रत्यक्ष देखकर भी जो लोग उसे इधर उधर आज भटकाने की भावना लिये हैं।

महाकालेश्वर का समाराधक कवि जब अपने मेहमान मेघ को भी भगवान जलंधर महाकाल की सांध्य पूजा के लिए सूर्यास्त पर्यन्त रोक लेता है, आरती के आनन्द लाभ से वंचित नहीं होने देता, तब जो लोग स्वयं मालवा के प्रिय कवि को अन्य प्रदेशों का प्रवासी बता उसे अपना घर बनाने का मोह प्रदर्शित कर क्या मोह में डालना नहीं चाहते हैं, उनके विचारों के विषय में कुछ न कहना ही पर्याप्त होगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कालिदास क्या विदिशा के निवासी थे ?

हिमालय ने वैज्ञानिकों को ही नहीं, सहस्रों वर्षों से कवियों, पर्यटकों और तीर्थयात्रियों को भी आकर्षित करता है। कविकुलगुरू कालिदास ने तो उसका इतना मनोहारी वर्णन किया है कि अनेक विद्वान् गढ़वाल को ही उनका जन्मस्थान मानने लगे हैं। हिमालय को पहली बार गिरिराज कालिदास ने ही कहा था। यों बंगाल, उज्जयैनी, यहाँ तक कि सिरसा (सरस्वतीपत्तन) भी उनके जन्मस्थान के दावेदार हैं।

कालिदास के जन्मस्थान, काल एवं सद्विषयक जानकारी अभी तक अपूर्ण और अपर्याप्त है।

कालिदास ने रघुवंश, ऋतुसंहार एवं कुमार संम्भव तीन महाकाव्य, अभिज्ञान शाकुंतलम्, विक्रर्मोर्वशीयम् एवं मालविकाग्निमित्रम् नामक तीन नाटक एव तत्कालीन भौगोलिक ज्ञान का परिचायक मेघदूत नामक ग्रंथ लिखे हैं। कुछ सज्जनों का मत है कि उन्होंने कुछ और भी ग्रंथ लिखे हैं, पर इस विषय में मतैक्य नहीं है।

आजकल के कुछ विद्वान् कालिदास को अवंति नरेश विक्रमादित्य की सभा का एक रत्न मानते हुए उनको विक्रमकालीन व्यक्ति मानते हैं। परन्तु अभी तक जब स्वयं विक्रमादित्य के काल का निर्धारण नहीं हो सका है तो कालिदास के काल का सही आंकलन कर पाना तो और भी दुर्लभ है। कोई विद्वान् बिक्रमादित्य को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी, कोई ईसा की दूसरी तीसरी शताब्दी, और कोई–कोई तो पांचवीं शताब्दी के चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल को विक्रमकालीन समय मानते हैं। अतएव विक्रमकालीन समय गणना से तो कालिदास की तिथि निर्धारण का सही आंकलन नहीं हो सकता।

तब भी प्राचीन परंपराओं, पौराणिक कथाओं और शुभ कार्यों में संकल्पोच्चार आदि से इतना तो पता चल ही जाता है कि विक्रम संवत् के प्रवर्तक यदि विक्रमादित्य नरेश, ईसा के 57 वर्ष पूर्व रहे होंगे तो यही काल कालिदास के विद्यमान होने का माना जा सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विक्रमादित्य के संबंध में पुराण सर्वथा मौन हैं। श्रीमद् भागवतपुराण और विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रंथों में प्राचीन काल से लेकर ईसा की चौथी शताब्दी तक के पुरु, इक्ष्वाकु और अन्य–अन्य राजपक्षों की जो तालिकाएं दी गई हैं, उनमें भी विक्रमादित्य का नाम दृष्टिगोचर नहीं होता। महानंद, मौर्य और विदिशा के शुंग वंश तथा उत्तरकाल के कण्ववंशी राजाओं एवं सात वाहन नरेशों के क्रमपूर्वक नाम और उन वंशों द्वारा राज्य अवधि की तालिकाएं दी गई हैं उनमें ईसा के पूर्व और पश्चात् की प्रथम या दूसरी शताब्दी के नृपतियों के उल्लेख में अवंति और विक्रमादित्य का नाम कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

ईसा के प्रथम शताब्दी के इसी काल में विदिशा में प्रतापी शुंग् वंश का राज्य था। इन शुंगों को तुरणों ने पृथ्वीपति कहकर उल्लेख किया है जिससे विदित होता है कि ये नृपति सम्राट रह होंगे। शुंगों की राज्यसभा में विदेशों के राजदूत भी रहते थे। यवन राजदूत हैलिओडोरस ने विदिशा दरबार में रहते हुए हिन्दु धर्म भी स्वीकार कर लिया था। उसकी स्मृति में विष्णु मंदिर का निर्माण कराके उसके सामने गरुड़ ध्वज स्तम्भ खड़ा करके उपरोक्त वर्णन अङ्किकत किया जो आज भी विद्यमान है।

शुग् वंश को उसके शक्तिशाली मंत्री वसुदेव ने समाप्त करके अपने कण्ववंश की नींव डाली। इस वंश में चार नरेशों ने 45 वर्षों तक राज्य किया। ये अत्यन्त शक्तिशाली नरेश थे। इसी कण्ववंश के समय में विक्रम संवत् का प्रवर्तन हुआ है। जो कण्व राज्य का 16वां है।

ईसा से 57 वर्ष पूर्व के काल विक्रम संवत–प्रवर्तन काल उचित ठहराता है तो विक्रमादित्य व्यक्ति अथवा 'साहसोक' उपाधिकारी राजा इसी काल में हुआ होगा। और फिर इसी काल में कालिदास का आविर्भाव होना भी सर्वथा सही माना जाएगा।

आश्चर्य यह है कि स्वयं कालिदास ने अपने तथा विक्रमादित्य के संबंध में कहीं कुछ नहीं लिखा है। कुछ विद्वानों ने खींचतान करके रघुवंश ग्रंथ में इन्दुमती के स्वयंवर में अवंति देश के राजा को विक्रम बना डाला है। इसी प्रकार मेघदूत में अवंति के वर्णन का सहारा लेकर राजा चंड प्रद्द्योत को अपरोक्ष रूप से विक्रम समझने का हास्यास्पद प्रयास किया है। परन्तु यह सत्य है कि कालिदास जिस प्रकार विक्रम के विषय में मौन हैं उसी प्रकार अपने विषय में भी सर्वथा मौन हैं।

परन्तु कवि के 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में पारिपार्श्वक के मुख में यह अवश्य कहलाया है कि 'भास, सौमिल्लेक और कविपुत्र के नाटकों के सामने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्तमान कालिदास के नाटक का क्या मान है ? इससे यह विदित होता है कि महाकवि भास के पश्चात ही कालिदास हुए हैं।

जैन लेखकों ने भी कालिदास को सर्वथा भुला दिया है। जैन मेहतुगाचार्य कृत 'पदावलि' में अवंति के राजा नभोवाहन के पुत्र गर्दभिल्ल ने 14 वर्ष और फिर गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों को हराकर 60 वर्ष राज्य किया। यह उल्लेख किया है। यह तो लिखा पर कालिदास का कहीं भी जिक्र नहीं किया है। एक अन्य जैन ग्रन्थ 'प्रबंध कोष' के अनुसार महावीर के 470 वर्ष बाद विक्रम संवत् चला है। यही बात धनेश्वर सूरी ने भी लिखी है। पर इन दोनों ने भी कालिदास का नाम नहीं लिखा है।

पर, तो भी विक्रम के समय में कालिदास अवश्य थे। यह बात इस तथ्य से प्रकट होती है कि कवि ने 'अभिज्ञान शाकुतंलम्' ग्रन्थ की भूमिका में सूत्रधार द्वारा यह कहलवाया है कि 'रसभाव विशेष दीक्षा गुरो' विक्रम की परिषद् में इस नाटक का मंन्थन किया जाए। अतः स्पष्ट है कि विक्रम के समय में कालिदास अवश्य ही उदयमान थे।

विदिशा के शुंग राजाओं के अमात्य महाभाष्यकार पतंजलि ने बररुचि कात्यायन का तो उल्लेख किया है। पर कालिदास का कहीं भी वर्णन नहीं किया। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास पतजलि अथवा शुंग्काल के पश्चात ही हुए हैं। यह तथ्य भी उपरोक्त वर्णनों से भलीभांति मेल खाता है।

राजशेखर कवि ने वर्तमान विद्वानों को और भी आश्यर्च में डाल दिया है। ग्यारहवीं शताब्दी के इस महान कवि ने अपने वर्णन में तीन कालिदास होने का उल्लेख किया है, परन्तु इन तीनों की सही तिथि वे भी नहीं दे सके हैं।

राजशेखर के प्रथम कालिदास को पतंजलि के पश्चात् का कालिदास मान कर उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में ई.पू. की प्रथम शताब्दी में बिद्यमान होना ही माना जाना चाहिए।

भारत के अनेक स्थानों के विद्वानों ने कालिदास को अपने–अपने प्रांतों का निवासी होना बतलाया है। महामहोपाध्याय स्व. लक्ष्मीधर शास्त्री ने इनको कश्मीर का होना बतलाया है। इसके विपरीत महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इनको दशपुर (मंदसौर) निवासी माना है। इन सबके विपरीत बंगाल के कतिपय विद्वान् कालिदास को बंगाल का होना मानते हैं। उनके अनुसार कालिदास नाम ही काली देवी के पूजकों की भांति है जो कि बंगाल के अतिरिक्त अन्य दूसरे स्थान का नहीं हो सकता।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उज्जैन के कुछ विद्वानों ने उन्हें उज्जैयनी का निवासी माना है। इसका कारण वे यह देते हैं कि चूंकि विक्रम उज्जैयनी नरेश थे और कालिदास उनके दरवार के 9 रत्नों में से एक थे। अतः वे उज्जैन के निश्चय ही निवासी रहे होंगे। यही नहीं कुछ महाशयों ने रघुवंश में आए अवंति वर्णन, तथा मेघदूत में आए अवंति तथा महाकाल के वर्णनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जब कवि ने इतनी सुक्षमता से उज्जैयनी का वर्णन किया है तो वे अवश्य ही उज्जैन के रहे होंगे। परन्तु उनका यह मत भी सत्य नहीं माना जा सकता। अधिक से अधिक इसका यह अर्थ तो निकाला जा सकता है कि उन्होंने उज्जैयनी को देखा अवश्य होगा। क्योंकि उनके निवासी होने का यही उल्लेख मात्र मापदंड हो तो कवि ने मेघदूत में जिन–जिन स्थानों का वर्णन किया है वहां के निवासी भी यही तर्क देकर कवि को अपने यहां का निवासी मानने को कहेंगे।

उज्जैयनी निवासी होने के विरुद्ध इन बातों पर भी विचार किया जाना चाहिए। पुराणों के अनुसार हम काल में अंवति में कोई राजा नहीं था जिसका वर्णन पुराण करते। भविष्य पुराण में अवश्य थोड़ा वर्णन है। परन्तु यह ग्रंथ बहुत बाद का लिखा हुआ है। क्योंकि इसमें ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया तक का हाल लिखा हुआ है। दूसरे इस काल में अवंति का स्थान भारत के अन्य सत्तात्मकराज्यों की भांति प्रसिद्ध सूचक नहीं है। संभव है उस समय वह एक छोटा सा मालव–गुण का केन्द्रस्थल रह गया हो। और तीसरे स्वयं कालिदास ने अपने किसी ग्रन्थ में इस काल में अवंति या उज्जयनी को राजधानी होना नहीं लिखा है। रघुवंश में अवंति देश का वर्णन अवश्य आया है जिसमें महाकाल निकेतन का भी उल्लेख है। इसी प्रकार मेघदूत में 'श्रीविशालाम् विशालम्' कहकर उज्जैन की प्रचूर धन संपदा और महाकाल का वर्णन किया है पर राजधानी का कहीं उल्लेख नहीं होता।

इसके विपरीत विदिशा के विषय में भरपूर वर्णन किया है। जिससे उसके विदिशा निवासी होने का यथेष्ट प्रमाण मिलता है। महाकवि ने उज्जैन के नगर, क्षिप्रा नदी एवं महाकाल मन्दिर के वर्णन के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान का वर्णन नहीं किया। यहां तक कि अति प्राचीन सांदीपन आश्रम एवं हरीसिद्ध मंदिर आदि का भी कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। महाकवि ने विदिशा के आस–पास विदिशा नगर का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। इसमें वेत्रवती नदी एवं वर्तमान उदयगिरि उसकी गुफाएं, पास के गांवों के कन्दिरों जंगली नदियों और विदिशा (वैन्त नदी) के तीनों पर फलै उपवनों का भरपूर वर्णन किया है। यही नहीं उन्होंने विदिशा के सम्राट अग्निमित्र पर एक नाटक लिखकर उनके नगर की राज्य सभा, संगीतशाला, चित्रशाला, दुर्ग सेना' अनेक मंत्रीगण, नाटकाचार्यों, स्वर्णकारों द्वारा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निर्मित नाग मुद्राओं, राजमहिषी तथा उनंके अमुद्र धरों तक का प्रचूर वर्णन किया है। विदिशा की महारानी धारित्री के पुत्र युवराज–वसुमित्र का पूर्वी ईरान में यवनों पर विजय तथा विदिशा के सैनिकों द्वारा विदर्भ राज्य को पराजित कर वर्धा नदी के दोनों तटों पर दो राज्य स्थापित करने का उल्लेख किया है।

महाकवि ने विदिशा के राजकुल का पूरा वर्णन एवं विदिशा की ओर आने वाले व्यापारी काफिलों तक वर्णन किया है।

कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ मेघदूत में प्रसिद्ध विदिशा राजधानी कहकर विदिशा को स्वयं ही उस काल क़ी राजधानी माना है। उज्जैन के यशश्वी लेखक स्व. सूर्य नारायण व्यास ने उस समय मालवा की राजधानी विदिशा को ही माना है। उनके अनुसार विदिशा के शुंग्वंशी सम्राट सामादवेदी ब्राह्मण थे, जिनकी राजधानी विदिशा थी।

प्रसिद्ध विद्वान पं. गणेश दत्त विद्या वाचस्पति ने भी यही अभिमत प्रकट किया है कि शुंगो के समय में राजधानी उज्जैन से हटा कर विदिशा लाई गई थी।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार शिवराम महादेव परांजपे ने कालिदास की जन्मस्थली विदिशा को ही माना है। उनके विदिशा के चारों ओर के निकटवर्ती छ स्थानों का उल्लेख किया है।

यह बात भी विशेष महत्व की है कि महाकवि ने अपने ग्रंथों में साधारण जनों के बोलचाल की जो प्राकृतिक भाषा अपनाई है वह ठीक उसी काल के विदिशा स्थित हैलिओडोरस के स्तम्भ में उत्कीर्ण की हुई मिलती है।

उज्जैन से अधिक विदिशा को इस बात से भी महत्व मिलता है कि यहां के सांची स्तूपों में निर्माण काल में अधिकाधिक धन उज्जैन के दानवीरों ने दिया था। उत्कीर्णों में ऐसे दानदाताओं की संख्या 36 बतलाई गई है।

कालिदास के काल निर्धारण में सबसे अधिक भ्रांति बहुत अधिक बाद के लिखे एक ग्रंथ ज्योतितबिदाभरण के श्लोक से उत्पन्न हुई है जिसमें धन्वन्तरि से लेकर बरबीच तक के 9 विद्वानों को विक्रम दरबार के नौ रत्न बतला दिया गया है। जबकि सत्यता यह कि ये रत्न न तो एक समय ही हुए और न एक स्थान पर ही थे। स्वयं वराहमिहिर ने अपने को छठी शताब्दी का माना है। बृद्धि विद्वान कोलबुथ ने उनका जन्म स्न 490 ई. माना है। वे मगध निवासी थे।

जिस प्रकार कालिदास के जन्म काल का पता नहीं चलता, उसी प्रकार उनंकी मृत्यु तिथि का भी पता नहीं चलता है। चौरबम्बा प्रकाशन के एक ग्रंथ में श्री

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हरगोविन्द सिंह ने लिखा है कि कालिदास को लंका की किसी वेश्या ने मरवा डाला था। परन्तु इसके पीछे कोई ठोस प्रमाण न होने के कारण यह मत भी ग्राह्य नहीं है।

भविष्य में कोई नई खोज से अन्य तथ्यों का पता चल पाया तो वह निश्चय ही भारतीय साहित्य एवं इतिहास की अनुपम उपलब्धि होगी।

संस्कृत कवियों द्वारा हिमालय का वर्णन

महाकवि कालिदास के अतिरिक्त भी संस्कृत में अनेक पूर्व एवं परवर्ती कवियों ने हिमालय पर स्व–लेखनी चलाकर गिरिराज की अलौकिक छटा का वर्णन किया है। किन्तु मेरे विचार में कालिदास की तुलना में कोई भी अन्य हिमालय की प्राकृतिक छटा के वर्णन में सफल नहीं हुआ है।

शिव एवं मत्स्य पुराण, महाभारत, नैषद् चरित्रम्, किरातार्जुनीयम् तथा साहित्य दर्पण, शारंगधर आदि कवियों ने हिमालय के वर्णन को विशेष रूप से चित्रित किया है। कालिदास की तरह विस्तृत वर्णन केवल माघ और भारवि कवि ने ही किया है। जो उनके वर्णन के कुछ समकक्ष कहा जा सकता है।

मत्स्य पुराण के 117वें अध्याय में कुछ श्लोक हिमालय वर्णन को लेकर हैं। यथा 'राजा पुरुरवा ने देखा हिमालय मेघ की शाल ओढ़े श्वेत मेघा की पगड़ी बांधे सुर्य चन्द्र का मुकुट धारण किए, सर्वाङ्ग में बर्फ को भस्म की तरह लपेटे हुए, मध्य में गैरिक धातुओं का संयोग किये हुए ऐसा प्रतीत होता है जैसे अक्षत–चन्दन आदि से युक्त पंचांगुली की छाप ही किसी ने मार दी हो। शिव पुराण में तो शिव जी के ससुर के रूप में हिमालय का उल्लेख अधिक हुआ है।

हिमालय को गिरिराज के रूप में प्रतिष्ठित केवल कालिदास ने ही किया है। उनके साथ छत्र, चन्द्र सूर्य आदि का उल्लेख करके राजा–राजेश्वर के रूप में सार्थक रूप प्रदान किया है–यस्यार्थे गिरिराज शब्दम्। यही बात 'अलंकार सर्वस्व' ने उनके धनी भूत मंड़ल को श्वेत छत्र के रूप में प्रतिपादित की है। हिमालय अपनी दानवीरता के कारण भी प्रसिद्ध रहा है किन्तु उनकी आस्था सत्–पात्र को देने में अधिक है। महाकवि कालिदास ने हिमालय वर्णन में उसकी सहृदयता, उदारता, मणि, जड़ी–बूटियों की बाहुल्यता, शरणागत की वात्सल्यता आदि की प्रचुरता के विस्तार के अपने काव्य एवं नाटकों में जब भी अवसर आया वर्णन किया।

कवि कालिदास की तरह माघ कवि ने हिमालय के शरणागत वात्सल्य को प्रकट किया है–राक्षसों के भय से त्रस्त देवराज इन्द्र भी हिमालय की शरण आते थे और अपने अशुभ दिनों को यहीं व्यतीत करते थे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि कालिदास की इन पंक्तियों से उसके ऊपर कालिदास का प्रभाव अवश्य रहा होगा इससे स्पष्ट होता है। 'क्षुद्रे अपि नूनं शरणं प्रपन्ने' हिमालय के प्रांगण में मुनियों के शान्त आश्रम की रमणीयता का वर्णन भी कालिदास की लेखनी से हुआ है। कालिदास के हिमालय वर्णन में शब्दों की शोभा, भाषा का सौष्टव और सुकुमार्य तथा वाणी का वैभव प्रतिफल देखने को प्राप्त होता है। हिमालय की अप्सराएं किन्नरियां वहां सुगंधित वातावरण, वृक्षों एवं पशुओं, पक्षियों का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है। वहाँ की जड़ी-बूटियां अपने वैज्ञानिक स्वरूप के कारण बिना तेल के प्रकाशित होती रहती हैं। महाकवि माघ ने अर्जुन तथा किरात बेशधारी शिव के प्रसंग में हिमालय का वर्णन किया है। भारवि का अर्थ गौरवम्" हिमालय को सुरापायी बता कर उसकी मस्ती भरी चाल के वर्णन में है।

महाकवि भारवि ने हिमालय का वर्णन पूर्णोपमा के रूप में किया है। अर्जुन के वाणों को व्यर्थ करने की उपमा उन्होने हिमालय की सहायता करते हुए गंगा के वेग से दी है। महाकवि माघ ने हिमालय के वर्णन में देवाधिदेव के वर्णन को संयुक्त कर 'अर्थान्तर अधिकृत ध्वनि' के रूप में प्रकट किया है-आच्छादितायित दिगम्बर। यहां भी प्रतीत होता है कि कवि ने हिमालय को योगीराज के रूप में वर्णन करने का अर्थान्तर स्वरूप प्रकट करने का प्रयास किया है। कवि ने कहीं यमक के रूप में उसकी विशालता को हाथी के स्वरूप में वर्णिति किया है।

माघ के अपने श्लोकों में अति पांडित्य भर देने से उसकी रमणीयता की रक्षा करना इसी कारण एक कष्ट साध्य कार्य हो गया है।

आयुर्वेद के ज्ञाता कवि शारगंधर ने हिमालय को नगाधिराज मानने के लिए यही कारण माना है कि उन्होंने अपनी बेटी का विवाह आशुतोष भगवान महाकाल के साथ किया है। जो त्रिभुवन पति भी हैं-ईश्वर श्वसुर प्रभावतः महाकवि विश्वनाथ की 'प्रभावती' नाटिका में कवि कालिदास ने कैलाश पर्वत (जो कि हिमालय की ही एक चोटी है) का वर्णन उपमेय स्वरूप में किया है। पुष्प माला पहने नारदजी की कल्पना कवि ने बिजली की चमक से चमकती हुई उज्वल कान्ति वाली दिशाओं के बीच उनके आगमन से की है। जैसे कैलाश पर्वत ही टुटकर नीचे लुढकता हुआ आ रहा है। साहित्य दर्पण में 'अपन्हुति' अलंकार के उदाहरण के लिए व्यक्त श्लोक में चन्द्रोदय का बिम्ब हिमालय के सिर पर अबलम्बित राशिभूत समुद्र फेन की तरह प्रतीत होता है।

इस प्रकार कालिदास के हिमालय वर्णन में बाल्मीकि, व्यास आदि की परम्परा का चरमोत्कर्ष हुआ तो बाद के कवियों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण बना। सर्वप्रथम हिमालय को देवतात्मा स्वरूप प्रदान करना तथा नगाधिराज के रूप में पृथ्वी का मानदण्ड बताकर सर्वोत्कृष्ट कल्पना केवल संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास द्वारा मौलिक और अलौकिक देन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय की गोद मे बसे कैलाश-मानसरोवर की यात्रा का बृतान्त

हिमालय की गोद में बसे कैलाश-मानसरोवर का नैसर्गिक सौन्दर्य जहाँ स्वयं में अद्वितीय है, वहां उसकी यात्रा अत्यन्त दुर्गम भी है। हमारे देशवासियों के मन में उसके प्रति आकर्षण का एक अन्य भावनात्मक कारण भी है- हम कैलाश पर शिव का निवास मानते हैं। अतः यात्रा-कष्ट उठाकर भी कैलाश-मानसरोवर की यात्रा हमारे देश की धर्मप्राण जनता की एक साध रही है। अब यह क्षेत्र चीन के अधिकार में चला गया है और हमारे लिए अलंध्य हो गया है। 1982 में चीन से अनुमति प्राप्त कर भारतीय यात्रियों का एक दल वहां गया था। दल की एक रोचक वर्णन का यहां पर उल्लेख है।

कैलाश मानसरोवर तिब्बत के उस भाग में आता है जिस पर इस समय चीन का कब्जा है। भारत सरकार के अधिक प्रयासों के फलस्वरूप 1981 में कैलाश–मानसरोवर की तीर्थ यात्रा का रास्ता खोला गया। अगले वर्ष 1982 में जब मुझे यात्रा के लि़ए चुन लिया गया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

जून 1982 के अंतिम सप्ताह में 26 व्यक्तियों का दल कैलाश–मानसरोवर की यात्रा के लिए नई दिल्ली से रवाना हुआ। इस दल में 25 यात्री थे तथा एक विदेश मंत्रालय की तरफ से 'लाइजन अफसर' श्री जैमिणी भगवती थे।

कैलाश मानसरोवर यात्रा का रास्ता इस तरह था–दिल्ली–टनकपूर–तवाघाट–कालापानी–माविडांग–लिपुलेख–तकलाकोट–मानसरोवर–कैलाश। समुन्द्र की ऊंचाई से 1009 मीटर पर स्थित तवाघाट दिल्ली से 645 कि.मी. दूर है। दिल्ली से चम्पावत तथा धारचुला होते हुए बस से तवाघाट लगभग सवा दो दिन में पहुंच जाते हैं।

तवाघाट तथा लिपुलेख के बीच लगभग सौ कि.मी. की दूरी है। लिपुलेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्रसतह से 18000 फुट की ऊंचाई पर है तथा तवाघाट से लिपुलेख का रास्ता पैदल का है। पगु, सिरखा, जिप्ती, मुद्रिध, गुंजी होते हुए दल 72 कि.मी. पैदल चल कर छह दिन में कालापानी पहुंच गए। कालापानी के चारों तरफ बर्फीली पहाड़ियां हैं। गन्धक का झरना भी कालापानी में था।

कालापानी से चार–पांच घंटे की चौथी चड़ाई पार करके नाविडांग पहुंचने के बाद रात को रूके तथा तड़के साढ़े पांच बजे ही लिपुलेख के लिए यात्रा शुरू हो गई। लिपुलेख तथा तवाघाट के बीच का रास्ता जोखिम भरा, उबड़–खाबड़ तथा खतरनाक अतः प्रतिदिन 8 से 15 कि.मी. ही पैदल चलना संभव हो पाता था।

नाविडांग से लिपुलेख दर्रे पहुंचने में पांच घंटे और लग गए लिपुलेख दर्रे पर पहुंच कर दो ढ़ाई किलोमीटर और चलना था ताकि कोट के लिए घोड़े मिल सकें। लिपुलेख दर्रे के आसपास का सारा इलाका बर्फ से ढका है। बर्फ के ऐसे अन्धड़ चलते रहते थे कि रास्ता चलने तक में कठिनाई होती थी। बर्फ में कोई स्पष्ट पगडंडी नहीं होती थी। हमारे आगे हमारे सामान उठाने वाले जो कुली चलते थे उनके पैरों से जो रास्ता बनता था उसी में बड़ी सावधानी से पैर जमा कर चलना होता था।

एक जरा सी चूक होने पर पांव फिसलता तो बर्फीली ढलान में से लुढ़कती चली गई। दूसरे साथी यात्री ने शोर मचाया तो तिब्बती कुली ने बर्फ में फिसलते हुए मुझे पकड़ खींचा। काफी ऊंचाई पर होने के कारण न सिर्फ सांस लेने में कठिनाई होने लगी थी बल्कि शारीरिक शक्ति का भी ह्रास होता नजर आने लगा था।

तकबोत लिपुलेख दर्रे से 10 कि.मी. की दूरी पर है तथा बर्फीला क्षेत्र खत्म होने के बाद पहाड़ी भूमि पर घोड़ों द्वारा यहां तक कि यात्रा करनी थी–दरअसल ये घोड़े खच्चर तथा घोड़े के बीच की कोई जाति थी मजबूत कद काठी के होते हुए भी ये जानवर अजीब से थे। मजेदार बात यह थी कि इन घोड़ों पर बैठने के लिए सही प्रकार की सीटजीन आदि भी न बंधी थी।

नदी पार करते समय एक जगह मेरे घोड़े ने अजीब से तरीके से उछलकूद की तो मैं गिरते–गिरते बचा। ऐसा नहीं है कि हर जगह खतरा ही खतरा था। प्राकृतिक दृश्य का जो नयनाभिराम नजारा देखने को मिलता था वह सारी थकान दूर कर देता। सारे खतरों के बावजूद यात्रा जारी रखने का हौसला देता था।

भारतीय रास्ता के जो छोटे–छोटे गांव पड़ते थे वहां के सरल हृदय निवासियों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की सद्भावना तथा प्रेम सराहनीय ही कहा जाएगा। छोटी–छोटी झोपडड़ियों में जब हम चाय के लिए जाते थे तो पत्थर के बीच पर हमारे बैठने के लिए वे हाथ का बना सुन्दर गलीचा बिछा देते थे। उन लोगों की दरियादिली तथा मेहमान नवाजी की भावना से और भी प्रोत्साहन तथा खुशी मिलती थी।

लेकिन यह दरियादिली, तथा मेहमान नवाजी चीन अधिकृत तिब्बती क्षेत्र में देखने को नहीं मिली। प्रातः काल से लगातार यात्रा करते–करते रात दस बजे तकलाकोट पहुंचे तो थोड़े से आराम, सुविधा तथा खाने–पीने की अपेक्षा करना स्वाभाविक है। चोटियों पर बर्फ नहीं गलती। मौसम भी बड़ा अनपेक्षित सा रहता है। एकदम बर्फीला अन्धड़ शुरू हो जाता है तथा रास्ता तक नजर नहीं आता। सीमा चौकी पर सत्कार तो दूर रहा सबसे पहले बड़ी वेरहमी से हर यात्री की कस्टम चेकिंग हुई। रात बारह बजे तक यह कार्रवाई चलती रही। उसके बाद जो खाना मिला तो वह भी निम्न स्तर का ही रहा।

अगले दिन हमारे दल ने जीप तथा ट्रक से मानसरोवर के लिए प्रस्थान किया। मानसरोवर 14950 फुट की ऊंचाई पर है तथा इस झील की गहराई 300 फुट तथा परिधि 88 कि.मी. है। मानसरोवर के रास्ते में ही राक्षसताल पड़ता है। कहा जाता है कि राक्षस राजा रावण ने यहा पर शिव की उपासना की थी, इसलिए इसका नाम राक्षसताल पड़ गया। इसकी परिक्रमा करने तथा पानी पीने का भी प्रचलन नहीं है। राक्षसताल देखने में सुन्दर है तथा इसका पानी गहरा नीलापन लिए है।

ढ़ाई घंटे में हम मानसरोवर बेस कैम्प पर पहुंच गए। यहां से दल कैलाश के लिए रवाना हो गया। कैलाश के लिए मानसरोवर झील की उत्तरी दिशा में लगभग 39 कि.मी. की दूरी पर है। कैलाश पर्वत का बेहतरीन नजारा भी मानसरोवर झील से ही नजर आता है।

कैलाश बेस कैम्प मानसरोवर जितनी ही ऊंचाई पर है। एक घंटे में ही हम वहां पहुंच गए, लेकिन कैलाश पर्वत नजर नहीं आता था।

कैलाश की परिक्रमा

अगले दिन प्रातः 5.30 बजे से ही कैलाश की परिक्रमा शुरू कर दी। हर जगह से कैलाश दृष्टि गोचर नहीं होता। भिन्न–भिन्न स्थानों से कैलाश का नजारा भिन्न होता था। एक जगह से यह शिवलिंग जैसे गोलाकार नजर आता था तो दूसरी जगह से यह पिरामिड (टैट्राहर्डन) की तरह दिखलाई देता था। एक जगह इसकी मछली की तरह पूंछ निकली दिखाई देती थी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिक्रमा के दौरान छोटे–बड़े गहरे झरने भी पार करने पड़ते थे। कहीं–कहीं तो बर्फ में घुटनों से ज्यादा गहरे तक पैर घुस जाता था। 1800 फुट पर डोलमाला दर्रा से थोड़ा नीचे उतरने पर पथरीला क्षेत्र आ जाता है। यहीं पर से चलते–चलते एक जगह गौरी कुंड नजर आता है। गणेश का जन्म स्थान गौरीकुड ही माना है।

कैलाश पर एक विचित्र बात देखने को यह मिली कि गर्मियों में भी कैलाश पर्वत पर बर्फ जमीं रहती है। लेकिन लगभग उतनी ही ऊंची उसकी आसपास की 52 कि.मी. की परिक्रमा मैंने दो दिन में पुरी कर ली। गुरुपूर्णिमा के दिन में कैलाश की परिक्रमा कर रहे थे। पूर्ण–चन्द्रमा की रोशनी में कैलाश पर्वत कैसा लग रहा था इसका वर्णन शब्दों में करना सम्भव नहीं।

मानसरोवर का जल स्वच्छ तथा बर्फीला था। जैसे समुद्र के तट पर खेत की जगह छोटे–बड़े रंग बिरंगे पत्थर थे। इसका पानी बर्फीला होने के बावजूद बर्फ कभी नहीं जमती। सर्दियों में इसकी ऊपरी सतह पर बर्फीला झिल्ली–सी जम जाती है।

मानसरोवर के जल के पार जहां जमीन तथा आसमान मिलते नजर आते हैं काले मटमैले पहाड़ दिखाई पड़ते थे। मानसरोवर की झील पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त का नजारा भी विस्मरणीय रहेगा। मानसरोवर झील का जल शांत था, लेकिन कभी–कभी तेज हवा के कारण किनारे पर पानी थोड़ा–सा उठाल मारता था। यहां की अद्‌भुत शान्ति तथा आलौकिक सौन्दर्य सिर्फ देख कर ही महसूस किया जा सकता है।

कैलाश–मानसरोवर यात्रा में ज्यादा ऊंचाई पर होने के कारण कई जगह सांस लेने में कठिनाई होने लगी थी। सीधी चढ़ाई के कारण सांस फूलने लगता था तथा घुटने में दर्द होने लगता था। शरीर को गर्मी तथा ताकत पहुंचाने के लिए टाफी, मुंगफली तथा सुखे मेवे यात्रा में साथ ले गए थे।

कैलाश–मानसरोवर जाते तथा लौटते समय दोनों बार हम पिथौरागढ़ में स्वामी प्रणवानन्द जी से मिले जो पहले कैलाश पर ही रहते थे। तिब्बत पर चीनी कब्जे के बाद वे पिथौरागढ़ में आश्रम बना कर रहने लगे। 1949 में स्वामीजी ने कैलाश मानसरोवर पर पुस्तक लिखी जिसका प्राक्कथन नेहरुजी ने लिखा था।

(हिन्दुस्तान दैनिक समाचार से साभार)

कैलाश-मानसरोवर का प्राचीन उल्लेख :

महाभारत के आदि पर्व में आठवें अध्याय तथा वनपर्व के पिचासिवें अध्याय में मानसरोवर का उल्लेख है। बाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र कहते हैं–हे नरश्रेष्ठ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

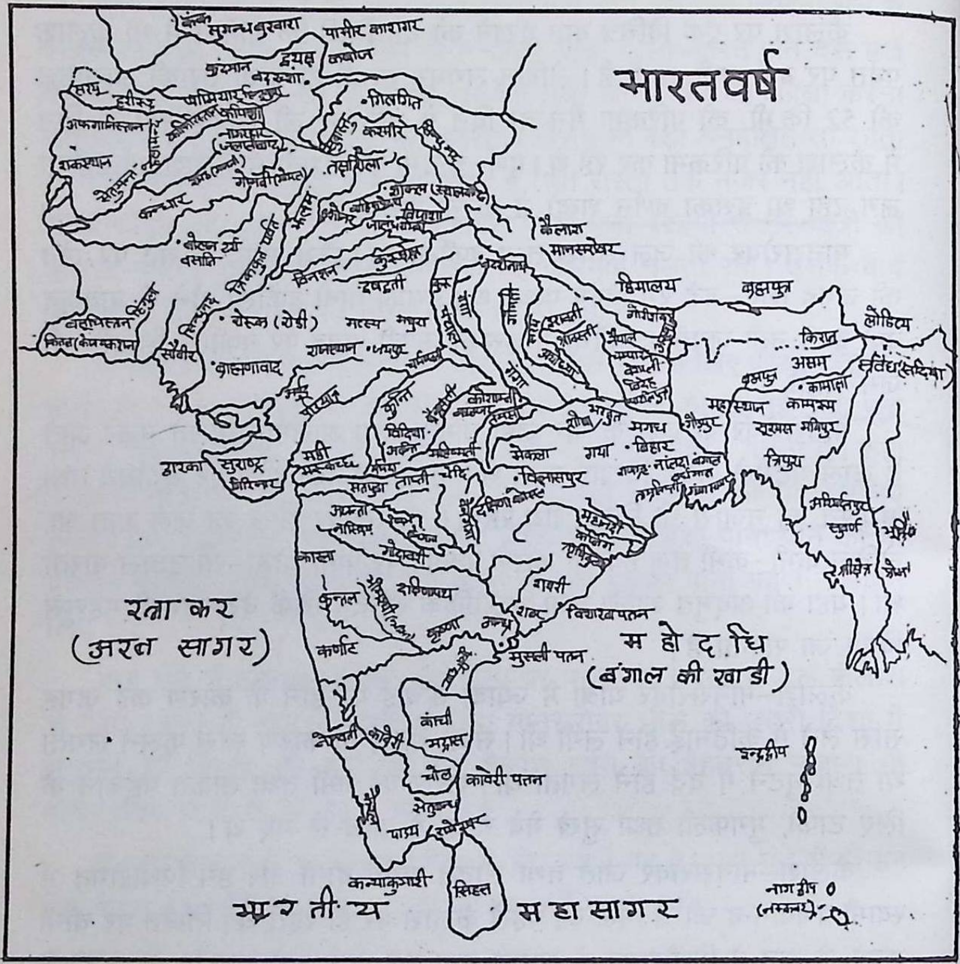

संस्कृत साहित्य में वर्णित भारत वर्ष के प्रमुख स्थान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राम कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा के संकल्पमात्र से मानसरोवर की उत्पत्ति की थी इसलिये यह मानसरोवर कहलाता है। (वा.रा. बालकाण्ड (24–8)) स्कन्धपुराण के काशीखण्ड के अध्याय 13, तथा हरिवंश के अध्याय 201 के अनुसार कैलाश भगवान् विष्णु के नाभि से उत्पन्न हुवा। देवीभागवत में भी ऐसा उल्लेख है। श्रीमद्भागवत् (4, 6, 9) के अनुसार कैलाश में भगवान् शंकर का निवास है।

कालिदास के काव्यों में वनसम्पदा की महिमा

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास एक महान काव्यकार के रूप में विख्यात हैं। आमधारणा के अनुसार कवि कालिदास राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक अद्वितीय विद्वान माने जाते हैं। महाकवि के काल के सन्दर्भ में काफी विवाद है, तथापि इनका काल ईसवी सन के पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व माना जाता है। पत्नी के प्रताड़न से भागे हुये कालिदास जब केदारखण्ड में कालीमठ के पास प्राण त्यागने हेतु सरस्वती कुण्ड में कूद पड़े, तो सरस्वती के प्रसन्न होने पर इनको विद्या पारंगत का वरदान मिल गया, जिसके फलस्वरूप महाकवि सदा के लिये अमर हो गये। स्त्री के प्रताड़न के बाद कालिदास जब घर लौटे तो उनके घर के कपाट बन्द थे तथा इनकी विदुषी स्त्री ने प्रश्न किया कि "अस्तिकश्चित् वाग्विशेष" इस प्रश्न का उत्तर महाकवि ने क्रमशः कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों की रचना की। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कई रचनायें हैं, शीर्षक पुस्तक में कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमिन्त्रम्, एवं ऋतुसंहार नामक ग्रन्थों में वर्णित वनस्पतियों के सन्दर्भ स्थलों का संकलन किया गया है।

महाकवि कालिदास प्रकृति प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं, प्रकृति के सजीव एवं नग्न चित्रण करने में इनका विशेष स्थान है। इन्होंने अपने काव्यों में प्रायः शान्ततपोवन, नदीतट, वृक्ष, उपवन, भ्रमर, मृग, पक्षी आदि पदार्थों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है, जोकि इनके काव्यों के अवलोकन से स्पष्ट होता है। महाकवि ने अपने काव्यों में हिमालय का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इनके नाटकों से हिमालय के प्रति अगाध प्रेम प्रकट होता है। वन, तपोवन वृक्ष, लता आदि औद्भिज सजीव एवं निर्जीव सृंष्टी का स्पष्ट चित्रण कवि ने अपने काव्यों में स्पष्ट किया है। अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अंक में यवनिका वन के सुन्दर दृश्य को लेकर ही खुलती है। कुमारसम्भव का प्रारम्भ भी नगाधिराज हिमालय के दृश्य से होता है। रघुवंश का प्रथमसर्ग भी वन के अनुपम सौन्दर्य से ही प्रारम्भ होता है। दिलीप एवं सुदक्षणा दोनों दम्पति का गुरू वशिष्ट आश्रम की ओर जाते समय वनों के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आलौकिक सौन्दर्य का जो वर्णन कवि ने किया है वह वन सम्पदा की महानता का द्योतक है। यथा–

हैयङ्गवीन मादाय घोषवृष्द्धानुपस्थितान्।
नामधेयानि पृच्छन्तौ, वन्यानां मार्गशाखिनाम्।। **र.स. 1/45**

अर्थात् महाराजा दिलीप सारथी के साथ रथ में सवार होकर मार्ग में वृक्षों के नामों को पूछते हुए तथा पोले बांसों में वायु भर जाने के कारण जो अनुपम संगीत ध्वनि उत्पन्न होती थी, उसके साथ कुंजों में स्थित वनदेवता द्वारा ताल मिलाकर राजा के वंश का गान गाया जाना एवं मार्ग में वृद्ध गोपालों द्वारा दूध में से निकाले गये ताजे घृत एवं मक्खन से भरे हुये पत्तों को लाया जाना आदि वृक्षों की महिमा का वर्णन रघुवंश में वर्णित है। महाराजा दिलीप वनसम्पदा में अगाध प्रेम रखते हैं। राजा वृक्षों से कहता है कि हे वृक्षों तुम्हें हमारा नमस्कार है, यथा– "तरुवे नमोऽस्तु" रामायण, महाभारत मे भी वनों के नैसर्गिक लीला का सर्वोत्तम ज्ञान वर्णित है। "यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बांन्धवों में" श्री रामचन्द्र जी स्वयं कहते हैं कि इन वनों के वृक्ष और हरिण हमें स्वयं अपने मित्रों के समान लगते हैं। यही कारण है कि स्वयं मर्यादा पुरुषोत्त्म भगवान श्री राम सीता के हरण होने में वृक्षों, लताओं, पर्वतों सभी सजीव एवं निर्जीव द्यृष्यों से सीता की कुशलता पूछते हैं। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वृक्ष भी अपूर्ण मानव ही हैं। भारतीय प्रजा के पूर्वजों ने तो वृक्षों को इससे भी अधिक महत्ता दी थी। भारतीय संस्कृति का विस्तार ही वृक्षों के साथ ही हुआ है क्योंकि द्रव्यों का सम्बन्ध पञ्चमहाभूतों से बना हुआ है जिसकी चिकित्सा भी पञ्चमहाभूत द्रव्यों से होती है।

भारतीय परम्परा के अनुसार महाराजा दिलीप अतिथियों की कुशलता के साथ–साथ वन सम्पदा की भी कुशलता पूछते हैं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में वनसम्पदा को विशेष स्थान दिया गया है। यथा–

आधारवन्ध प्रमुखैः प्रयत्नैः सवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
क्वच्चिंन्न वाय्वादिरुपप्लवों वः श्रमच्छिदामाश्रपपादपानाम्।।
र.स. 5/6

प्राचीन काल में ग्रामों या नगरों के नाम उनके आसपास बहुसंख्या में स्थित वृक्ष, वनस्पतियों के नाम पर रखे जाते थे। हरियाणा के प्रसिद्ध नगर रोहतक का नाम 'रोहीतक नामक वृक्षों के वाहुल्यता के कारण दिया गया है। इसी प्रकार मागधिका, सौराष्ट्री, (फिटकरी) यवानिका (पारसीकयवानी) कलिंग (इन्द्रयव)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मलयज (चंदन) केदारज (पद्माक) शावरक (लोध्र) चीनाक (कर्पूर) काश्मीरज (कूठ, केशर) हिमावती आदि कतिपय नाम वनौषधि द्रव्यों के उन स्थानों में उत्पन्न होने के कारण दिया गया है। यही कारण है कि हमारे प्राचीन काव्यों में स्थान–स्थान पर वन, उपवन, उद्यान, पुष्प, धारायन्त्र (फुव्वारे) आदि प्राकृतिक सौन्द्रर्यों का विवरण मिलता है। पश्चिमी देशों ने भी 18 वीं शताब्दी से वनसम्पदा के प्रति अपनी रुचि दिखाना प्रारम्भ किया है परन्तु भारत में यह कला प्राचीन काल से बन चुकी थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दनीति, वात्स्यायन–कामसूत्र आदि अनेकों ग्रन्थों में वनस्पति फलवृक्ष, पुष्पोद्यान, तथा उसके पालकों का उल्लेख मिलता है। वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थ में वनस्पतियों के संरक्षण, संकलन का विस्तृत वर्णन मिलता है। औषधि सम्बन्धी द्रव्यगुण विज्ञान का भण्डार–वेदों से लेकर संहिताग्रन्थों एवं निघण्टुग्रन्थों में विस्तृत रूप से भरा पड़ा है जोकि भारत के लिए गौरवपूर्ण है।

कालिदास के काव्यों की विशेषतायें

महाकवि को मनुष्य के मनोविज्ञान का प्रगाढ़ ज्ञान है। ये खूब जानते हैं कि किस अवस्था में मनुष्य की चित्तवृति कैसी होतीं है और वह क्या करता है। स्त्रियों के मनोभावों से ये अच्छी तरह परिचित हैं। इनके काव्यों में श्रृगांर–रस में सम्भोग–श्रृगांर एवं विप्रलम्भ श्रृगांर के उदाहरण भरे पड़े हैं। कालिदास अपनी उपमाओ हैं के लिये प्रसिद्ध है। यथा भारतीय पण्डितों की कहावत है कि "उपमाकालिदासस्य"। इनके काव्यों में शब्दालंकार एवं अनुप्रास के यत्र–तत्र उदाहरण मिलते हैं। मेघदूत नामक खण्ड काव्य में यक्षराज ने मेघ को अपना दूत बनाकर अलकापुरी में अपनी प्रिया को सन्देश भेजते हुए कहा है कि जिस अलकापुरी की स्त्रियाँ हाथ में नीला कमल रखती हैं, केशों को कुन्दो़ के पुष्पों से गूंथती हैं, जिनकी मुखों की शोभा लोध्र पुष्प की रज से श्वेतता को धारण करती है और वेणी में कुवरक, कानों में सुन्दर शिरीषपुष्प, मस्तक पर कदम्ब पुष्प धारण करती हैं, ऐसी वह अलकापुरी है।

हस्तेलीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्,
नीतालोध्रा प्रसवरजसा पाण्डुतामाननेश्रीः।।
चूड़ापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषम्
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीप वधूनाम्।। **मे.दू. उत्तर 2**

इसी अलकापुरी में स्थित क्रीडापर्वत में दौहद्‌वृक्षों का कवि ने सुन्दर रूप से वर्णन किया है। जिस क्रीडापर्वत पर कुवरक वृक्षों से युक्त माधवीलता के कुंज

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हैं और उन कुजों पर रक्त पुष्पों वाला अशोक स्त्रीताडन से विकसित होता है एवं उन कामनियों के मदिरायुक्त मुख को वकुल पावन कर रहा है, तथा उन स्त्रियों के दर्शन से तिलक पुष्प पुष्पित हो रहा है, ऐसा यह पर्वत है—जोकि मनोविज्ञान के प्रगाढ़ ज्ञान का भी द्योतक है।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केशरश्चात्रकान्तः,
प्रत्यासन्नौकुरवक वृते माधिवीमण्डपस्य।
एकः ख्यात स्तवसह मया वामपादाभिलाषीः
कांऽ-क्षत्यनो वदनमदिरा, दोहद्च्छद्मनाऽस्या।।

मे.उ. श्लोक 18

रघुवंश नामक महाकाव्य में वन का वर्णन करते हुये महाराजा दशरथ ने रात्री में विश्राम मनोहर एवं पत्तों की शय्यावाली तथा औषधियों से प्रकाशमान दीपकवाली रात्री बिना सेवकों के बिताई है। इससे कवि ने यह स्पष्ट किया है कि दिव्यौषधियाँ भी रात्री में प्रकाशित होती है। यथा—

सललितकुसुम प्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधि दीपिकासनाथम्।

र.स. 9/70

नदियाँ, भ्रमर, मृग कोकिल, प्रासाद आदि का वर्णन भी इनके काव्यों की विशेषता है। कवि ने दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत को अधिक पसन्द किया है। यही कारण है कि इन्होंने हिमालय से निकलने वाली मन्दाकिनी, गंगा, जमुना, सरस्वती, अलकनन्दा आदि नदियों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया है। इस हिमालय में असंख्य रत्न, जड़ी—बूटी संजीवनी, सोमरस आदि दिव्यौषधियाँ, कल्पवृक्ष, गन्धमादन पर्वत, गुप्तशिला, देवतीर्थ, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, किरात आदि जातियाँ रहती हैं। ऋतुओं का विस्तृत वर्णन इनके ऋतुसंहार नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। कवि ने क्रमशः ग्रीष्म, प्रावृड् (वर्षा) शरदकाल, हैमन्त एवं बसन्त काल का वर्णन सुन्दर रूप से वर्णन किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि इस काल में वनों, उपवनों में कौन—2 से पुष्प पुष्पित होते हैं। यथा—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिल सपद्मम्
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धि
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः
सर्वप्रिये चारुतरं वसन्ते।। **ऋ.सं. 6/8**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कालिदास के काव्यों में वर्णित कतिपय भौगोलिक स्थान

यह भारत कितना विशाल है जिसकी सीमायें कवि कालिदास ने कुमारसम्भव नामक ग्रन्थ में स्पष्ट किया है। यथा–

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरोतोयनिधिवगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

कु.स. 1/9

अर्थात् पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी पश्चिम में सिन्धु नदी घाटी तक लगभग दो हजार वर्ग मील की लम्बाई तक ये घाटियाँ पूर्व और पश्चिम की सीमा बनाती हैं। दक्षिण सीमा में आसाम, बिहार, संयुक्त प्रान्त और पञ्जाब में तथा उत्तरी सीमा में केदारखण्ड के साथ–साथ चीन और तिब्बत है।

कालिदास के काव्यों में वर्णित नगर, पर्वत एवं नदियाँ, नगर-स्थान :–

दशार्णव देश (छत्तीसगढ़) विदिशा (मालवा) आम्रकूट (अमरकण्टक के समीप) उज्जैन, चित्रकूट व्रहमावर्त (कुरुक्षेत्र कनखल हरिद्वार) कण्वाश्रम, अयोध्या, मथुरा, पञ्चवटी, विदर्भ देश, पारसीकदेश, औषधिप्रस्थ–नगर, माल (रतनपुर) देवगिरी (देवगढ़) दशपुर नगर, कालिङ्ग–देश, आनूपदेश, मगध देश कालीमठ, सिद्धपीठ, अगस्त्य–मुनि–आश्रम, कदलीवन, नन्दनवन, तपोवन व्यासगुफा, वासुकीताल, पञ्चप्रयाग, गोपेश्वर, त्रिजुगी नारायण, थानेश्वर अवन्ती (उज्जयनी की राजधानी)

पर्वत

विन्ध्यपर्वत, रामगिरी (रामगढ) देवगिरी (मालवा देश में चम्बल की घाटियाँ) त्रीलकूट पर्वत, देवगिरी पर्वत, कैलाश पर्वत, केदारश्रृगं, गन्धमादन–पर्वत, स्वर्णगिरी, ब्रह्मपुरी, भृगुपंथ, ब्रह्मशिला, विन्ध्याचल, मन्दराचल, सत्यपथ, बन्दर–पुच्छ, देवगिरी गोमुख, कैलाश पर्वत में मानसरोवर

नदियाँ

रेवानदी, (नर्मदा) वेत्रवती, चर्मण्वती, कपिशा, गम्भीरा सरस्वती, निर्विन्ध्या (यंह मालवा देश में एक नदी है) सिन्धु, क्षिप्रा (यह उज्जैन में है) गन्धवती (यह मालवा देश में बहती है) जाहनवी (गंगा) जमुना, सरस्वती, (यह हिमालय के दक्षिण भाग से निकलती है) मन्दाकिनी, अलकनन्दा, गन्धवती वेत्त नदी (सम्भवतः यह मिलसा के निकट वेतवा में मिल जाती है) वेत्र नदी (वेतवा नदी) कावेरी, गौरीकुण्ड, हेमकुण्ड रुद्रकुण्ड, वसुकुण्ड, वासुकीताल वसुधारा, हिमधारा आदि नदियों एवं तालाबों का उल्लेख कवि ने किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जैसा कि सर्वविदित है कि कतिपय वनस्पतियों की पहचान स्थान विशेष से की जाती है जिसमें कि भौगोलिक स्थिति का परिचय होना अनिवार्य है। कुमारसम्भव, मेघदूत आदि ग्रन्थों में कवि ने कतिपय महत्वपूर्ण स्थानों का उल्लेख किया है, जिसमें केदार खण्ड (उत्तरी हिमालय) में कैलाश, गन्धमादन पर्वत, औषधिप्रस्थ आदि स्थान मुख्य हैं। इस औषधिप्रस्थ नगर एवं गन्धमादन पर्वत पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। यह औषधिप्रस्थ नगर उत्तराखण्ड में है जोकि केदारखण्ड का एक भाग है। यथा–

नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्ठगिरिर्भवेत्।
तावत्केदारकंक्षेत्रं, शिवमन्दिरमुत्तमम्।। के.ख.

यह औषधिप्रस्थ नगर हिमवान् का वह पुर है, जोकि चौखम्बा हिमालय के नीचे मूल स्थान खामण्डना, या रणमण्डना के सौम्य स्थान है, तथा इसके दोनों ओर केदारनाथ, तथा बद्रीनाथ हैं। इस क्षेत्र में तप्तकुण्ड, त्रिजुगी, शैलुपंवाली–कांटा, गन्धमादन आदि उपवन हैं। नन्दा देवी के ऊपरी पृष्ट भाग में अलकापुरी एवं अमरावती हैं। यह हिमालय गंगा, यमुना, अलकनन्दा, ब्रह्मपुत्र झेलम, व्यास, सतलुज, रावी आदि नदियों का उद्गम स्रोत है। महर्षि चरक ने भी हिमालय को ही औषधियों के लिये श्रेष्ठ माना है। "औषधीनां पराभूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः" अर्थात हिमवान् चतुस्तम्भ के चारों ओर दिव्यौषधियों के सुन्दर वन, उपवन हैं। महाकवि ने अपने काव्यों में जिन नगर, पर्वत एवं नदियों का उल्लेख किया है वह पाठकों की सुविधा हेतु पूर्व में दिया गया है।

लेखक को आशा है कि कालिदास की वनस्पतियाँ नामक पुस्तक में वनस्पतियों के प्राप्ति स्थान भौगोलिक परिचय बनों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व आदि विषयक सामग्री प्रस्तुत की गई है।

हिमालय में पर्यावरण एवं वनस्पतियों का विकास

यह सर्वविदित है कि करोड़ों वर्षों बाद पृथ्वी एक आग के गोले से बदल कर मनुष्य के रहने योग्य बन पाई और धीरे–धीरे अनेक प्रकार के प्राणियों तथा वनस्पतियों का विकास हो पाया था। डिनोसोरों युग के बाद अत्यन्त विशाल प्राणी जिनका अस्तित्व अब पृथ्वी पर नहीं है ऐसे स्तनपाई प्राणियों का जन्म हुआ। आज के युग में मनुष्य उन प्राणियों का राजा माना गया है। प्रारम्भ में वनस्पतियों का विकास एक कोशीय प्राणी से हुआ, बाद में एक जीव की कोशिकाओं की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संख्या बढ़ने लगी। सर्वप्रथम प्रजन पद्धति में जीवाणु का विकास हुआ। ये जीवाणु एक कोशिका में जमा रहते हैं। हजारों बीजाणुओं में से कुछ बीजाणु जमकर नये पौधे बन जाते हैं। आजकल यह प्रक्रिया कुकुरमुत्ता, काई (Moss) तथा पर्णांग (Moss) में देखी जाती है। इस पृथ्वी पर अण्डज, स्वेदज एवं औम्दिज्ज सृष्ठी का विकास हुआ। अतः जान्तव एवं औद्भिज द्रव्यों के विकास में प्राकृतिक संतुलन एक महत्वपूर्ण नियम है।

इन सारे वनों के विकास का आधार मिट्टी एवं प्राकृतिक जल स्त्रोत हैं। प्रकृति के सन्तुलन हेतु विभिन्न जाति के पशु, पक्षी, हिरण, शेर, भालू सरीसृप एवं विभिन्न जलवायु में उगने वाले वन उपवन एवं हिमशैल हैं। जिनसे प्रकृति का सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति सन्तुलन में निम्न 6 आवश्यक नियमों की आवश्यकता देखी गई है। यथा–1. स्थायित्व, 2. स्थायित्व को लाने हेतु संरक्षण, 3. विविधता, 4. सव अवशेषों को जमीन में लौटाना 5. सन्तुलन, 6. सहयोग।

प्रकृति के साथ सहकार और सहयोग के साथ रहना चाहिये तभा वनों का विकास एवं संरक्षण हो सकता है। जीवन का आधार ही सन्तुलन है। वनों का विकास सम्बर्धन, रोपण एवं काटना समन्वय एवं सन्तुलन की भावना से किया जाना चाहिये तभी हम पर्यावरण की सुरक्षा कर सकते हैं। किसी भी देश की संस्कृति समझने के लिये पहिले उस देश के पर्यावरण को समझने की आवश्यकता होती है। मनुष्य का जीवन, रहन–सहन का स्तर मिट्टी–पानी एवं वनस्पति पर आधारित हैं। जब तक पर्यावरण का संरक्षण होता है तब तक वह देश समृद्धि के साथ पनपता रहता है और उसकी संस्कृति का विकास होता रहता है। पर्यावरण की उपेक्षा करने पर संस्कृति सभ्यता एवं स्वास्थ्य का ह्रास होने लगता है। प्राचीन दुनिया के इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि भारत में बढ़ती हुई आवादी को देखते हुये पर्यावरण का सन्तुलन होना बहुत आवश्यक होता है।

हिमालय क्षेत्र

देश में हिमालय के विभिन्न भागों में समुद्रोच्छ्राय, भू–संरचना, जलवायु तथा प्राकृतिक वनस्पति में अत्यन्त विषमता या अन्तर है, जिसका लाभ अनेक प्रकार की वनस्पतियों की उत्पत्ति के रूप में होता है। इनमें बहुत बड़ी संख्या में औषधोपयोगी वानस्पतिक द्रव्य उपलब्ध हैं। केवल यही नहीं हिमालय क्षेत्र में वानस्पतिक, खनिज तथा जांगम––तीनों मूल की औषधियाँ प्रयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हिमालय प्रदेश में औषधि उपयोग के साथ ही, आर्थिक,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्यापारिक, रासायनिक, औद्योगिक तथा अन्य विभिन्न प्रयोजनों में आने वाली वनस्पतियाँ बड़ी मात्रा में मुख्य वनोपन तथा गौण वनों के रूप में मिलती है, जो अनेक रूपों में प्रयोग की जाती है।

उत्तराखण्ड हिमालय

आयुर्वेद में हिमालय को औषधियों का स्थल माना गया है– 'हिमवानौषधि–भूमिनाम्' (चरक, सूत्र, 25) अर्थात् हिमालय औषधियों की उत्पति स्थल के रूप में श्रेष्ठ है। इस प्रसंग में चरक ने कहा है :–

'औषधिनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः। तस्मात्फलानि तज्जानि ग्राहयेत् (चरक, चिकित्सा. रसायन पाद)

इसके अतिरिक्त और भी कई स्थलों में चरक, सुश्रुत, वाग्भट की संहिताओं में हिमालय की प्रशंसा तथा विशेषता को औषधि स्थल के रूप में प्रदर्शित किया।

पश्चिमी हिमालय के उत्तर प्रदेश राज्य में अवस्थित पर्वतीय क्षेत्रों को कुमाऊँ, टिहरी, तथा गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल, चमोली, उत्तरकाशी तथा देहरादून के सम्मिलित समूह क्षेत्र को उत्तराखंड हिमालय कहा जाता है। इसमें शिवालिक, तराई–भावर के साथ जुड़े क्षेत्र भी आ जाते हैं।

हिमालय का स्वरूप, सौन्दर्य तथा महत्ता का वर्णन भारत के प्राचीन साहित्य में बहुत मिलता है। संस्कृति साहित्य में कालिदास का प्रसिद्ध श्लोक प्रायः उद्धृत किया जाता है–

'अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवात्मा, हिमालयों नाम नगाधिराजः'

(कुमारसम्भव, सर्ग 1)

शास्त्र में हिमालय के पाँच खंडों का वर्णन आता है–

खंडापंच हिमालयस्य कथिता, नेपाल कूमाँचलौ।
केदारोऽथ जलन्धोऽथ रूचिर, कश्मीर संज्ञोत्तिमः।। "केदारखण्ड"

इस सूत्र के अनुसार प्राचीन मान्यता में हिमालय के पाँच निम्नांकित भाग या प्रदेश विभक्त किये गये हैं– (क) नेपाल, (ख) कूर्माचंल, (केदार खंण्ड, (घ) जलन्धर, (ङ) कश्मीर।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय को आयुर्वेद के ग्रन्थों में विशेष स्थान दिया गया है, जिसका सम्बन्ध आयुर्वेदावतरण से होने से और निकट तथा महत्वपूर्ण हो जाता है।

हमारा देश उष्ण जलवायु का देश है। उत्तर में हिमालय के पहाड़ों के कारण मैदानी भागों का भी तापमान कम हो जाता है। जाड़ों में हिमालय मध्य एशिया की शीतलहरों को रोकता है। हिमालय की पर्वतमालाओं में बर्फ अधिक रहने के कारण वर्षा अधिक होती है। देश की मौसमी परस्थिति को संभालने में हिमालय की पर्वत श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान समय में शान्त हिमालय पर भी प्रहार हो रहे हैं। आज बड़े पैमाने पर वनों का दोहन हो रहा है। बनों के व्यापारिक रूप से लगातार कटान करने से कतिपय दैविक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। बड़े पैमाने पर बनों का विनाश, सड़कों के निर्माण से भूखलन एवं भूकम्पों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। कृत्रिम सागर बनाये जाने से भी पर्यावरण को खतरा होने की संभावना है। नदियों के जलस्त्रोतों में जल की मात्रा दिनों दिन घटती जा रही है। अतः हमें इस प्रकार की बड़ी–बड़ी योजनाओं पर पुनः विचार करना होगा। क्योंकि यदि पहाड़ों का पर्यावरण नष्ट हो गया तो सारे भारत की परिस्थिति शोचनीय होगी। मेरे विचार से हिमालय के पर्यावरण को ध्यान में रखते हुये भावी विशाल योजनाओं एवं सड़क निर्माण कार्यों की तकनीकी–विधियों पर विचार करना होगा। क्योंकि बड़े–बड़े डायनामाईट के लगातार प्रयोग करने से पहाड़ों की सतह हिल–डुल जाती है।

यह सर्वविदित है कि पर्यावरण प्रदूषण के निम्न प्रमुख पांच कारण हैं। यथा– ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं ताप प्रदूषण मुख्य हैं। इन प्रदूषणों से आज इस चकाचौंध के भौतिक युग को कैसे बचाया जाय यह एक विश्व की समस्या है। ध्वनि प्रदूषण नगरों महानगरों में बढ़ता शोर मानवीय शक्तियों से बाहर होता चला आ रहा है। और यदि यही गति जारी रही तो 12वीं शदी तक असंख्य व्यक्ति ध्वनि प्रदूषण के शिकार हो जायेंगे। नगरों में गन्दे नालों तथा कारखानों द्वारा बहाये गये रासायनिक पदार्थ जल प्रदूषण को दिन प्रतिदिन बढ़ावा दे रहे हैं। वायु प्रदूषण के लिये कल कारखानों तथा मोटर वाहनों द्वारा छोड़ी गई गैस एवं वैज्ञानिक तथा आणविक परीक्षण अधिक उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त वनों का बढ़ता हुआ विनाश व प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन भूमि व ताप प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। इन सबके दुष्प्रभाव में जंगलों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के क्षेत्रफल में क्रमशः कमी होना, वन्य जीवों का विनाश, भूमिक्षरण, मिट्टी की उर्वराशक्ति का ह्रास एवं लवणीयता का निरन्तर वृद्धि होना। पर्यावरण के असन्तुलन में प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन पर्यावरण की नैसर्गिक व्यवस्था पर मानव द्वारा प्रहार करना मुख्य कारण है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र, वात्सयायन कामसूत्र, वाराही संहिता आदि कतिपय पौराणिक ग्रंथों में वनस्पतियों के संरक्षण रोपण, संकलन करने तथा उसके पालकों का निर्देश है। पर्यावरण की समृद्धि हेतु सामग्री वेदों से लेकर पुराणों एवं संहिताओं में विस्तृत रूप से वर्णित है। प्राचीन काल में सीमाक्षेत्र, जलाशयक्षेत्र एवं मार्ग में लगाये हुये वृक्षों को काटने पर द्विगुण दण्ड देने का विधान है। ऐसा उल्लेख भारतीय दण्डसिहंता में मिलता है। पर्यावरण प्रदूषण के दुष्परिणामों को देखते हुये परखनली द्वारा पौधों की पनपाने की तकनीकी गतिविधियों में भी बाधा आ सकती है। क्योंकि मिट्टी, हवा, पानी एंव भूमि को प्रदूषण से बचाना होगा। अन्यथा इन अजैविक कारकों की विकृति से ये प्रयोग भी सफल नहीं हो सकेंगे। प्राकृतिक साधनों को हमें प्रदूषण से रोकने हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रमों पर विशेष जोर देना होगा। प्राचीन वैदिक साहित्य में हवन–यज्ञों द्वारा वायुप्रदूषण को दूर करने के अनेक उपायों का उल्लेख है। इन उपायों द्वारा भी पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। काल (नियति) से पर्यावरण का अन्योन्याश्रय सम्बंध है। वर्षा, शीत एवं ताप (गर्मी) ये तीन काल माने गये हैं। इनमें विद्यात होने पर पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है। यथा–

कालः सृजति भूस्तानिः, कालः संहरते प्रजाः।
कालः स्वपति जागर्ति, कालोहि दुरति क्रमः।। **"हारितसंहिता"**

पर्यावरण के सन्तुलित रहने पर वर्षा, शरद्, हैमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म ये ऋतुयें भी संतुलित रहती हैं एवं सूर्य की गति के अनुसार दोनों काल उत्तरायण एवं दक्षिणायन साम्यावस्था में जीवन के स्वरूप बनाये रखते हैं। यथा–

बर्षा शरद् हैमन्तौ दक्षिणायन मध्यगाः।
शिशिर च बसन्तश्च, ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे।। **"हारित संहिता"**

पर्यावरण के चिपको नेता सुन्दरलाल बहुगुणा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि पर्यावरण संतुलन एवं विकास की सही दिशा में आगे बढ़ने के लिये भूमि उपयोग में परिवर्तन करना पड़ेगा। उन्होंने कहा है कि धरती पर जब

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मिट्टी और पानी बढ़ेगा तभी वास्तविक विकास होगा। इसके लिये हमें पृथ्वी को वनों से आच्छाादित करना होगा। पूरे क्षेत्र में ऐसी वनस्पतियां उगाई जायं जो जलस्रोतों को पुनजीर्वित कर सकें और मिट्टी के क्षरण को रोककर भूमि के उपजाऊपंन को बढ़ा सकें। जलस्रोतों के संरक्षण के लिये यह आवश्यक है कि प्राकृतिक रूप से उगने वाली झाड़ियों एवं पेड़ों को सुरक्षित रखा जाय। सिविल एवं सुरक्षित वनों के ढलानों पर चारा उगाया जाय। नदियों के बहान एवं कटान वाले क्षेत्रों में पेड़ पौधे लगाये जायं। राष्ट्रीय नीति के अनुसार वनों का विकास करते हुये हरितक्रान्ती लाई जाय। कृषिवानिकी, शहरीवानिकी तथा सामाजिक वानिकी को विकसित करने के लिये बड़े स्तर पर कार्यक्रम प्रारम्भ किये जायं। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये सामाजिक वानिकी को विशेष प्राथमिकता दी जाय। जड़ी–बूटियों की खेती को विभिन्न जलवायु एवं भूमि के आधार पर विकसित किया जाय। पशुचारा लघुउद्योग एवं कच्चेमाल की आपूर्ति हेतु वृक्षारोपण कार्यक्रमों को अधिक बढ़ावा देकर पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार की जनोपयोगी योजना विकसित कर इसका सन्देश गांव–गांव, शहरों–महानगरों तक पहुंचाया जाये। स्कूल पौधशाला, किसान पौधशाला, वनौषधि उद्यान, वृक्षपट्टी योजना आदि कतिपय कार्यक्रमों को सुचारू रूप से क्रियान्वित किया जाय। वृक्षारोपण योजना भूमिजल संरक्षण योजना, वन्यजन्तु संरक्षण योजनाओं को युद्धस्तर पर अपनाया जाय। तभी पर्यावरण को प्रदूषण से बचाया जा सकता है। हिमालय में बहुपक्षीय पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। उदाहरण के लिय उत्तरारखण्ड हिमालय में वनस्पतिसम्पदा का ह्रास होता जा रहा है, विशेषकर आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त अनेक महत्वपूर्ण वनौषधियों की उपलब्धि समस्याओं में है, अनेक वनस्पतियाँ शनैः शनैः लुप्त होती जा रही हैं या पूर्व की भाँति पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती। वनों के कटान, पशुचारण, भूक्षरण, जल स्रोतों में कमी आने तथा वनस्पतियों के दोहन आदि कई प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस क्षेत्र के जलवायु, भूमि तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियों में पर्यावरण प्रदूषण के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ता जा रहा है। इन समस्त पर्यावरणीय समस्याओं का समुचित समाधान आवश्यक है। इस दिशा में अनेक उपायों के साथ, आयुर्वेदीय वनस्पतियों का रोपण तथा सम्बर्धन बहुत सहायक होगा।

पर्यावरण के सन्तुलित रहने पर वर्षा, शरद्, हैमन्त, शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म ये ऋतुयें सन्तुलित होकर आरोग्य प्रदान करती हैं। सूर्य की गती के अनुसार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत्तरायण (आदान काल) एवं दक्षिणायन (विसर्गकाल) कहते हैं। जोकि इस ऋतु चक्र से स्पष्ट हैं।

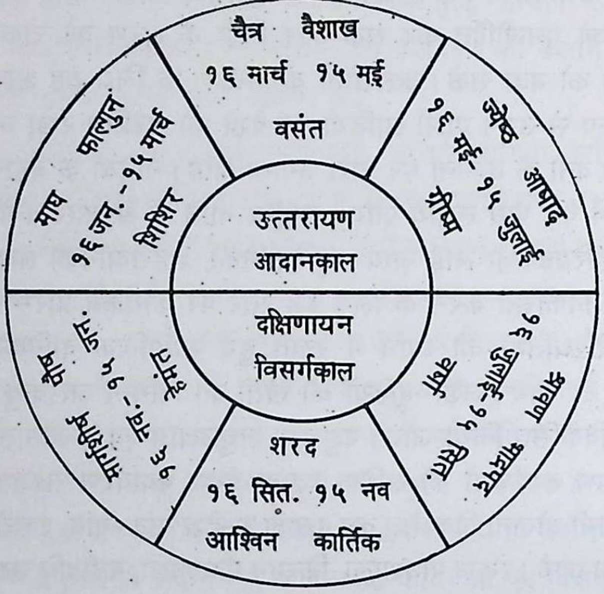

सूर्य की गति के अनुसार उत्तरायण एवं दक्षिणायनकाल

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम्।
मध्ये मध्यबलं त्वन्ते श्रेष्ठ मग्रे विनिर्दिशेत्।। **-च.सू. 6.8**

आज हिमालय क्षेत्र के धार्मिक स्थानों एवं पर्यटन स्थलों में बढ़ते हुये पर्यटन के कारण सम्पूर्ण गोमुख–गंगोत्री घाटी, म्यूंडारघाटी, (हेमकुण्ड) फूलों की घाटी आदि स्थलों की नैसर्गिकता समाप्त होती जा रही है। यहाँ की स्थिति तो बेहद दर्दनाक होती जा रही है। कभी यहाँ पर दुर्लभ भोजपत्र वृक्षों, सिमरु, जूनिपरस, पदमलकड़ी आदि वृक्षों व झाड़ियों के सुगन्धित सदावहार बन थे तभी इन स्थानों को भूजवासा, गन्धमादन, तपोवन, नन्दनवन, नाम से पुकारा जाता है। अब दिनोंदिन पर्यावरण असंन्तुलन के कारण नैसर्गिक वन एवं हिमनद क्षीण होते जा रहे हैं। जहाँ देखें रेत, पत्थर और मलवा इन स्थानों पर देखने को मिलता है, इन अभयारण्यो में भी पर्यटन के अधिक फैलाव होने के कारण ईन्धन हेतु मानव की कुल्हाड़ी पहुँच चुकी है। मानव के अतृप्त भोगविलास एवं दोहन प्रवृति के चलते ये वन भी सुरक्षित रह पायेंगे यह कहना कठिन है। इस भयावह विनाश का सीघा असर यहां के तापमान पर पड़ रहा है, पहले सघन जंगलों के नमी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के कारण ग्लेशियर स्थिर रहते थे, बहिमानी जलप्रवाह का अद्भुत्त सौन्दर्य दिखाई देता था अब खूब सूरत वादियाँ विनाश के कगार पर जा रही हैं। भूस्खलनों की गति काफी बढ़ गई है। हिम–स्वलन भी सक्रिय हो चुका है ऐसे अति संवेदनशील विशेष महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की समय रहते सुरक्षा नहीं की गई व पर्यावरण संरक्षण व सम्बर्धन के उपाय नहीं किये गये तो इसके भीषण दुष्परिणाम हो सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि मानव द्वारा प्रकृति पर किये गये अनैतिक आघातों पर सख्ती से रोक लगाई जाय। अन्यथा हिमालय की प्राकृतिक हरी–भरी घाटियाँ मरुस्थल में बदल जायेंगी।

अतः मेरे विचार से पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण को रोकने के लिये उपरोक्त मूल कारणों एवं उनके निराकरण के उपायों को ध्यान में रखते हुये भारत के सभी सीमान्त क्षेत्रों, ग्रामीण आंचलों, नगरों में वन महोत्सव एवं वनौषधि रोपण सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से बराबर चलाये जाने चाहिये। ये वन उपवन राष्ट्र के प्राण एवं जीवन के आधार हैं। इसलिये घरों, आंगनों, खेतों के आस–पास स्कूलों, कार्यालयों एवं खाली स्थानों पर छायादार औषध उपयोग के वृक्ष गम्भारी, अशोक, कचनार, पाठल, बेल, नीम, बकुल, अरणी, श्योनाक, सप्तपर्ण, बट, गूलर पारीष, जामुन, पीपल, आम, असन, रोहीतक, थुनेर, देवदार, चीड़, वांझ, वुरास, पंया, काफल पांगर वरूण आदि उपयोगी वृक्षों का रोपण कार्य तेजी से विनारूकावट के चलाये जाने चाहिये। क्योंकि ये वन ही हमारे जीवन के आधार हैं और पर्यावरण को सन्तुलित करने में मुख्य सहायक हैं।

भारतीय संस्कृति एवं नारी के जीवन में पर्यावरण का महत्व

सुबह सूरज को अर्ध्य देती, सांझ को तुलसी चौरे पर दीप जलाती, द्वार पर रंगोली सजाती, कुआं पूजती, पीपल के पेड़ पर कामनापूर्ति के लिए जल चढ़ाती तथा वटवृक्ष से अक्षय सुहाग मांगती हुई नारी, भारतीय संस्कृति में, हर कहीं पर्यावरण से जुड़ी है। आधुनिक शब्दावली में जिसे पर्यावरण (परिवेशिकी या इकोलोजी) कहा जाता है उसे भारतीय पारंपरिक शब्दावली में प्रकृति कहा जाता रहा है। पुरुष प्रकृति के सहयोग से ही तो सृष्टि की रचना करता है।

नारी भी प्रकृति ही है, वह सृजन करती है और अपने से संसार का संरक्षण भी। हमारे देश की संस्कृति, रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दो में मूलतः अरण्यसंस्कृति रही है। यह अरण्यसंस्कृति हमारे प्राचीनतम ग्रंथों, वेदों से लेकर रामायण–महाभारत पुराणों व संस्कृत के बाद के काव्यों में निरन्तर प्रवाहमान रही है। भारतीय दृष्टि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकृति के शोषण की न होकर उसके संरक्षण और श्रद्धा की रही है। प्रकृति पर विजय पाने की धारणा तो पश्चिम की है। भारतीय दृष्टि में मनुष्य प्रकृति के साथ भारतीय–जन का यही रागात्मक पारस्परिक संबंध अरण्यसंस्कृति है। अपनी सृजनशीलता, कोमलता एवं भावुकता के कारण प्रकृति प्रेम नारी की स्वाभाविक प्रवृति के रूप में विकसित हुआ है।

तपोवन भारतीय संस्कृति के अविभाज्य अङ्ग रहे हैं। हिरणों को अपने हाथों से जंगली धान खिलाती, गायों को थपथपाती, पेड़–पौधों को दया–स्नेह वश सींचती हुई वन–कन्याएं हर तपोवन के वर्णनों में मिल जाएंगी। 'वनश्री', वनलक्ष्मी या वनदेवता की मनोहर कल्पना भी इसी संस्कृति की देन है। वनों–तपोवनों का सात्विक, शांत एवं सुरम्य वातावरण मनुष्य को उस भाव भूमि पर पहुंचा देता है जहां चिरंतन आनंद ही आनंद है। इन आनंद के स्रोतों की रक्षा–भावना नारी में चिरकाल से विद्यमान रही है, यही कारण है कि कालिदास के कुमारसंभव की पार्वती तो छोटे–छोटे पौधों को स्नेहपूर्वक जल से सींच कर पुत्रवत बड़ा करती है और कार्तिकेय के जन्म के पश्चात भी इन वृक्षों के प्रति उसका वात्सल्य कम नहीं होता। कालिदास की शकुंतला का प्रकृति–प्रेम तो इससे भी बढ़कर है। वह तो वृक्षों को सींचे बिना स्वयं जल पीना भी नहीं चाहती और श्रृंगार प्रिया होते हुए भी स्नेह के वशीभूत हो पेड़ों से फूल पत्ते तक नहीं तोड़ती। वह वृक्षों के पहले–पहल फूलने पर उत्सव मनाती है। प्रकृति भी निष्ठुर या अकृतज्ञ नहीं है। वह भी प्रेम का प्रतिदान देती है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ, पर्व या उत्सव सब प्रकृति नियमों में आबद्ध रहे हैं। प्रकृति की सानुकूलता को पाने के लिए उत्सव निरंतर मनाए जाते हैं। मनुष्य मात्र उत्सवप्रिय होता है, परन्तु महिलाएं विशेष रूप से उत्साह एवं श्रद्धा से परिवार; समाज व संसार की भलाई के लिए सब कर्मकांड निवाहती रही हैं। ग्रामीण संस्कृति के उत्सवों व पर्वों में युगों–युगों से यह उल्लास आरक्षित रहा है। कुलदेवता हो, डीहदेवता हो या जनपद का देवता, सभी की पूजा नारी श्रद्धापूर्वक करती है। संभवतः जयशंकर प्रसाद ने इसीलिए नारी को केवल श्रद्धा कहा था। लोकजीवन में उत्सवों की अभिव्यक्ति छोटे–छोटे तीज त्यौहारों में अब भी देखी जा सकती है। एक मिट्टी के घड़े के ऊपर कसोरे में अक्षत, नये आम का पत्ता और उस पर जलता हुआ दीप प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति देता है। चावल–हल्दी के लेप से बनाए गए भित्तिचित्र जिनमें प्रकृति के अवयव चांद–तारे या पेड़ आदि ही अकेरे जाते हैं, नारी की कलाप्रियता के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उद्‌गार हैं। किसी भी मांगलिक अवसर पर घर–आंगन में गेहूं के आटे से चौक पूरना या पिसे चावल से अल्पना बनाना, वातावरण को कितना सजीव, संहृदय व सुकोमल बना देता है। प्राचीन उत्सवों में हमेशा प्रकृति के साथ नारी का एक अंतरंग संबंध ही अभिव्यक्त होता रहा है। तीज, गणगौर, करवाचौथ हो या अहोई–अष्टमी सब में प्रकृति के प्रति सहज स्नेहभावना के साथ–साथ परिवार के सदस्यों के लिए मंगल भावनाएं जुड़ी हैं। लोकसंगीत, लोकगीत या लाक–नृत्य भी प्रकृति से जुड़े रहे हैं और नारी इन कलाओं के माध्यम से अपने आपको प्रकृति के संदर्भ में अभिव्यक्त करती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में कोई भी यज्ञ या उत्सव नारी की उपस्थिति के बिना संपन्न ही नहीं हो सकता था। श्रीराम को सीता की अनुपस्थिति में सुवर्णमूर्ति बनवा कर यज्ञ संपन्न करना पड़ा था। वैदिक काल के नित्य–यज्ञ भी प्रकृति और पर्यावरण के क्षण–प्रतिक्षण सुंदर लगने वाले आयोमों के प्रति कृतज्ञता–ज्ञापंन के रूप में ही मनाए जाते थे। बाद के उत्सवों में हमेशा एक अंतरंग संबंध परिवेशिकी (इकोलाजी) का रहता था। वसंतपंचमी का रिश्ता सरसों के फूल और आम के बौर से था, तो विजयलक्ष्मी का खंजन व नीलकंठ की तलाश से नदी–पोखर में स्नान करना, देवों के सान्निध्य में उल्लास मनाना। रंग–विरंगे वस्त्र पहनना व अच्छे–अच्छे व्यंजन बनाना– ये सब नारी की दिनचर्या के ही अंग रहे हैं।

वृक्षों में देवत्व की उद्‌भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है और महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। पंचवटी अर्थात पांच वृक्षों का समूह हमारे यहां बहुत पूज्य रहा है। पञ्चपल्लव, पञ्चक्षीरीवृक्षों का भारतीय संस्कृति एवं औषध उपयोग में महत्वपूर्ण है। ये पेड़ अपने औषधीय गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण रहे, इसीलिए पूज्य बने। सदियों से नारी वट–वृक्ष की पूजा कर अपने पति की सुख–समृद्धि की कामना करती आई है। पीपल की पूजा पेड़ों के प्रति श्रद्धा के प्रतीक हैं। ग्रामीण संस्कृति ही नहीं, नागरिक संस्कृति के विकास में भी वृक्षों का योगदान रहा है। अशोक–दोहद हो या दोलोत्सव, नगरकन्याएं, महिलाएं बहुत उत्साहपूर्वक इनमें भाग लेती रही हैं। वृक्षों के फूलों व पत्तों से श्रृंगार करना, देवपूजा में पुष्पांजलि अर्पित करना आदि कार्य प्रकृति प्रेम के ही प्रतीक हैं। राजाओं के प्रासादों में तो स्त्रियों के लिए प्रमदवन अलग से होता था जहां वे प्रकृति की निकटता पा सकती थीं।

प्रकृति के जिस संतुलन की बात प्रारंभ में की गई है वह आज गड़बड़ा गया है। कारण है बढ़ती हुई आबादी, औद्योगिकि क्रांति, 'विज्ञान के अनेकों आविष्कारों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ने भोगवाद की संस्कृति को जन्म दिया है। व्यक्ति की लोभ की प्रवृति ने प्रकृति के साधनों को अंधाधुंध दुहा है। आत्मकेंद्रित मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिन–ब–दिन भयावह होती जा रही है। जल हो, वायु हो कुछ भी स्वच्छ नहीं रहा। तेज शोर मानसिक रूप से मनुष्य को विकलांग किए दे रहा है। ओजोन परत में छेद बढ़ता जा रहा है। धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। वृक्षों तथा वनों के विनाश तथा परमाणु ऊर्जा के युग में यों तो मानवमात्र पर उत्तरदायित्व है कि इस समस्या का समाधान करे पर परिवार व समाज की दूरी होने के कारण नारी का विशेष दायित्व है कि वह अपनी आने वाली संतति को अधिक हरीभरी धरती व स्वच्छ रमणीय परिवेश सौंपे। 'मातृत्व' नारी की सबसे बड़ी विशेषता है पर फ़िनलैंड की (चार हजार) महिलाएं जब शपथ लेती हैं कि वे तब तक गर्भधारणं नहीं करेंगी जब तक सरकार परमाणु बिजली बनानें की नीति नहीं बदलती, तो हर संवेदनशील मनुष्य सोचने को मजबूर हो जाता है कि हमारी धरती के भविष्य का क्या होने वाला है उन अजन्मे शिशुओं की प्रार्थनाओं का जिन्हें इंग्लैंड के कवि लुई मैकनीस ने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है यह कविता पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

अतः पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों में भारत को नारी को केंद्र में रखकर ही चलना होगा। प्राचीन मूल्य बहुत बदल गये हैं, नारी घर से बाहर काम करने निकल कर दोहरे कर्तव्य का भार अपने नरम कंधों पर उठा रही है। पर तब भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही पर्यावरण से अधिक जुड़ी है। अब भी उत्सव हों या घर–आंगन की छोटी–सी बगिया या वह भी न हो तो फ्लैट की बालकनी में सजाए दो चार गमलों की हरीतिमा–सबका श्रेय नारी की जिजीविषा व उत्साह को है। इसी शदी के तीसरे शतक में हुई अमृतदेवी व उनकी तीन पुत्रियों को कौन भूल सकता है जिन्होंने जोघपुर जिले के खेजडली गांव में पेड़ों को कटने से बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए। वे पेड़ों से चिपकी रहीं और राजा के कारिंदों ने कुल्हाड़ी से उनके सिर काट डाले। वनसंरक्षण और वृक्षारोपण के कार्यक्रमों में आज इसी प्रकार के त्याग व बलिदान की अपेक्षा है। जनसंख्या नियंत्रण, जल तथा वायु व ध्वनि–प्रदूषण को रोकने में भी भारतीय नारी सहयोग कर सकती है। बच्चों को जिम्मेदार नागरिक बनाने की प्रक्रिया में उन्हें पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने की शिक्षा भी मां के रूप में नारी को ही देनी है। कागज, पेंसिल कम खर्च हों इसलिए स्लेट या ब्लैकबोर्ड का प्रयोग हो, जल, बिजली का अपव्यय न हो, यह सब नारी की क्षमता से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त वह स्वयं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भी खाना बनाने में सौर–ऊर्जा का प्रयोग कर, श्रृंगारप्रियता के साधनों, चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग कम करके भी पर्यावरण संरक्षण कर सकती है। यह तो हुई प्राकृतिक पर्यावरण की बात। पर्यावरण का फलक बहुत विस्तृत है। घर–परिवार, ग्राम, नगर सबकी परिस्थितियां हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं। परिवारिक वातावरण के असंतुलन से भी अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों का जन्म होता है। परिवार की महत्वपूर्ण इकाई है नारी। यदि अपनी सहनशीलता–दूरदर्शिता से वह परिवार को शान्त वातावरण दे पाती है तो पूरा समाज स्वस्थ होगा। संतुलित समाज ही पर्यावरण प्रदूषण को दूर कर इस पृथ्वी को रहने योग्य बना सकता है। प्रकृति का असंतुलन मनुष्य की लोभ की प्रवृतिवश हीं होता है। यदि नारी निःस्वार्थमय संतति को जन्म देती है तो धीरे–धीरे पर्यावरण सुखद होगा और मनुष्य को भविष्य में बेहतर जीवन मिल सकेगा।

पर्यावरण का विनाश एवं ईन्धन की समस्या-नारी

मनाली से मणिकर्ण (हिमाचल प्रदेश) के बीच करीब 75 किलोमीटर लंबी हिमालय पट्टी जगह जगह गंजी और नंगी दिखाई दी तो कसौल से कुछ दूर पक्की सड़क पर मिली एक वृद्धा ने उन पहाड़ों को बेरहम हजामत और खासकर औरत जात पर उसके प्रतिकूल प्रभावों का सारा मर्म समझा दिया– 'ये रूखे और मटियाले पहाड़ हमेशा ऐसे नहीं थे। पेड़ों की कटाई ने इनका यह हाल कर दिया।' कुछ क्षण रुक कर अपनी बूढ़ी पीठ पर जलावन (ईंधन) के लदे हुए भारी भरकम गट्ठर (जिसके असहनीय बोझ से उसका शरीर कमान की तरह मुड़ गया था) की ओर इशारा करते हुए बोली– 'उन दिनों ये सब यहीं आसपास मिल जाता था तो घर–गृहस्थी के लिए भी पूरा वक्त होता था। अब इसी के लिए कई मील दूर तक भटकना पड़ता है, सारा दिन उसी में बर्बाद हो जाता है...' ।

चूल्हे के लिए लकड़ियों की तलाश में गर्क होती जिंदगी की व्यथा उस हिमाचली वृद्धा के अलसाए चेहरे पर साफ पढ़ी जा सकती थी। यह व्यथा अकेली उस वृद्धा की नहीं, उस जैसी लाखों ग्रामीण औरतों की है जिनकी तमाम जिंदगी जलावन, चारा और पानी–इन तीन बुनियादी जरूरतों की तलाश और ढुलाई में गर्क हो जाती है। पर्यावरण और महिला का अटूट रिश्ता है। 'विकास' और व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जंगलों के विनाश से पर्यावरण–ह्रास का जितना मारक और गंभीर असर इस नाजुक वर्ग पर पड़ा है, उतना शायद ही किसी दूसरे वर्ग पर पड़ा हो। ज्यों–ज्यों जंगलों का सफाया होता गया, ईंधन, चारे और पानी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के स्रोत भी छीजते गए और नए स्रोतों की तलाश में ग्रामीण औरत की जिन्दगी लंबी... और लंबी होती गई। पर्यावरणवादी अनिल अग्रवाल का कहना है, 'हर नई सवेर ईंधन, चारे और पानी की तलाश के लिए एक लंबा प्रयाण (मार्च) साथ लेकर आती है, महिला बूढ़ी हो या जवान या गर्भवती, एक के बाद एक थकाऊ दिन में उसे घरेलू जरूरतें पूरी करनी ही पड़ती हैं। पर्यावरण परिस्थितियां बदतर होने के साथ–साथ उनका प्रयाण और भी लंबा और थकाऊ होता चला जाता है। गरीबी और पर्यावरण–ह्रास के दो पाटों के बीच फंसी गरीब ग्रामीण औरत अपनी शारीरिक सहनशक्ति की करीब–करीब आखिरी सीमा तक पहुंच चुकी है।'

ग्रामीण औरत जिसके पास शहरी औरत की तरह न तो संगठन है, न शक्ति, न किसी सभा–समिति में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए कोई लॉबी है और न किसी सरकारी संस्था या निकाय में उसकी कोई नुमाइंदगी है। शहरी औरत के मुकाबले वह इस अर्थ में भी भाग्यहीन है कि जिस ईंधन और पानी की सुविधा शहरी औरत के हाथ में गैस के एक बटन और (पानी की) टोंटी में कैद है, ग्रामीण औरत से यह सुविधा अभी कई दशकों और मीलों दूर है और उसकी जिंदगी सुबह से शाम तक मीलों दूर चल कर उन्हीं का बंदोबस्त करते–करते बस हो जाती है। इसके बावजूद इन अहम् पहलुओं की न केवल सरासर उपेक्षा की जाती है बल्कि जल और ईंधन सप्लाई की योजनाएं बनाते समय इस शक्तिशाली कार्यबल की अपेक्षाओं को भी बड़ी आसानी से नजरअंदाज कर दिया जाता है।

भारतीय सामाजिक संस्कृति में 'नकद अर्थव्यवस्था' का मनोविज्ञान इस कदर गहराई तक पैठ कर गया है कि उसमें ऐसा कोई भी काम 'रोजगार' माना ही नहीं जाता जिसके बदले में उन्हें नकद रकम न मिले और ऐसे रोजगार से भिन्न हर काम महिलाओं के जिम्मे आया है भले ही उसमें नकद आय धेले भर की न हो और आर्थिक बचत कितनी ही अधिक क्यों न हो। ईंधन, चारा और पानी का जुगाड़ भी दुर्भाग्य से ऐसे ही काम हैं जो महिलाओं के जिम्मे आए हैं। एक–एक मद को जुटाने के लिए उन्हें कितनी मशक्कत और जद्दोजहद करनी पड़ती है और उसके बावजूद भी उन्हें स्वास्थ्य और पोषण की बुनियादी अपेक्षाओं से किस हद तक महरूम रहना पड़ता है, इसकी गवाही विभिन्न क्षेत्रों के तथ्य और आंकड़े खुद देते हैं।

अध्ययन बताते हैं कि ग्रामीण औरतें मर्दों से कहीं ज्यादा घंटे जान मारती हैं फिर भी उनके काम को घर–परिवार में उत्पादक या आर्थिक गतिविधि नहीं स्वीकार किया जाता। 'स्टेट ऑफ इंडियाज एन्वायरमेंट' रिपोर्ट में कर्नाटक के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक गांव 'पुरा' में एक अध्ययन के आंकड़े देकर बताया गया है कि वहां महिलाएं कृषि उद्योग और घरेलू कामकाज में कुल कामकाजी घंटों का 46 प्रतिशत समय देती हैं। अध्ययन के मुताबिक वहां महिलाओं का आधा समय ईंधन और पानी लाने और खाना बनाने में ही खर्च हो जाता है। औरत घरों में इस काम में साढ़े सात घंटे और अपेक्षाकृत गरीब घरों में 10 घंटे का समय चला जाता है। रिपोर्ट में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों में किए गए अध्ययन के आंकड़े देकर बताया गया है कि वहां गर्भवती महिलाओं तक को पानी और चारा जुटाने, पशुओं को सानी–पानी देने और उन्हें चराई के लिए ले जाने के काम में रोजाना 14 से 16 घंटे की हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

देश के शुष्क और अर्द्ध शुष्क इलाकों में और पहाड़ी गांवों में तो महिलाओं की हालत इससे भी बदतर है। मिट्टी के कटाव, आए दिन मिजाज बदलती जलवायु–परिस्थितियां, काश्तकारी के आकार के लगातार छोटे होते जाने, सूखा और सिंचाई सुविधाओं की लगातार कमी से इन इलाकों में पेड़ों और जंगलात को जो तेजी से विनाश हुआ है उससे यहां की महिलाओं की समस्याएं चौगुनी हुई हैं। गुजरात के साबरकांठा जिले का रोली इलाका ऐसे ही एक शुष्क क्षेत्र की महिलाओं की करुण कहानी का उदाहरण है। कम वर्षा और सिंचाई की सीमित सुविधा की वजह से इस गांव के आसपास का लंबा चौड़ा क्षेत्र पेड़ों से खाली हो गया है। ईंधन के लिए लकड़ी की तलाश में उन्हें कई किलोमीटर दूर तक कवायद करनी पड़ती है और रोजमर्रा के कामकाज के 15 घंटों में से करीब छह घंटे सिर्फ इसी में निकल जाते हैं।

समाजशास्त्री मधुरा स्वामीनाथन ने पहाड़ी जिले चमोली (उत्तर प्रदेश) के एक गांव दविंग का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा दिया है कि इस गांव के प्रत्येक परिवार के एक या उससे अधिक सदस्यों को ईंधन और चारे की तलाश में रोजाना पांच कि.मी. (दोनों तरफ 10 कि.मी.) खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है और इस प्रक्रिया में उन्हें छह से दस कीमती घंटे खर्च करने पड़ते हैं। 75 फीसदी परिवारों में लकड़ियां बीनने की जिम्मेदारी लाचार महिलाओं को उठानी पड़ती है।

लकड़ियों के भारी भरकम और असहनीय बोझ को ढोते–ढोते इन महिलाओं की जिंदगी किस कदर घिसती–पिसती और खाक होती रहती है, स्वामीनाथन की इस बारे में मार्मिक टिप्पणी है: 'वे भोर होते ही घर से निकल पड़ती हैं और करीब आठ घंटे के बाद अपने–अपने लकड़ियों के गट्ठर के साथ घर वापस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लौटती हैं। कुल दुनियां में जितने घंटे सामान्य कामकाज के होते हैं, उतने घंटों में तो इन महिलाओं का दिन का पहला काम निपटता है।'

इस दुश्चक्र के बारे में 'सेंटर फॉर वूमन्स डेवलपमेन्ट स्टडीज' से जुडी वीणा मजुमदार का कहना है कि 'ग्रामीण विकास की अधिकांश योजनाओं में सिंचाई को तो उच्च प्राथमिकता दी जाती है लेकिन पीने और प्रक्षालन के लिए पानी की सप्लाई की ओर कम ही ध्यान दिया जाता है।'

इस दुश्चक्र की एक वजह है कि ग्रामीण विकास के ज्यादातर कार्यक्रम और योजनाएं मर्दों द्वारा मर्दों की जरूरतों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं, जिनमें महिलाओं की जरूरतों को कतई ध्यान में नहीं रखा जाता और इस बात की खरी पुष्टि करती है योजना आयोग के पूर्व सदस्य, एम एस स्वामीनाथन की यह व्यंग्योक्ति की 'यदि मर्दों को पीने का पानी ढोकर लाना पड़ता तो नियोजित विकास के 30 साल बाद देश के दो लाख 30 हजार गांव यूं ही पानी की व्यवस्था के बिना न रहते।'

और तो और 'महिलाएं और पर्यावरण' की दशकों पुरानी समस्या पर राष्टीय विकास की प्रतीक समझी जाने वाली पंचवर्षीय योजनाओं तक में चर्चा नहीं की गई। मसलन छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में 'महिला और विकास' नामक अध्याय–जिसकी भारत की योजना दस्तावेजों में अपने किस्म का पहला दस्तावेज होने के लिए काफी वाहवाही हुई थी– ईंधन, चारा, पानी आदि जुटाने में महिलाओं की दिक्कतों का कोई जिक्र नहीं था। इसी तरह 'भारत में महिलाओं की स्थिति' नामक रिपोर्ट में भी कोई उल्लेख न किया जाना यह दर्शाता है कि जिन तीन चीजों के जुगाड़ में महिलाओं का एक बड़ा वर्ग अपनी जिंदगी तक गला देता है, उनसे जुड़े शारीरिक श्रम को एक लंबे अर्से तक विकास–गतिविधि माना ही नहीं गया।

बीते साल नई दिल्ली में 'घरेलू इस्तेमाल एवं सेनिटेशन के लिए जल–संसाधन प्रबंध में महिलाओं की भूमिका' नामक राष्ट्रीय सम्मेलन में जहां इस बात को शायद पहली बार गंभीरता से स्वीकार किया गया कि पर्यावरण–बिगाड़ का सबसे ज्यादा बुरा असर महिलाओं व बच्चों पर पड़ा है वहीं इस बात पर भी आम सहमति थी कि इस समय देश को पर्यावरण और पारिस्थितिक खतरे से निपटने के लिए यह जरूरी है कि जल सप्लाई और अन्य स्रोतों की योजना और प्रबंध में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व और अधिकार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दिए जाएं, और इसके लिए राष्ट्रीय पेय जल मिशन के तहत शुरू किए गए कार्यक्रमों को आठवीं योजना में न केवल मजबूत बनाया जाना चाहिए बल्कि मिशन के संसाधनों का इस ढंग से संचालन किया जाए कि उनसे महिलाओं को अधिक अधिकार देने वाले साधन विकसित किए जा सकें।

'चिपको आंदोलन' ने साबित कर दिया है कि पर्यावरण–विनाश रूपी अंधे और गुस्सैल बैल को महिलाएं कारगर और सार्थक रूप से काबू कर सकती हैं। लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर यह तभी संभव है जब कानूनी तौर पर पंचायत निकायों, सभी स्थायी समितियों और खासतौर से शिक्षा स्वास्थ्य, सेनिटेशन और पर्यावरण संबंधी समितियों में उन्हें उचित प्रतिनिधित्व दिया जाए और चरागाह विकास एवं सामाजिक वानिकी जैसे कार्यक्रमों में अधिक से अधिक महिलाओं की भागीदारी तय की जाए ताकि जल के बाद ईंधन और चारे दो अहम् जरूरतें वे अपने इर्द–गिर्द से ही पूरी कर सकें।

संस्कृत साहित्य में वनों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व

धार्मिक विश्वासों तथा पौधे, प्राणियों एवं लोगों के पारस्परिक संबंधों तथा नीतिशास्त्रों के अध्ययन का प्रथम भाग है सम्पूर्ण सृष्टि की एक–दूसरे पर निर्भरता के बारे में एक नवीन कल्पना। हमें स्वयं को वनस्पति सहित उस विराट जीव–साम्राज्य का एक भाग ही मानना चाहिए। परमात्मा की सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति हमारे भीतर एक श्रद्धा भाव हो। मनुष्य का स्वयं को सबसे अलग और श्रेष्ठ मानना धीरे–2 सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड की परिस्थितियों को अवनति की ओर ले गया है। इस विकास के सम्बन्ध में बटैन्डरसेल ने लिखा है–

"अभी तक मनुष्य अभ्यास करके स्वयं को प्रकृति के अधीन मानता रहा है। इस अधीनता से मुक्त होकर वह उन अवगुणों का प्रदर्शन कर रहा है जो दास के स्वामी बन जाने पर दिखाई पड़ते हैं। एक ऐसे नये नैतिक द्यष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें प्राकृतिक शक्तियों के प्रति समर्पण के बदले मनुष्य के भीतर जो कुछ भी श्रेष्ठ है उसे सम्मानित किया जाना चाहिए। जहां इस सम्मान का अभाव है वहां वैज्ञानिक तकनीक खतरनाक है। यदि सम्मान है, तो विज्ञान, मनुष्य की प्रकृति को दासता से मुक्त करके, उसे अपने भीतर विद्यमान दासत्व भाव के बन्धन से छुड़ाने की अगली भूमिका पूरी कर सकता है।"

(बट्रैन्डरसेल : द साइंटिफिक आउटलुक–पृष्ट 278–279)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

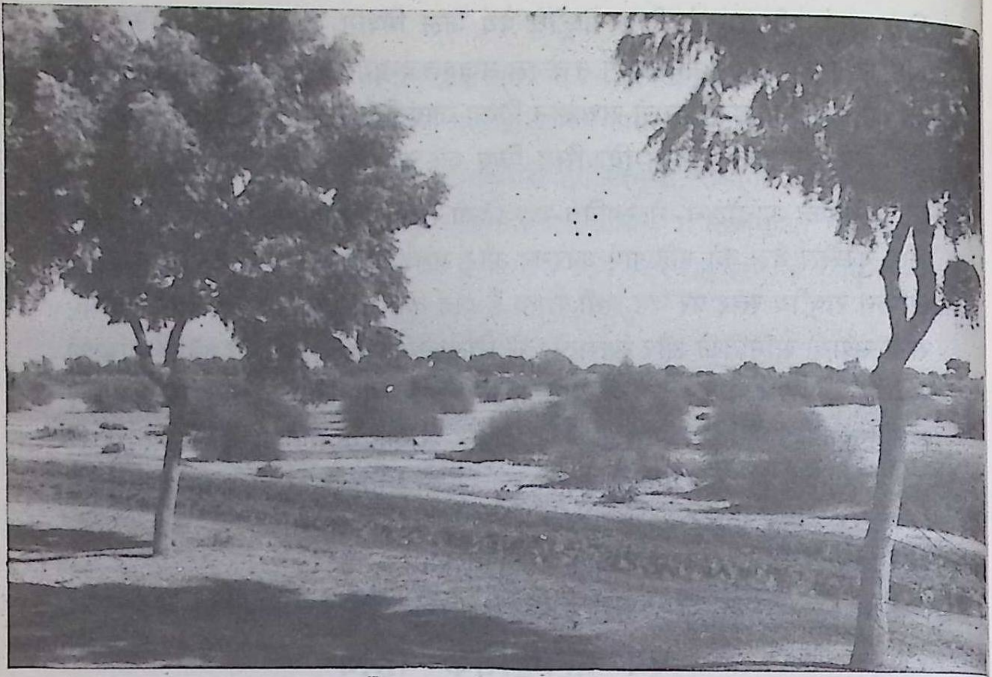

उष्णकटिवन्धीयवनक्षेत्र का मनोरमदृश्य

पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति के समय से पेड़–पौधों का उपयोग घरेलू पशुओं के चारे के लिए, जंगली जानवरों और हानिकारक कीड़े–मकोड़ों को वश में करने के लिए, खाद, भोजन, ईंधन तथा गृहस्थी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, सौन्दर्य प्रसाधनों, खिलौनों, सजावट, औजार, दवाइयों तथा धार्मिक उत्सवों व रीति–रिवाजों के लिए किया जाता रहा है। वृक्ष–पूजा, संभवतः–प्रारम्भिक युग से उन तक सर्वाधिक प्रचलित धर्म का एक रूप रही है। वृक्ष–पूजा के सम्बन्ध में जेम्स फर्ग्युसन का कथन है–

"हम अपने धार्मिक विचार के सम्पर्क बिन्दु से हट जाते हैं जब हम पूछते हैं कि किसी वृक्ष से की गई प्रार्थना कैसे पूरी होना संभव है ? हो सकता है कि प्रारंभ में वृक्षों की शाखाओं में किसी देवता के निवास की कल्पना कर ली गई हो और इसी कल्पित निराकार की शुरू में प्रार्थना की जाती रही हो। लेकिन जिस किसी ने भी मूर्तिपूजा पर ध्यान दिया है उसने अवश्य देखा होगा कि ज्ञान की एक विशेष स्थिति में पहुँच जाने पर मन कल्पित अदृष्य से ऊब जाता है और चेष्टा करके साकार, सगुण वस्तु की पूजा करने लगता है। कोई मूर्ति, कोई मंदिर, कोई पत्थर या कोई पेड़ इस तरह पूजा या तीर्थ की वस्तु बन जाता है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और कालान्तर में पवित्र मान लिया जाने पर, मानव मन का आलस्य उसी मूर्ति की पूजा करके सन्तोष का अनुभव करने लगता है, जिसकी पूजा करके पिछली पीढ़ियाँ सन्तुष्ट होती रही हैं।"

(जेम्स फर्ग्युसन : ट्री एंड सर्पेन्ट वर्शिप–द्वितीय आवृत्ति)

हिन्दु धर्म में वनस्पति

हिन्दुओं में जिस पूजा–भाव का विकास हुआ उसमें उपयोगिता और पारलौकिकता का मेल है। हिन्दु वृक्षों और पौधों को विभिन्न देवी–देवताओं का निवास–मात्र नहीं मानते। परम्परा से वे उनकी रक्षा करने वाली शक्ति से भी परिचित रहे हैं और यह भी जानते हैं कि उनको अविवेक पूर्वक नष्ट करने का परिणाम प्रदूषण होगा। अनेक पेड़–पौधों के आरोग्य वर्धक गुणों का महत्व समझा गया है तो दूसरे पौधों को धार्मिक या पारलौकिक–देवी शक्ति के निवास के रूप में। अनेक परम्परावादी हिन्दुओं के घरों के भीतर तुलसी का पौधा रहता है और बाहर नीम का वृक्ष। उनके उद्यान में केला, मौलसरी, बेल, आँवला, पीपल, वट और कभी–कभी गूलर के वृक्ष होते हैं। स्त्रियाँ इस वृक्ष की पूजा करती हैं और त्यौहार के अवसरों पर पूरा परिवार पूजा करता है।

वैदिक धारणा

ऋग्वेद् युग में, ऋषियों ने वृक्षों को परमात्मा के विभिन्न गुणों का प्रतीक माना है। ऋग्वेद् का एक पूरा स्रोत, वृक्षों की, मुख्यतः उनकी रोगमुक्त करने की विशेषताओं की, प्रशंसा में रचा गया है। सबसे बढ़कर, यज्ञ संबंधी उपकरणों को देवता कहा गया है। (ऋग्वेद्–10.27) इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण बलि–स्तंभ है जिसकी प्रशंश एक श्लोक में गाई गई है। (ऋग्वेद्–3.8) सामान्यतः "वृक्षः" तथा "विरूध" पदों का प्रयोग ऋग्वेद् में और बाद की संहिताओं में किया गया है। ऋग्वेद तथा आगे चलकर संहिताओं में सुप्रसिद्ध "सोम वृक्ष" का उल्लेख वनस्पति के रूप में बार–बार किया गया है। ऋग्वेद् कापूरा नवां मंडल के छह स्रोत इसी पौधे की प्रशंसा में समर्पित हैं। ऋग्वेद् में वर्णित अन्य वृक्ष शाल्मली (या सेमल) खदिर, सिंसपा और विभीतक हैं। अथर्ववेद् तथाबाद की दूसरी संहिताओं में दो अन्य महत्त्वपूर्ण वृक्ष शमी और प्लक्ष का उल्लेख मिलता है। इक्षु अथवा (ईख) भी वैदिक युग में उगाया जाता था। फूल धारण करने वाले वृक्षों में पलाश, कमल व कुन्द और फल धारण करने वाले वृक्षों में उरुमाण, कर्कन्धु, कुवल, उदुंबर, खजूर तथा दाख का उल्लेख ऋग्वेद् और अर्थववेद् में मिलता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। थियोडोर गोल्डस्टकर के अनुसार वैदिक स्रोतों में सोम भगवान् की इस पौधे और वैदिक काल के एक अत्यन्त लोकप्रिय देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।"

(थियोडोरा गोल्डस्टकः संस्कृत एंड कल्चर पृ. 29)

हिन्दुओं ने सोम की प्रार्थना, सारी गोचर सृष्टि के कर्त्ता और स्वामी कहकर की है।

त्वमिमा औषधीः सोम विवास्त्वमपो अजनयस्त्वंगाः।
त्वमा तततत्योर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ।।

(ऋग्वेद्-1.91-22)

"हे सोम! ये औषधियाँ, वे दुधारू पशु और ये जल प्रवाह तूने उत्पन्न किये हैं। तूने इस असीम आकाश में प्रकाश का विस्तार करके अंधकार को भगा दिया है।"

ऋग्वेद का निम्नलिखित स्रोत इस काल में वृक्षों का महत्व दर्शाता है–

आप औषधीरूप नौडवन्तु
दयोर्वना गिरयों वृक्षकेशाः
श्रृणोतः न ऊर्जा पतिर्गिरः
स नमस्तरीयां इषिरः परिज्मा
शृन्वन्त्वापः पुरा न शुभ्राः
परि स्त्रुचो ववृहाणस्याद्रेः **(ऋग्वेद-5.4 1.11-12)**

"वनस्पतियाँ, जलधाराएँ, आकाश, वन और वृक्षादित पर्वत हमारी रक्षा करें। ताजगी से भर देने वाला स्वामी, चंचल पवन जो आकाश के बादलों में तेजी से दौड़ता है, हमारे गान सुने और छिन्न–भिन्न पर्वतों में आगे बढ़ती स्फटिक सी स्वच्छ जलधाराएँ हमारी प्रार्थना सुनें।"

अथर्ववेद वन्य पशुओं से रक्षा के लिए प्रार्थना करता है–

उदितस्त्रयो आक्रमन व्याध्रः पुरुषों वकः।
हिरुग्धियन्ति सिन्धवों हिरूग् देवो वनस्पतिर्हिस्रू नमस्तु शत्रवः।।

(अथर्ववेद-3.3.1)

तीनों–सिंह, चोर और भेड़िये यहां से भग जावें जैसे जलधाराएँ पर्वतों से नीचे भगती हैं और उतंग (ऊँचे) वृक्षों की जड़ें जैसे गहरे धंसती जाती हैं, हमारे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शत्रु भी वैसे ही परास्त हों।

ऋग्वेद् में वनस्पतियों की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है–

वनस्पते शतवल्शी वि रोह
सहस्रवल्शा की वयं रूहेम।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः
प्रणिनाय महते सौभगगाय।। **(ऋग्वेद-3.8.11)**

"पैनी धारवाली कुल्हाड़ी से कल्याण हेतु लाई गई, हे वनस्पति! तू अपनी सैकडों शाखाओं से ऊपर की ओर चढ़ जिससे हम भी सहस्रों शाखाओं में बढ़ सकें।"

अथर्ववेद के अनुसार वृक्ष वनों के स्वामी हैं और मनुष्य को पाप से बचाते हैं–

अग्निं बूमो वनस्पतीनोषधीरूधः।
इन्द्रं वृहस्पति सूर्यं ते नो मंचन्त्वंहसः।। **(अथर्ववेद)**

"हम परमात्मा की शरण में जाते हैं, हम वनदेवता, वृक्षों पौधों और औषधियों की शरण में जाते हैं, हम इन्द्र, वृहस्पति और सूर्य की शरण में जाते हैं। ये सब हमें पाप से छुडावें।"

मधुपतीरोषथीद्र्याव आपो
मधुमन्वों भवत्वन्तरिक्षंम्
क्षत्रस्य पतिर्मधुमान्नों
अस्त्वरिष्यन्तों अन्वैनं चरेम।। **(ऋग्वेद-4.57.3)**

हमारे लिए वनस्पतियाँ और औषधियाँ मधुर हों, अंतरिक्ष जल एवं बीच का क्षेत्र मधुर हों, अन्य व वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला मधुर हों। हर तरह के रोग और कष्ट से मुक्त होकर हम तेरा अनुसरण करें।"

वैदिक ऋषि पौधों व औषधियों की आरोग्यदायिनी शक्ति का आह्वान करते हैं–

"णः सुवर्णा, आंगिरसीर्दिव्या याः रघटो विदुः।
वयासु हंसा या यिदुर्यश्य सर्व पतत्रिणः
भुगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुबे।। **(अथर्ववेद)**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महर्षि अंगिरस ने जिन जड़ी–बूटियों का वर्णन किया है, चील व गरूड़ को जिनका ज्ञान है तथा अन्य सब पक्षी जिनसे परिचित हैं उन सब औषधियों का इस रोगी के कल्याण हेतु मैं आहवान करता हूँ।"

मनुष्य के दीर्घायुष्य के लिए अथर्ववेद् में जड़ी–बूटियों और वनस्पतियों की शक्ति का वर्णन किया गया है–

उज्जिहीध्वं स्तनयत्याधि क्रन्दत्यौषधीः
यदा वः गृश्निमातरः पर्जन्यों रेतसावति।।
तस्यामृतस्येम वलं पुरुषं पाययामसि।
अथो कृणोमि भेषजं यथसच्छतहायनः।। **(ऋग्वेद-4.57.3)**

हे वनस्पति! मेघ गरज रहे हैं। पर्जन्य की तुझ पर कृपा द्यष्ठि हो रही है। इस अमृत की शक्ति हम मनुष्य को पीने के लिए देते हैं और मैं ऐसी औषधि बनाता हूँ जिससे वह शतायु हो।"

उपनिषद्–काल के ऋषियों ने वनस्पतियों में परमात्मा के अस्तित्व के भी दर्शन किये हैं। वे कहते हैं–"जो परमात्मा इस ब्रह्मांड, जल व अग्नि में व्याप्त है वही वृक्षों और औषधियों में भी निवास करता है।

"ब्रह्मांड, जल व अग्नि में व्याप्त है वही वृक्षों और औषधियों में भी निवास करता है।' **(चुनिका उपनिषद-6.11.1-2)**

काथक उपनिषद् सम्पूर्ण संसार को एक अश्वत्थ वृक्ष मानता है। छान्दोग्य उपनिषद् में उसका उदाहरण एक सजीव सत्ता के रूप में दिया गया है–

अस्य सेमय महतो वृक्षस्य या मुलेडभ्यान्हयाज्जीवन स्त्रवेंद्यो
मध्ये भ्याहन्याजीवन् स्त्रवेद्योऽ ग्रेभ्याहन्याज्जीवन स्त्रवेत्।
से एवं जीवनात्मनानुप्रभूतऽ पपीयमानो मोदमानस्तिऽष्ठंति।
अस्य यवेक शाखां जं वा जहात्यथ सा शुष्यति।
तृतीया जहात्यथ सा शुष्यति।
सर्वज्हाति सर्वः शुष्यति। **(छान्दोग्य उपनिषद्-6-11. 1-2)**

"जब कोई इस वृक्ष की जड़ को काटता है तो उसमें से रक्त स्राव होता है क्योंकि वह जीवित है। जब कोई इसके मध्य को काटंता है तो उसमें से रक्त स्राव होता है क्योंकि वह जीवेम है और जब कोई उसके सिर को काटता है तो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उसमें से रक्त स्राव होता है क्योंकि वह ज़ीवित है। इस तरह उसमें आत्मा का निवास होने से वह आनन्दपूर्वक खड़ा रहता है। फिर, यदि किसी शाखा से प्राण निकल जाते हैं तो वह सूख जाती है, दूसरी शाखा से प्राण निकल जाते हैं तो वह भी सूख जाती है। यदि पूरे वृक्ष के प्राण निकल जाते हैं तो वह मुरझा जाता है या बिलकुल सूख जाता है। अतः हे प्रिय, तुम इस पर ध्यान दो।"

एक अन्य उपनिषद में वृक्षों को जैसा कि नीचे बताया गया है मनुष्य के समकक्ष माना गया है–

यथा वृक्षा वनस्पतिस्तथेव पुरूषोऽमृष
तस्य लोमानि पर्णनित्वगस्योस्पाटिका वहिः
त्वच एवास्य रूधिरं प्रस्यन्दित्व उत्पट।
तस्मात् तदातृष्णात् प्रेति रसो वृक्षादिवाहतात्
मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्नाव तत् स्थिरम्
अस्थीन्यन्यरतो दारुणि मज्जापमा कृता।।

(बृहदारण्यक उपनिषद्-3.9.28)

"जंगल के राजकुमार वृक्ष के ठीक समान, यथार्थ में मनुष्य है। उसके केश पत्ते हैं, उसकी त्वचा वृक्ष की छाल के समान है। पेड़ से जैसे रस का स्राव होता है वैसे ही उसकी त्वचा से रक्त बाहर निकलता है। पेड़ के काटे जाने पर और मनुष्य के घायल होने पर ऐसा होता है। मांस की तुलना काष्ठ से की जाती है और स्नायु भीतरी छाल है। काष्ट के भीतर का सार उनकी अस्थियाँ हैं और मज्जा है पेड़ के भीतर का गूदा या गोंद सार हैं"

मुंडकोपनिषद् में परमात्मा को वृक्षों का उत्पन्न करने वाला कहा गया है–

अतः समूद्रा गरयश्य सर्वेड-
स्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः
अतश्च सर्वा औषधयों रसश्च
येनेषा भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।। (मुंडकोपनिषद-2.1.9)

"उसी (परमात्मा) से सब समुद्र और पर्वत उत्पन्न होते हैं। हर प्रकार की नदियाँ उसी से निकलती हैं। पौधे अपने पोषक रसों सहित उससे ही पैदा हुए हैं जिसके द्वारा वे सब में अन्तरात्मा बन कर रहते हैं।"

उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक चार्ल्स, डार्विन, सर जगदीशचन्द्र बोस और

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राउल क्रॉस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, भारतीय ऋषियों को बहुत पहले से ज्ञात थे। उन ऋषियों का पेड़ पौधो से गहरा प्रेम और उन पर गहरी श्रद्धा थी। भारतीय ऋषियों के संबंध में एच.डबल्यू. विल्सन कहते हैं–

"वे पौधे के आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों तरह की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते थे और उन्होंने वनस्पतियों को विस्तृत रूप में सूची–बद्ध किया है जिसमें उन्होंने वनस्पतियों के विशेषता–सूचक नाम दिए हैं और विवेक पूर्वक उनके उपयोग भी बतलाए हैं।"

(मि हिस्ट्री ऑफ इंडिया खंड–2 पृ. 97)

सिन्धु घाटी की सभ्यता से पहले का प्राचीन भारतीय इतिहास वनस्पतियों के सम्बन्ध में वैदिक द्यृष्टाओं के इन विचारों की पुष्टि करता है। दीवालों पर उत्कीर्ण पाये गये वृक्ष इस बात का समर्थन करते हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान वृक्ष–पूजा प्रचलित रही है। उस काल के सिक्कों पर भी पेड़–पौधों की आकृतियाँ चित्रित हैं। सिन्धु घाटी के लोग पीपल वृक्ष की पूजा करते थे और उसके पत्तों को सुख–समृद्धि का दाता समझते थे। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि ई.पू. तीसरी या चौथी सहस्त्राब्दि में भी वृक्ष–पूजा प्रचलित थी जबकि उच्च कोटि की हड़प्पा संस्कृति का अस्तित्व था। सिन्धु के लोग वृक्षों को दयामय देवता मानते थे। वे (वृक्ष) उर्वरता के भी प्रतीक माने जाते थे। वासुदेव शरण अग्रवाल कहते हैं–"हड़प्पा से प्राप्त एक मोहर में एक स्त्री के गर्भ में से पौधे को जन्मते हुए दिखाया गया है जो उर्वरता का स्पष्ट प्रतीक है।"

(वासुदेव शरण अग्रवालः इंडियग आर्ट पृ. 25)

महाकाव्यों और पुराणों की दृष्टि

महाकाव्यों और पुराणों के काल में वनस्पति के संबंध में हिन्दू विचारधारा और विस्तृत हुई। महाभारत में कहा है–

घनानामपि वृक्षाणामाकाशेडस्ति न संशयः।
तेषां पुष्पफलप्यक्तिवित्तर्नित्यम् समुपद्द्यते।।
उष्मतौश्लनायते वर्ण त्वक् फल पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते।
वायुवग्न्यशनि निर्घाषैः फलं पुष्प निशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते वृक्षं सर्वतश्चाव गच्छति।
नः यहष्टश्च माग्रार्तस्त तस्मात्यश्यन्ति पादपाः।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुण्यापुन्यस्तथा गन्धेंपेश्च विवि धऽपि।
आरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपः।

(महाभारत, मोक्ष धर्म पर्व-14.8.10-4)

"वृक्ष यद्यपि ठोस होते हैं किन्तु उनमें आकाश के सद्गुण रहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जीवित होने के कारण वे फूलते और फलते हैं। वे उष्णता का अनुभव करते हैं। उनके फूलों और फलों पर गर्मी का प्रभाव पड़ता है और सूख जाने पर वे नीचे गिर पड़ते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें स्पर्श–ज्ञान भी होता है। हवा, अग्नि, ध्वनि तथा बादलों के गरजने के असर से पेड़ों के फूल झड़ जाते हैं। आवाज तो सिर्फ कान से ही सुनी जा सकती है। इससे सिद्ध होता है कि पेड़ों में सुनने की शक्ति भी होती है। लताएं वृक्षों से लिपट जाती हैं और नीचे से चोटी तक बढ़ जाती हैं। रास्ते को देखे बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता। इससे स्पष्ट होता है कि वृक्षों में देखने की शक्ति होती है। अच्छी और बुरी गंध पेड़ की वृद्धि पर प्रभाव डालती है। सुवास से उनमें फूल खिलते हैं और दुर्गन्ध उन्हें पीड़ित करती है। इससे पता चलता है कि वृक्षों में सूंधने की शक्ति भी होती है।"

ऐसा विश्वास किया जाता है कि वृक्षों को भी दुख और सुख की अनुभूति होती है। पुनः महाभारत कहता है–

पादै सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।
व्याधि प्रतिकायित्वाच्च विद्यते रसनं दुगें।।
सुखदु खयौच्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यां न विद्यते।।

(महाभारत, मोझ धर्म पर्व-18, 15-17)

"वृक्ष जड़ों से जल ग्रहण करते हैं। यदि उन्हें कोई रोग होता है तो उन पर दवा छिड़क देने से ठीक हो जाता है। इससे मालूम होता है कि उनमें रसेन्द्रियता होती है। वृक्ष जीवित हैं और दूसरों की तरह उनमें भी प्राण हैं, क्योंकि काटने से उन्हें दुख की अनुभूति भी होती है। एक शाखा काट देने से नई शाखा उत्पन्न हो जाती है।"

रामायण में भी अनेक स्थलों पर वनस्पति का सौंदर्य और प्राचुर्य बतलाया गया है तथा वृक्षों एवं वनों का कवित्वमय वर्णन मिलता है। वृक्षों को पूजनीय और सौभाग्यदायक माने जाने के प्रमाण मिलते है। सीता हाथ जोड़कर न्यग्रोध

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृक्ष की प्रार्थना इस प्रकार करती है–

न्यग्रोघ समुपागम्य वैदेही चाभ्यबन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्में पतिब्रतम्।।
कौशल्यां चैव पश्येम सुमित्रां चयशस्विनीम्।
इति सीतांजलिं कृत्वा पर्यगच्छन्मनस्विनी।।

(रामायण, अयोध्याकांड, 53.24-26)

"हे शक्तिशाली वृक्ष ! मैं तुझे प्रणाम करती हूं। मेरे पति का प्रण पूरा कराने की दया करो, जिससे मैं अपनी पूजनीय सास कौशल्या और सुमित्रा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।"

वेदादि धर्म ग्रन्थों में पीपल के वृक्ष की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भगवद्गीता में उसे स्वयं भगवान् कृष्ण का अवतार कहा गया है। कृष्ण कहते हैं– "समस्त वृक्षों में मैं अश्वत्थ (पीपल) हूँ।" (गीता 10.26)। इस संसार की माया की तुलना गीता में पीपल के वृक्ष से की गई है–

अधश्चौर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवब्द्ध विषयप्रवालाः।
अधश्च मूला यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके।। (गीता-15.2)

"इस वृक्ष की शाखाएं ऊपर और नीचे की ओर फैली हैं। त्रिगुणात्मिका माया जिनका पोषण करती हैं और जिनमें विषयभोग रूप कोपलें और वासना रूपी जड़ें नीचे और ऊपर फैली हुई मनुष्य को कर्मों के अनुसार बाँधती हैं।"

गोमिल के गृह्य सूत्र में वे स्थान बतलाये गये हैं जहां विभिन्न पौधो को लगाया जाय या न लगाया जाये। गोमिल के मतानुसार ऐसा करना किसी व्यक्ति के लिए शुभ या अशुभ दोनों हो सकता है–

वर्जयेत् पूर्वताऽश्वस्त्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा।
न्यग्रोधमपराद् देशादुस्ताराच्चाप्युदुम्वरम्।।
अश्वस्थादग्निमयं विद्यात् प्लक्षद् ब्रूयात् प्रभायुकान्।
न्यूग्रोधाच्छस्त्र सम्पीड़ा भक्ष्यामयमुदुम्बरात्।।

(गोभिल गृह्य सूत्र 4.7.22-23)

"अपने मकान के पूर्व की ओर पीपल का वृक्ष, दक्षिण की ओर प्लक्ष, पश्चिम में न्यग्रोध और उत्तर में उदुम्बर नहीं लगाना चाहिए। हमें कहना चाहिए कि पीपल जला देता है, प्लक्ष से निवासियों की अकाल मृत्यु हो जाती है, न्याग्रोध शत्रुओं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्वारा सशस्त्र आक्रमण का तथा उदुंबर नेत्र रोग का कारण होता है।"

इसी प्रकार अग्नि पुराण में प्लक्ष वृक्ष को मकान की उत्तर दिशा में, न्यग्रोध को पूर्व दिशा में, गूलर को दक्षिण में और पीपल को पश्चिम में लगाये जाने का निर्देश दिया गया है: ऐसा निवास स्थान उसमें रहने वालों के लिए शुभ माना जाता है। (274.24) नियम पूर्वक वृक्षों को जल और खाद पहूँचाना एक पुनीत कर्तव्य कहा गया है। कुछ वृक्षों को श्रेष्ठतर माना गया है, उदाहरणार्थ स्कंद पुराण में पीपल को भगवान विष्णु के समान बताया गया है (189ⁿ65) किन्तु उसमें यह विश्वास भी व्यक्त किया गया है कि परमात्मा भिन्न–भिन्न स्वरूपों में प्रायः सभी वृक्षों में विद्यमान है–

पार्वती विल्ववृक्षस्थां लक्ष्मी च तुलसीगताम्।
आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्व विश्वमजायत।। **(स्कंद पुराण, 15.21)**

"सृष्टि के समय में मैं (ईश्वर) समस्त पेड़ पौधों में विद्यमान रहा हूं
किन्तु देवी पार्वती बिल्व में तथा देवी लक्ष्मी तुलसी में निवास करती हैं।"

पद्मपुराण (सृष्टि खंड, 59.7) में यह वर्ण किया गया है कि जिस घर में तुलसी का पौधा रहता है उसके निवासी भाग्यशाली होते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खंड 21.37) में कहा गया है कि जिस स्थान पर तुलसी का पौधा लगाया गया है वह स्थान पवित्र एवं प्रायः देवताओं का निवास स्थल माना जाता है। हिन्दू–परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा के अनेक कारण हैं–

"हिन्दू परिवारों में तुलसी के पौधे की पूजा ज्यादातर स्त्रियों के द्वारा की जाती है क्योंकि उस पौधे को पवित्र माना जाता है, वन दाम्पत्य जीवन को दीर्घायु देता है तथा औषधीय गुणों से परिपूर्ण होता है। यह विश्वास भी किया जाता है कि जिस गृह में प्रतिदिन तुलसी की पूजा की जाती है उसमें यमदूत प्रवेश नहीं करते।" **(स्कंद पुराण, 2166)**

तुलसी का पौधा चारों ओर लगाया जाता है और उसकी पूजा की जाती है, विशेषतः कार्तिक के महीने में। तुलसी को देवता का सम्मान मिलता है क्योंकि उसका संबंध विष्णु और लक्ष्मी से माना जाता है। तुलसी का पौधा अपने धार्मिक उपासकों के लिए स्वर्ग के द्वार खोलने वाला है और जो उसे उखाड़ डालते हैं वे मृत्यु के पश्चात् दंड के पात्र होते हैं। उसके आरोग्यवर्धक महत्व को स्वीकार किया गया है और भारतीय घरों में आज भी मरणोन्मुख व्यक्ति के मुख में (गंगा) जल और तुलसीदल डालने की प्रथा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक दूसरा अत्यंत प्रसिद्ध रूद्राक्ष (इलियोकार्पस गैनीट्रस) है जिसके फलों को अति पवित्र माना जाता है और जिसके बीजों से भजन करने की माला बनती है। उनके अनेक मुख या पक्ष होते हैं जिनमें से प्रत्येक का एक विशेष अर्थ या महत्व है। एक मुखी रूद्राक्ष दुर्लभ है और उसे पाने वाला शक्ति, आनंद और सुख भोगता है। (कुछ वृक्षों के वनस्पतिशास्त्रीय नाम सारणी–एक में दिये गये हैं।)

हिन्दू लोग वृक्षों को ईश्वर के विभिन्न रूपों का निवास–स्थान मानते हैं। इस विश्वास से जुड़ी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। पद्मपुराण के उत्तर कांड में एक ऐसी ही कथा है। एक समय भगवान शिव अपनी प्रिया पार्वती के साथ एकांत स्थान में बैठे थे। अन्य सभी देवताओं ने मिलकर अग्नि देवता से कहा कि आप ब्राह्मण का वेश धारण कर उस स्थान पर जाएं। इस तरह बाधा उत्पन्न किये जाने से पार्वती कुपित हो गई और उन्होंने अग्नि को भेजने वाले देवताओं को श्राप दिया–"तु सब देवता वृक्ष बन कर जन्म लो।" इस श्राप के प्रभाव से भगवान ब्रह्मा ने पलाश वृक्ष के रूप में, भगवान विष्णु ने पीपल के रूप में और रूद्र देवता ने वट वृक्ष के रूप में जन्म लिया–

सारणी-एक

प्रचलित नाम 1	वनस्पति शास्त्रीय नाम 2
बिल्व/बेल	ऐग्ल मारमेलास
बबूल/कीकर	अकेशिया निलोटिका
कदंब	एन्थोसिफलस कैडम्बा
नीम	अज्दिरक्टा इंडिका
मधुक/महुअवा	बैसिया लेटिफोलिया
भोजपत्र	वेटुला यूटालिस
ताल/ताड़	बोरासस पलेबेल्युफर
पलाश/ढाक	ब्यूटिया फ्रान्डोसा
अर्क/आक	कैलोट्राफिस प्रोसेरा
नारिकेल/नारियल	कोकास न्यूसिफेरा
धतूरा	दातूरा स्ट्रामोनियम
दूर्बा–दूव	सामनेडोन डेक्टाइलान
मंदार (एरीथ्रीना वैरोगाटा)	वट (फाइसक इंडिका)
गूलर	फाइकस ग्लोमेराटा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रचलित नाम 1	वनस्पति शास्त्रीय नाम 2
बोधि/पीपल	फाइकस रिलीजिओसा
आम्र/आम	मेंजीफेरा इंडिका
चंपक	मिकैलिया चम्पाका
कदली/केला	म्यूसा स्पियेंटम
आमलकी/आंवला	फिलैंथस एंबलिका
शमी	प्रोसोफिस स्पाइसीजेरा
शाल्मली	सालमालिया मालाबैरिका
चन्दन	सैन्टलम एलबम
शाल	शोरिया रोवस्टा

भगवान महेश्वर भी वट में निवास करते हैं ऐसा माना जाता है। (कर्म पुराण, 36.26) अन्य बहुत से वृक्षों को हिन्दू लोग एक या अनेक देवी–देवताओं से जोड़ते हैं। विविध प्रकार की वस्तुएँ जो वृक्ष से मिलती हैं धार्मिक अनुष्ठान और उत्सव में प्रयुक्त होती हैं। उदाहरण के लिए, त्रिपत्री बेल शिव पर चढ़ाया जाता है और विशाल साल वृक्ष में विष्णु का निवास माना जाता है। भवन निर्माण में साल की लकड़ी का उपयोग भी सुख–समृद्धि देने वाला माना जाता है। वामन पुराण के अनुसार (17.5.8) कुछ वृक्षों को एक न एक विशेष देवी–देवता के अंग–विशेष से उत्पन्न कहा गया है, और अन्त में यह कि कुछ वृक्ष एक देवता विशेष से संबंधित माने गये हैं जैसे कि धतूरा भगवान शंकर से। (17. 1–4) पेड़–पौधों की एक सूची सम्बद्ध देवी–देवताओं के साथ सारणी दो में दी गई है–

सारणी-दो

	पेड़ पौधे 1	सम्बधित देवी-देवता या अन्य अदृश्य शक्ति 2
1.	अश्वत्थ	विष्णु, लक्ष्मी, पितृ–पूजा
2.	वट	बह्मा, विष्णु, श्री हरि, कुबेर
3.	तुलसी	लक्ष्मी, विष्णु, पितृ–पूजा
4.	सोम	चन्द्रमा
5.	बेल	महेश्वर, भूत, शिव
6.	अशोक	बुद्ध, इन्द्र
7.	आंवला	लक्ष्मी, कार्तिक प्रजनन शक्ति (उर्वरता)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

	पेड़ पौधे	सम्बधित देवी-देवता या अन्य अदृश्य शक्ति
	1	2
8.	ताल	भूत–प्रेम
9.	आम	लक्ष्मी, गोवर्धन, उर्वरता
10.	कदव	कृष्ण, उर्वरता
11.	नीम	शीतला, भूतवाधाहर, कृमिनाशक
12.	पलाश	ब्रह्य, गंधर्व
13.	पीपल	विष्णु, पितृ पूजा, कृष्ण
14.	महुवा	उर्वरता
15.	सेमल	उर्वरता
16.	आख (अर्क)	उर्वरता
17.	नारियल	उर्वरता
18.	गूलर	विष्णु, रूद्र
19.	कर्पूर	चन्द्रमा
20.	केवड़ा	वन, दुर्गा, लक्ष्मी
21.	तमाल	कृष्ण

भारत के लिए वृक्ष–पूजा नई वस्तु नहीं है। मोहनजोदड़ो में इसके प्रमाण मिलते हैं। पहले भी ऐसा था और आज भी आमतौर पर ऐसा ही विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक वृक्ष का एक देवता होता है जिसकी पूजा–प्रार्थना जल, फूल, मिठाइयां और अक्सर फूल माला चढ़ाकर या धागा लपेट कर की जाती है। कभी–कभी वृक्ष देवों का आपस में विवाह कर दिया जाता है और स्त्रियों तक से पूरे वैवाहिक अनुष्ठानों के साथ वृक्ष–देवता का विवाह कर दिया जाता है। भारत के अनेक भागों में यह विश्वास प्रचलित है कि वृक्षों द्वारा मनुष्य की आत्मा को खींचा जा सकता है। भारतीय ग्रामों की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या वृक्ष–पूजा और ग्राम–देवता की पूजा में भाग लेती है। तुलसी विवाह मुख्य रूप से किया जाता है।

वृक्षारोपण की रीति कम से कम पंद्रह सौ वर्ष पुरानी तो है ही, क्योंकि मत्स्य पुराण के एक अध्याय में इस समारोह के संदर्भ में पूर्ण विधि–विधान बताया गया है। विद्वानों द्वारा कथित वह प्रक्रिया इस प्रकार है–

"सर्वप्रथम पृथ्वी को साफ करो और उसे सींचो। वृक्षों को मालाओं से सजाओ, उनके सामने गुग्गुल की सुगंध जलाओ और प्रत्येक वृक्ष के बाजू में एक–एक जल से भरा घड़ा रखो। प्रार्थना के साथ नेवेद्य अर्पण करो और फिर पवित्र जल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उन पर छिड़को। ऋग्वेद, यजुर्वेद् ओर सामवेद् के मंत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञाग्नि प्रज्जवलित करो इस तरह पूजा करने के उपरान्त वास्तविक वृक्षारोपण संपन्न करना चाहिये। जो मनुष्य केवल एक वृक्ष भी लगाता है वह सीधा स्वर्ग को जाता है और परम पद प्राप्त करता है।" **(मत्स्य पुराण, 59.149)**

वाराह पुराण में भी वन–महोत्सव या वृक्षारोपण समारोह का वर्ण है–

अश्वत्थमेकं पिचुमिन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशपुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलुंगे पंचाम्ररोपी नरके न याति।।

(वाराह पुराण, 172.39)

"जो कोई एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस फूलों के पौधे या लताएं, दो अनार, दो नांरगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है वह नरक में नहीं जाता।"

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वाखितं स्वद् वन सर्वे संपुत्रेन कुलं यथा।।

(चाणक्य नीति दर्पण, 3.14)

"गृहस्थ आश्रम में वृक्षारोपण आवश्यक माना गया है। चाणक्य नीति में कहा गया है कि केवल एक फलों–फूलों वाला वृक्ष लगाना पर्यावरण को ऐसा आनंदमय और सुगंधित बना देता है जैसा एक सुपुत्र किसी कुटुम्ब को बना देता है।"

इस विश्वास ने कि देवता वृक्ष में निवास करते हैं जो कि पेड़ में आत्मा हैं स्वभाविक रीति के वृक्ष काटने को एक अवांच्छनीय कार्य बना दिया। जिस व्यक्ति को यज्ञ में बलि–स्तंभ के लिए वृक्ष काटना एक विवशता है उसको "शतपथ ब्राह्मण में यह निर्देश दिया गया है कि वह कुल्हाड़ी और वृक्ष के मध्य दूर्वा का तृण रखकर कहे–" हे दूब! वृक्ष का कवच बन जा" और प्रहार करने के पूर्व चिल्लाए, हे कुल्हाड़ी चोट न पहुँचाना।"

स्कंद पुराण में ऐसे वृक्षों की एक लंबी सूची दी गई है जो केवल यज्ञ के उद्देश्य के लिए काटे जाने चाहिएं और वे भी वर्षा ऋतु में कदापि नहीं–

एतेषां सर्ववृक्षाणा छेदनं नैव कारयेत्।
चातुर्मास्ये विशेषेण बिना यज्ञादिकारणम्।। (स्कंद पुराण, 20.83)

"इन सभी वृक्षों को काटना निन्दनीय है। यज्ञ के उद्देश्य के सिवाय वृक्ष कभी न काटे जाएं और विशेषकर वर्षा ऋतु में तो काटे ही न जाएं।"

पदमपुराण के अनुसार वृक्षों को काटना नरक में दंडनीय अपराध है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(56, 40–41) अग्निपुराण कहता है कि वृक्षारोपण और आंनद–वाटिकाओं का निर्माण पाप परिशोधन एवं सुखोपभोग में सहायक होते हैं। ऐसे प्रसंग ऋग्वेद (5.3.8–2) और सांख्यायन वृह्मसूत्र (5.32) में भी मिलते हैं। वृहत्संहिता कहती है यदि मकान के पश्चिमी कोने पर पीपल का वृक्ष लगाया जावे तो वह गृह–स्वामी के लिये सौभाग्य लाने वाला होता है। इन धर्म ग्रंथों में वृक्षारोपण की समानता किसी ब्राह्मण को दिये जाने वाले गोदान या भूमिदान से बताई गई है। "कौटिल्य अर्थशास्त्र" पेड़–पौधों को नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के दंड निर्धारित करता है–

"नगर के पास वाले उद्यानों के फलदायी वृक्षों की, फूलदायी वृक्षों की अथवा छाया देने वाले वृक्षों की कोपल काटने वाले पर छह पणों का अर्थदंड लगाया जायेगा, उन्हीं वृक्षों की छोटी–छोटी शाखाएं काटने के लिए बारह पण और बड़ी शाखाओं को काटने के लिए चौबीस पणों का अर्थदंड भरना पड़ेगा। उन्हीं वृक्षों के तने काटने वाला पहले निर्धारित अर्थदंड का पात्र होगा और पेड़ों को गिराने वाला माध्यमिक अर्थदंड का।"

(रामशास्त्रीः कौटिल्याज अर्थशास्त्र-तीसरा खंड़, पृ. 224)

अपनी संहिता में मनु ने भी वृक्षों को काटने के लिए अनेक दंड निर्धारित किये हैं और उसे अधर्म का कार्य कहा है।

चरक संहिता, वनों के विनाश करने को मनुष्य एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक मानती है–

विगुणेष्वपितु खलुऐतेषु जनपदोध्वंशन करेषुभावेषुकेनोपपाय मानानां न भय भवति रोगभ्यशति। (चरक)

"जंगलों का विनाश राष्ट्रों के लिए तथा मनुष्य जाति के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक है। समाज के कल्याण से वनस्पति का सीधा संबंध है। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषण के कारण और वनस्पति के विनाश के कारण राष्ट्र को बरबाद करने वाली अनके बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। तब चिकित्सकीय गुणयुक्त वनस्पति ही प्रकृति की अभिवृद्धि करके मानवीय रोगों को ठीक कर सकती है।"

(चरक संहिता, विमान स्थान, 3.11)

हिन्दुओं की वृक्ष–पूजा का केवल धार्मिक और पौराणिक आधारा ही नहीं बल्कि वह पेड़–पौधों की उपयोगिता के विभिन्न तथ्यों पर भी आधारित है। प्रथम तथ्य है सामान्य व्यावहारिक उपयोगिता अर्थात् छप्पर के लिए सामग्री प्रदान करना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दूसरा तथ्य है, उनका अच्छी और बुरी शक्तियों के आधीन होना। तीसरा तथ्य है, उनकी दवाइयों (जड़ी–बूटियों) वाली विशेषता का मूल्य। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, उद्योगीकरण और शहरीकरण में अभिवृद्धि के कारण वनस्पति के लिए उत्पन्न हुए संकट ने उस बुद्धिमत्ता के प्रति सम्मान को अधिक बढ़ा दिया है जिसने हमारी वृक्ष संपदा के संरक्षण पर ध्यान देकर वृक्षों को देश में समाहत बनाया। धीरे–धीरे देश का वन्य क्षेत्र घटता गया है और उद्यान लगाना अब एक पुण्य का कार्य नहीं रह गया है। इस बात ने पर्यावरण को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

श्रीमद्भागवत में वृक्षों के महत्व का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–

पश्यतैनान महाभागान् घरार्थेकान्त जीवितान्।
वातवर्षातप हिमान् सहन्ते वारयन्ति नः।। **(श्रीमद्भागवत)**

"देखो कितने बड़े भाग हैं इन वृक्षों के जो केवल इसलिए जीते हैं कि दूसरों का भला हो। कितनी महानता है उनकी कि वे आंधी, वर्षा और धूप की प्रखरता सहते हुए हमारी रक्षा करते हैं।"

श्रीमद्भागवत में ही कहा गया है कि–

पत्र-पुष्प-फल-छाया-मूल-वल्कल-दारूभिः।
गन्ध निर्यास भस्मास्थि तौक्मैः कामान् वितन्वते। **(श्रीमद्भागवत)**

"वृक्ष अपने सभी अवयवों से–पत्तों से, फूलो से, फलों से, छाया से, जड़ों से, छाल से, लकड़ियाँ से, गंध से, गोन्द से, राख से, कोयले से और टहनियों से सबकी कामना पूरी करते हैं।"

श्रीमद्भागवत के अनुसार वृक्षों ने किसी भी याचक को कभी निराश नहीं किया–

अहो एषां वरं जन्य सर्व प्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव धन्य महीरूहा,
येभ्यो निराशा यान्ति नार्थिनः।। **(श्रीमद्भागवत)**

"समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उत्तम है। सज्जनों जैसे कि धन्य हैं वे जिसके पास से कोई याचक निराश नहीं लौटता।"

विक्रमचरितम् के 65वें श्लोक में वृक्षों को सत्पुरूषों के समान माना गया है–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वंममातये।
फलान्यसि परार्थाय वृक्षः सत्तपुरुषा इव।। **(विक्रमचरितम्)**

"वृक्ष तो सज्जनों जैसे परोपकारी हैं। स्वयं धूप में खड़े रहते हुए भी वे दूसरों को छाया देते हैं। उनके फल भी दूसरों के उपयोग के लिए होते हैं।"

वाराहपुराण (162–4 1–4 2) में वृक्षों के उपकारों का वर्ण किया गया है–

इन्धनार्थ यदानीतं अग्निहोमं तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च।।
पत्र मूल त्वगादिभिर्य औषधार्थ तु देहिनाम्।
उप कुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयज्ञः स उच्यते।। **(विक्रमचरितम्)**

"वृक्षों के पांच उपकार उनके दैनिक पांच महायज्ञ हैं। वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया व विश्राम स्थल देकर, पक्षियों के नीड़ बनकर तथा पत्तों, जड़ों व छालों से समस्त जीवों को औषध देकर उनका उपकार करते हैं।" भामिनीविलास (प्रा. 89) में वृक्षों की वंदना की गई है–

धन्ते मरं कुसुमपत्र फलावनीनां,
धर्मव्यथां वहति शीत भवांरूजं वा।
योदेहमपर्यति वान्य सुख्यस्य हेतोः
तस्मै वदान्य गुरवे तरवे नमस्ते।। **(भामिनी विलास)**

"हे तरूवर ! आप फूलों, पत्तों और फलों का भार वहन करते हैं, लोगों की धूप की पीड़ा हरते हैं और उनके ठंड के कष्ट मिटाते हैं। इस तरह दूसरों के सुख के लिए आप अपना तन समर्पित कर देते हैं। इन्हीं गुणों से आप उदार पुरूषों के गुरु हैं। अतः हे तरूवर ! आपको मेरा नमस्कार है।"

उपदेश तरंगिणी में (7, 7, 2) वृक्षों को महान उपकारी माना गया है–

मंजरिमि पिक-निकरं
रजोभिरलिनं फलैश्च पान्थगणम्
मार्ग सहकार! सतत्
उपकुर्वन् नन्दति चिरकालम्। **(उपदेशतरंगिणी)**

"पथ के किनारे खड़े हे वृक्ष! तुम यु–युग जीओ और आनन्दपूर्वक रहो क्योंकि तु अपनी मंजरियो के कोकिलों का, पराग से भ्रमरों का तथा फलों से पथिकों का सदा उपकार करते हो।"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मत्स्यपुराण में वृक्षों की महिमा निम्नानुसार वर्णित है–

दस कूप समावापी, दसवापी समाहदः।
दस हद समः पुत्रों, दस पुत्र समो द्रुमः।। (मत्स्यपुराण)

दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र औ दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।"

2. बौद्ध धर्म में वनों का महत्त्व

वनो की रक्षा का बौद्ध धर्म में महत्त्व है। महात्मा बुद्ध के निम्नलिखित आशय वाले शब्द ध्यान देने योग्य हैं–

"वन प्रकृति की ऐसी जीती–जागती देन हैं, जिसमें प्राणियों के लिए अपार दया और परोपकारिता का आगार है। वन दूसरों के प्रति करूणा के स्त्रोत हैं एवं बदले में अपने लिए कुछ याचना नहीं करते। वे बड़ी उदारता से जीवनदायक पदार्थ भेंट करते हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि जो मनुष्य कुल्हाड़ी लेकर उसको काटने जाता है उसे भी वे सूर्य की गर्मी से बचाते हैं।"

भगवान् बुद्ध ने कहा था–

पत्र-पुष्प-फलच्छाया मूल वल्कल-दारूभिः
गंध-निर्यास-भस्मास्थि तोक्यैः कामान्वितन्वते।। (भगवान्बुद्ध)

"पत्र, पुष्प, फल, छाया, जड़, छिलका, काष्ठ, गंध गोंद एवं भस्म से संसार की सेवा करने वाले वृक्ष की जय हो।"

धर्म्मपद में लिखा है–

यथापि भ्रमरो पुष्पं वर्ण गंध अहेठयं।
पलेतिंरसमादाय एवं गामे मुनीचरे।। (धर्मपद)

"जैसे भ्रमर पुष्प के कर्ण एवं गंध को हानि पहुँचाये बिना रस लेकर चला जाता है वैसे ही मुनि ग्राम में भिक्षाटन करें।"

त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित के अनुसार वृक्षों ने विश्व को कृतार्थ कर दिया है–

आमोदैभैरुदो मृगः किसलयोल्लासैस्त्वचा तापसः
पुष्पैः पटचरणा फलैः शकुनयो धर्मादिताश्छायया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्कन्धेर्गन्ध गजास्तवयैय ग्वहिताः सर्वे कृतार्थास्ततः।
त्वं शिवकोष कृतिक्षमोडिस भवता भग्रापदोंऽन्ये द्रुमाः।

(त्रिपिटिकाचार्य)

"प्रकंपन से हवा को प्रमुतिद करने वाले, पत्तों से पशुओं को हर्षित करने वाले, वल्कल से तपस्वियों को आह्लादित करने वाले, पुष्पों से भ्रमरों को उन्मत्त बनाने वाले, फलों से पक्षियों को आनंदित करने वाले, शीतल छाया से धूप पीड़ितों को विश्राम देने वाले एवं तनों तथा गंध से हाथियों को उल्लसित करने वाले हे वृक्षों! तुमने समस्त विश्व को कृतार्थ कर दिया है।"

3. कुरान में वृक्ष, पशुओं एवं बागों का वर्णन

कुरान–शरीफ में लिखा है कि "हरा पेड़ काटने वाले और जानवर को मारने वालों को खुदा माफ नहीं कर सकता।"

"और जो लोग खुदा की खुशी के लिए और अपनी नीयत साबित रखकर अपना माल खर्च करते हैं, उनकी मिसाल एक बाग जैसी है जो ऊंचे पर है, उस पर जोर का मेंह पड़े, तो दूना फल लाये और अगर उस पर जोर का मेंह न पड़ा तो (उसकी) हल्की फुआर भी काफी है।" (हिन्दी कुरान, पृष्ठ 62)

"वही है जिसने आसमान से पानी बरसाया जिसमें से कुछ तुम्हारे पीने का है और उससे पेड़ परवरिश पाते हैं। जिनमें तुम अपने मवेशियों को चराते हो। उसी पानी से खुदा तुम्हारे लिए खेती और जैतून–खजूर और अंगूर और हर तरह के फल पैदा करता है।" (हिन्दी कुरान–श्री अहमद वशीर पृ. 272)

मुकद्दस कुरान शरीफ में कई जगहों पर कुदरत (प्रकृति की हिफाजत (संरक्षण) और उसे सरसब्जो शादाब (हरा–भरा) रखने का जिक्र आया है। पैगम्बर मुहम्मद साहब प्रकृति के दुश्मनों से त्रस्त होकर मक्का से मदीने जाने के लिए विवश हो गये और जब वहां से इस्लाम धर्म का प्रचार करते हुए पुनः मक्का लौटे तो सबसे पहले अपने अनुयायियों से मुखातिब होकर फरमाया कि "जब तुम मक्का में दाखिल हो तो पानी में जहर न घोलो, पेड़ न काटो ताकि इन्सानियत उसके साये से महरूम हो जावे और गर्मी की तपिश से इन्सानों के जिस्म झुलस जायें।

4. बाइबिल एवं अंग्रेजी साहित्य में वृक्षों एव जीवों का महत्व

बाइबिल के अनुसार "मनुष्य अपने मित्र (वृक्ष एवं वन्य पशुओं) के लिए प्राणों की आहुति दे दे, इससे बड़ा प्रेम का सबूत क्या हो सकता है। पेड़ों के महत्व को महाकवि हैनरी ऐब्बे ने निम्नानुसार वर्णित किया है–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वृक्षारोपण की सार्थकता का बोध हमें होता कितना!
वह जलयान का रोपण है सिंधु-पार है जिसे उतरना।
वह मस्तुलों का रोपण है जो पालों के सबल होंगे।
वह उन फलकों का रोपण है जो जूझेंगे झंझा से-।
वह रोपण है शीतल का, शहतीरों का, धरणी और योजक का-।
वृक्षारोपण जब होता है, जन्म एक जहाज का होता है। (मूलहेनरी ऐवे)

कवि जार्ज मारिस ने वृक्षों के प्रति मार्मिक शब्दों में निम्नानुसार अपने भाव प्रकट किये हैं–

"हे लकड़हारे उस वृक्ष को मत काटो। उसकी एक शाखा का भी बाल बांका नहीं होना चाहिए। इस वृक्ष ने अपने यौवन काल में मुझे शरण दी, अब मैं उसकी रक्षा करूंगा।"

बाइबिल में वृक्षों के विषय में अनेक सुन्दर कथन मिलते हैं, जो लोकोक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं–

In the place where the tree falleth there shall be old Test. Eccles.)

–जहां पेड़ गिरेगा वहीं रहेगा।

The axe is laid unto the root (New Test Mathew)

–कुल्हाड़ी पेड़ की जड़ में ही लगती है।

The Tree is known by his fruits (New Test Mathew)

–पेड़ फलों से ही पहचाना जाता है।

5. सिख धर्म का प्रकृति प्रम

सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक देव जी ने कहा कि "वायु ही जीवनदायी शक्ति है, जल ही जनक है, विशाल पृथ्वी ही सब की जननी है।" गुरु नानक देव जी के इन शब्दों में जीवन के प्रति, जीवनदायिनी शक्ति के प्रति पृथ्वी पर हमारे सुख समृद्धि के स्रोत के प्रति आदर व्यक्त करने की भारतीय परंपरा का सार निहित है। सृष्टि के अनंतकाल से हमने प्रकृति को सर्वोपरि माना है। भारतीय परंपरा में उस पर विजय पाने एवं जीत पर गर्वोक्ति करने का कोई स्थान कभी नहीं रहा।

6. वृक्ष एवं संत जम्भेश्वर

गुरु जाम्भो जी ने निम्न पद्य पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में अपने शिष्य नाथ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जी को सुनाया था–

"हरा वृक्ष नहीं काटना, यह सब का मंतव्य।
रक्षा में तत्पर रहे, जान यही कर्त्तव्य।।"

जाम्भो जी अनुयायियों के हृदयों को वृक्षों की रक्षा और जीव–दया सम्बन्धी उपदेशों से सदैव आलौड़ित करते रहे एवं पेड़ों की रक्षा हेतु विश्नोइयों ने अपना बलिदान कर दिया। विश्नोई धर्म के उनतीस नियमों में से दो निम्नलिखित हैं–

"जीव दया पालणी, रूख लीला नहीं जावे" अर्थात् हर जीव के प्रति दयाभाव रखना चाहिए और किसी हरे वृक्ष को नहीं काटना चाहिए।

7. वन एवं वन्य-जीवों के संरक्षण की विश्व स्तर पर घोषणा

सन् 1972 में पर्यावरण पर आयोजित विश्व सम्मेलन में स्टाकहोम (स्वीडेन) में मानवीय वातावरण संबंधी निम्नानुसार घोषणा की गई–

"मानव पर विशेष उत्तरदायित्व है कि वह वन्य–जीवों और उनके निवास स्थान को संरक्षण प्रदान करे और उनका कौशलपूर्ण प्रबंध करे। आज दोनों ही वन एवं वन्य–जीव, कई विपरीत परिस्थितियों के संयोग से घोर संकट में पड़ गये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्राकृतिक संरक्षण के साथ–साथ वन्य–जीवों के संरक्षण की योजनाओं का प्रश्रय मिलना चाहिए।"

हमने सदियों से पर्वतों, नदियों, वृक्षों, पशु, पक्षियों को वंदनीय माना है। ऐसी गौरवशाली परंपरा के धनी होने के बावजूद हमने तुच्छ स्वार्थवश प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है। वन्य–जीवों एवं वनों को बटाने में हमारी अहम् भूमिका रही है। वनों की अबैध कटाई से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा है, देश का मौसम असंतुलित होने लगा है, बर्फ की परतों की मोटाई कम होने लगी है, प्राकृतिक झरने सूखने लगे हैं, सर्दियों में तापमान अपेक्षाकृत अधिक गर्म रहने लगा है, तथा रेगिस्तान का फैलाव बढ़ता जा रहा है।

वन कटने से संकट आने का आभास लोगों को बहुत पहिले ही हो गया था। प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था–

"हमारे जंगल कई मानों में हमारे लिए बहुत जरूरी हैं। हमें उनको बनाये रखना चाहिये। जैसाकि स्पष्ट है, हम इन्हें काफी बर्बाद कर चुके हैं। यह सही है कि आबादी के बढ़ने के साथ–साथ हमें ज्यादा अनाज की जरूरत हो रही है। लेकिन यह जरूरत हमें जंगलों को बर्बाद करके नहीं बल्कि खेती को और

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सघन बनाकर पूरी कर सकते हैं क्योंकि जंगल हमारे राष्ट्र की तरक्की के लिए निहायत जरूरी हैं।" (पर्यावरण विशेषांक, सचित्र आयुर्वेद से साभार)

पर्यावरण सन्तुलन एवं भारतीय संस्कृति में वन संरक्षण की उपादेयता

संसार में जो भी प्राकृतिक एवं मनुष्य द्वारा **प्रदत्त** वस्तुयें हैं, वे सभी मिलकर पर्यावरण बनाती हैं। पारिभाषिक रूप में पर्यावरण से अभिप्राय -जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक, रासायनिक, तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। प्रकृति अनादिकाल से ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती आ रही है, परन्तु आज विश्व की अबाधगति से बढ़ती हुई जनसंख्या एवं भौतिकवादी प्रवृत्ति से आज प्रकृति द्वारा प्रदत्त व्यवस्था में अवांछित विदोहन के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण विश्वव्यापी समस्या बन गई है। यह पर्यावरण दो कारणों से मिलकर बना है। 1. जैविक कारक, 2. अजैविक कारक

1. जैविक कारक : (अ) पेड़–पौधे, (ब) जीव–जन्तु, (स) मनुष्य।

2. अजैविक कारक : (अ) वायु, (ब) जल, (स) मिट्टी।

जब दोनों कारक वातावरण में सन्तुलित रहते हैं तो पर्यावरण स्वच्छ एवं नियन्त्रित रहता है। परन्तु जब वातावरण असन्तुलित हो जाता है तो यही प्रदूषण कहलाता है। वर्त्तमान जगत में यह एक समस्या आज जटिल हो गई है जो कि भयावह रूप में मानव सभ्यता को निगल जाने के लिये अपने पञ्जे बढ़ा रही है परिणाम स्वरूप प्रदूषण बढ़ता चला जा रहा है। जब कोई भी कारक इन सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है तो जनपदोध्वंस होने का खतरा रहता है।

वर्त्तमान में पर्यावरण मुख्य रूप से प्रदूषित हो रहा है जिसका मुख्य कारण प्रज्ञापराध है। प्रज्ञापराध के कारण (1) जल प्रदूषण, (2) वायु प्रदूषण, (3) भूमि प्रदूषण, (4) ध्वनि प्रदूषण, (5) ताप प्रदूषण की जटिल समस्या विश्व के समक्ष है। यदि हम गंभीरता से विचार करें तो उपरोक्त सभी पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारक चरक संहिता में विमान अध्याय 8 में वर्णित हैं जनपदोध्वंस के मुख्य कारकों पर विचार करना होगा। चरक में भगवान् आत्रेय ने अग्निवेश से कहा, "हे अग्निवेश! प्रकृति स्थित भावों के भिन्न होते हुये भी मनुष्यों के अन्य भाव सामान्य हैं।" प्रकृति स्थित जल, वायु, मिट्टी आदि भावों के विकृत्र होने से एक ही समय में एक ही समान लक्षण वाले रोग उत्पन्न होकर जनपदोध्वंस में वायु, जल, देश, काल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सामान्य रूप से विकृत होते हैं, यथा–

तमुवाच भगवानात्रेयः- एवमसामान्यानेमिटप्यग्निवेश! प्रकृत्यादिमिभाष्वै र्मनुष्याणां येऽन्यभावाः सामान्यास्त द्वैगुण्यात् समानकालाः समान लिङ्गाश्च ब्याधयोऽभिनिर्वर्तमाना जनपद मुद् ध्वंत्सयन्तिः ये ते खल्विये भावा सामान्या जनपदेषु भवन्तिज। तद्य-वायुः रूदकं देशः कालइति'' चरक वि.अ. 3/8 (प्र.सं.)

विकृत वायु प्रदूषण के लक्षण

आयुर्वेद में सामान्य एवं विशेष के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये उपरोक्त अजैविक कारकों– वायु, जल एवं देश (भूमि) में असन्तुलन होने से क्रमशः ऋतुविपरीत वायु चलने के कारण अत्यन्त वेग वाली वायु (हवा) अतिकर्कश, अतिशीत, अतिऊष्ण, अतिरुक्ष, अभिष्यन्दी, अतिशब्द करने वाली हवा आपस में टक्कर खाती हुई कुण्डली युक्त (भौंरों के रूप में) बुरी दुर्गन्ध युक्त वाष्प, दूषित हो जाती है। वायुमंडल में पायी जानी वाली समस्त गैसें एक निश्चित अनुपात में होती हैं एवं उपरोक्त कारणों से इस अनुपात में असंतुलन आ जाता है। जिसके फलस्वरूप वायु प्रदूषित होकर जीवधारियों के लिये वायु घातक हो जाती हैं। हवा को प्रदूषित करने वाले पदार्थ कार्बन, विषेली गैस एवं खनिज लवण आदि हैं। कतिपय किस्मों के औद्योगिक कारखानों से निकलने वाला धुंआ जिसमें सल्फर डाई आक्साइड, ओजोन आदि मुख्य विषेली गैस एवं खनिज लवण आदि हैं। इसके अतिरिक्त मानव के दैनिक उपयोग की वस्तुयें, स्वचालितयान, आदि से भी वायु प्रदूषित होती रहती है। इस प्रकार की वायु के शरीर में प्रवेश करने पर दमा, खांसी, फेफड़े के रोग, श्वास सम्बन्धी रोग एवं त्वचा के रोग हो जाते हैं। इस प्रकार दिन प्रतिदिन वातावरण में कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा विश्व में बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप औसतन तापमान भी बढ़ता जा रहा है। यथा–

''तत्र वातमेवं विविध मनोरोग्य करं विद्यात्।। च.वि.अ. 3

इस औद्योगीकरण युग के कारण जहाँ एक ओर मानव के लिये अनेक प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं। वहीं दूसरी ओर औद्योगीकरण प्रदूषण एवं अन्य व्यावसायिक रोगों की समस्या में बढ़ती जा रही हैं। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उद्योगीकरण के कारण आज ऊर्जा का संकट उत्पन्न हो गया है। पेट्रोलियम पदार्थ पृथ्वी में एक सीमित मात्रा में है। आज सभी राष्ट्रों के सामने यह प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है कि इस प्रकार के प्रकृति विदोहन से एक दिन ऐसा आ सकता हैं कि जीवकाश्मई घन, (पेट्रोलियम, कोयला) ईंधन आदि पदार्थ पृथ्वी में समाप्त

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होने लगेंगे जिससे मानव का जीवन अति संकटमय हो जायेगा। इस प्रकार वायु में बढ़ती हुई कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा के कारण सन् 2030 तक धरती का तापमान 1.5 से 4.5 सेल्सियस डिग्री तक पहुँच सकता है। समुद्र का जल स्तर 1.4 से 2.2 मीटर ऊपर उठ जायेगा और फलस्वरूप जनपदोध्वंस एवं महाप्रलय हो सकता है जिसका ज्वलन्त उदाहरण बंगलादेश एवं सोवियत संघ आदि देश हैं।

2. जल प्रदूषण

औद्योगिक कारणाों एवं बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप जल के विकृत होने पर जल का स्वरूप विकृतगन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श एवं क्लेदयुक्त होने से जलचर (पानी में रहने वाले जीवधारी मछली आदि) व जलाशयों के विकृत होने पर जलीय पक्षी या तो मर जाते हैं या जलाशयों को छोड़कर भाग जाते हैं। जलाशयों का स्तर घट जाने के कारण या प्राकृतिक जलस्त्रोतों में पानी कम होने के कारण पानी पीने युक्त नहीं रहता जो कि कतिपय घातक रोगों का कारण होता है। आज देश को जल प्रदूषण का सबसे बड़ा खतरा है। भारत की कतिपय पावन नदियाँ एवं जलाशय गंगा, जमुना, काबेरी, नर्मदा आदि नदियों का जल प्रदूषण के कारण पीने योग्य नहीं समझा जाता है। हमारे देश में पानी के मुख्य साधन कुऐं, तालाब, झरने और नदियो हैं। गंगा–जमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि नदियाँ धार्मिक रूप से पवित्र मानी गई हैं। इन नदियों में स्नान करने एवं जल सेवन से शारीरिक एवं मानसिक कष्ट दूर होते हैं। ऐसी हमारी मान्यता हैं यही कारण है। कि विशाल कुम्भ पर्व इन पावन नदियों के सङ्गम स्थलों पर होता है।

नर्मदा सिन्धु सावित्री पवित्र कुरु में सदा।।

महर्षिचरक ने जनपदोध्वंस में जलप्रदूषण मुख्यकारण लिखा है जैसा कि उपरोक्त प्रसङ्ग में निर्दिष्ट किया गया है। यथा–

"उदकंतु खलु अत्यर्थ विकृति गन्ध वर्ण रसस्पर्श व क्लदेवहुल मनक्रान्त जल चरविहङ्गमुपक्षीण जलाशयमप्रीतिकर गुणंविद्यात्।।

च.वि.अ. 8

जल को प्राण कहा गया है, परन्तु आज 70% इन पवित्र नदियों, झरनों, तालाबों एवं कुओं का पानी दिन प्रतिदिन विकृत हो रहा है जो कि स्वास्थ्य के लिये घातक है। इस दूषित जल के कारण पेचिस, मोतीझारा, हैजा, अतिसार, मलेरिया, आन्त्रशोथ, कोलाईटिस, गैस्टयाईटिस एवं वृक्क रोग होते जा रहे हैं। अनुमानतः इन बीमारियों से प्रति वर्ष लाखों की संख्या में अकालमृत्यु होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जल में ये अशुद्धियां, विभिन्न लवणों जैसे सोडियम, पोटेशियम, कैल्सियम, मैग्नेशीयम, कार्बोनेट, बायोकार्बोनेट तथा सल्फेट आदि हैं। कभी–कभी जीवधारियों के मलों द्वारा विसर्जित मल, मूत्र, शवदाह, उद्योगों द्वारा विसर्जित पदार्थों को नदियों में बहाने से जल प्रदूषित हो जाता है। इस प्रकार वायु एवं जल प्रदूषण के कारण अम्लीयवर्षा का भय रहता है इसमें सल्फाईड आक्साईड एवं नाईट्रोजन पर आक्साईड की वृद्धि बढ़ जाती है इन दोनों गैसों का जब आक्सीकरण होता है तब अम्ल एवं नाईट्रिक एसिड बनता है। दोनों गैसों के नम हवां के सम्पर्क में आने पर अम्लीयवर्षा होती है। तथा तालाबों, झीलों में रहने वाले जीव–जन्तु मुख्य रूप से मरने लगते हैं। दिन–प्रतिदिन हमारे देश में जल प्रदूषण की एक भयावह स्थिति पैदा होती जा रही है। पर्यावरणविद् आज इसके निदान खोजने एवं हल करने के उपायों के लिये चिन्तित हैं। हमें इसके निराकरण हेतु धरती पर मिट्टी और जल के स्तर को विकसित करना होगा। इसके लिये वनों को विनाश से बचाना होगा। सघन वनों की सुरक्षा एवं वृक्षारोपण क्रार्यक्रमों में तेजी लानी होगी। पर्वतीय भूभाग में जलस्रोर्तों की व्यवस्था की जा सके।

भूमि प्रदूषण

उद्योगीकरण के कारण एवं खानों की खुदाई के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण में डायनामाईट का अत्यधिक प्रयोग के कारण, बड़े–बड़े सागर (बांध) निर्माण के कारण, भूकम्प, अति–वृष्टि एवं अनावृष्टि के कारण भूमि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप मृदा–क्षरण व संदकों का बनाना, भूमि का रासायनिक प्रदूषण एवं उसरभूमि का निर्माण होना औद्योगिक कचरा द्वारा भूमि की उत्पादकता का नष्ट होना स्वाभविक है, लकड़ी, चारा एवं टिम्बर आदि की पूर्ति के लिये वनों का अवैध रूप से कटान करने के कारण पहाड़ों के ढलान अस्थिर हो जाने से मिट्टी का कटाव व बहाव बढ़ जाने के कारण करोड़ों टन उपजाऊ मिट्टी पानी के साथ बह जाती है। बंजर तथा ऊसर भूमि का वर्ण, गन्ध स्पर्श, विकृत होता जा रहा है। सभी थल–चर जीव जन्तु दिखाई देने लगते हैं। मृग, पक्षी घबड़ाकर भागने लगते हैं कुत्ते चिल्लाने लगते हैं जोकि जनपदोध्वंस के सूचक हैं। हमें इन सभी दूरगामी विषयों पर विचार करना होगा। यथा–

देशं पुनः-प्रकृति विकृत गन्धं,
रसस्पर्श क्लेदबहुल एवं क्रन्ति शब्दबहुलं चाहितं विद्यात्

च.वि.अ. 8

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा का कहना है कि पर्यावरण सन्तुलन के लिये धरती पर जब मिट्टी और पानी बढ़ेगा तभी सही विकास कहा जायेगा। इसके लिये पृथ्वी को वनों से आच्छादित करना होगा। पूरे क्षेत्र में वनस्पतियाँ उगाकर शस्यश्यामला हरित क्रान्ति लानी होगी। जल के स्रोतों को पुनर्जीवित कर एवं मिट्टी के क्षरण को रोककर उपजाऊ भूमि को बढ़ावा देना होगा। आयुर्वेद में वर्णित जांगल, आनूप, एवं साधारण देश भूमि के अनुसार जांगल देश के विकास पर ध्यान देना होगा। जिस देश में छोटे–छोटे वृक्ष हों, वनस्पतियों का प्राचुर्य हो, छोटी–छोटी पहाड़ियाँ हों, जल स्वच्छ, निर्वाध रूप से वहने वाली नदियाँ हों, सूर्य की धूप प्रचुर मात्रा में पड़ती हो, स्वच्छ, सुगन्धित वायु निर्वाध गति से बहती हो, वह जांगल देश कहलाता है। **यथा–**

देशोऽल्पवारि दुर्गमनो, जांगला अल्परोगदः।
आनूपोविपरीतोऽस्मात्, समः साधारणः यतः।। **अ.हृ.**
प्रचुरोदक वृक्षों यो निवासो दुर्लभातपाः।
आनूपो वहुदोषस्य, समा साधारणोमतः।। **च.वि.अ. 8**

ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण जीवन के लिये निकट भविष्य में मानव का सबसे बड़ा शत्रु है। सारा विश्व इस ध्वनि प्रदूषण से चिन्तित एवं रोगग्रस्त होता जा रहा है। बढ़ता हुआ शोर विषैले रसायनों से भी सबसे ज्यादा घातक है। ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिये ठोस उपाय करने होंगे। कल–कारखानों में कार्यरत कार्मचारियों के लिये उचित उपाय करने होंगे। मोटरवाहनों के लिये आधुनिक साइलैन्सरों की व्यवस्था पर जोर देना होगा।

ताप प्रदूषण

दिन प्रतिदिन विषैली गैसों के कारण एवं वायु प्रदूषित होने के कारण ऋतुओं में परिवर्तन एवं तापमान की धुरी में अन्तर आना ताप प्रदूषण के कारण हैं। इसके अतिरिक्त निम्न प्रकार से पर्यावरण प्रदूषण देखा गया है।

1. वनों का विनाश।
2. कतिपय पेड़–पौधों की प्रजातियों का समाप्त होना।
3. प्रलयकारी बाढ़ का आना या सूखा पड़ना।
4. गन्दी बस्तियों के कारण।
5. वंजर भूमिका प्रसाद के कारण उत्पादकता में कमी आना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारतीय संस्कृति एवं वन सम्पदा

प्रकृति स्थित सजीव एवं निर्जीव किसी भी इकाई की कमी एवं वृद्धि से सम्पूर्ण पर्यावरण के स्वरूप में विषमता आ जाती है। भारतीय संस्कृति का प्रादुर्भाव उत्तुंग पर्वतश्रेणियों के वन प्रान्तों, हरित हिमाच्छादित घाटियों, सुरम्य नदियों के स्वच्छ तटों एवं विशाल सागर के वनाच्छादित प्रदेशों से हुआ है मन्त्रदृष्ट्रा ऋषियों एवं साधु–सन्तों ने अपने जीवनोत्कर्ष एवं जनकल्याण की कामना से सतत चिन्तन एवं मनन कर लोक कल्याण की कामना की है। प्रकृति को ईश्वर मानकर इसकी पूजा, अर्चना एवं स्तुति का विधान बनाया है। इस प्रकार के कतिपय मंत्र वेदों, उपनिषदों एवं धर्म ग्रथों में मिलते हैं। **यथा–**

1. **अहोएषां वरं जन्म, सर्वप्राण्युपजीवनम्।**
   धन्या मही सहायेम्यो निराशायान्तिनार्थिनः।।
2. **ऑं द्यौ शान्तिः पृथ्वी शान्तिः औषधयः**
   शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः सर्वारिष्ठः शान्तिः हिः।। **अथर्ववेद्**

धत्ते कुसुमपत्र फलावनीनां, धर्मब्यथा वहति शीतमथांरुजंच
यो देहमथयति चान्यसुखस्यहेतो, तस्मैवदान्य गुरुवे तरुवे नमस्ते।।

भवभूतिः

ये चेतनावान् भूकपूण्यां वनस्पतियां सभी प्राणियों का जीवन हैं। भारतीय संस्कृति में वट (वड़), अश्वत्थ (पीपल), बिल्व (बेल), बृन्दा (तुलसी), अपराजिता, पद्म (कमल), कदली (केला), देवदारु, दूंर्वा (दूब), कुश, शमी, अरणी, आम्र (आम, आदि वृक्षों एवं पादपों को देव संज्ञा प्रदान की गई है। धार्मिक उत्सवों पूजा–पाठ में ये वनस्पतियाँ हमारे जीवन की अंग हैं। तुलसी का पौधा भारत में ही नहीं पश्चिमी देशों में भी प्रसिद्ध है। ईसाई लोग तुलसी को देवस्वरूप मानते हैं। ऐसी मान्यता है कि ईसा की कब्र पर यह पौधा उगा था। वृक्षों की महिमा को ध्यान में रखते हुये हमारे ऋषि–मुनियों ने कतिपय सुरम्य काननों, उद्यानों एवं वनों, पर्वत शैलों का उल्लेख किया है जिनके नाम इस प्रकार से हैं। 1. अंगिरावन, 2. नैभिषारण्यवन, 3. तपोवन, 4. गन्धमादन, 5. पंचनदवन, 6. कंटकवन, 7. दण्डकारण्यवन, 8. सौराष्ट्रवन, 9. कलिंगवन आदि कतिपय वनों का उल्लेख वर्णित है। इन वनों–उपवनों के कटान एवं विदोहन करने पर अनावृष्टि एवं अकाल पड़ने की अधिक सम्भावना बनी रहती है। अग्निपुराण में ऐसा उल्लेख आया है कि वृक्षों के अनैतिक रूप से कटान करने पर अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि होकर अकाल पड़ जाता है। **यथा–**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्रियते पत्र विच्छेदः सपुष्प फलनिस्तये।
अनावृष्टि भयं घोरं, तस्मिन्देशे प्रजायते।। **(अग्निपुराणः)**

भौगोलिक एवं जलवायु के आधार पर हम इनको सदाहरित वन, पर्णपाती वृक्षवन, उष्णकटिबन्धीय कण्टकितवन कह सकते हैं। कतिपय वनस्पतियों के नाम देश विशेष के आधार पर रखे गये हैं। जैसे कलिंग (कुटज), मागधी (पिप्पली), वाह्लीक (केसर), यवानी (अजवायन) सौराष्ट्री (फिटकरी), मलयज (चन्दन), केदारज (पद्माख), चीनाक (कर्पूर) आदि वनस्पतियों के नाम से हैं। वनस्पतियों का जीवधारियों से गहरा एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हैं।

ये वनस्पतियां मानव द्वारा किये गये प्रदूषण को अपनी श्वसन क्रिया से शोषण कर शुद्ध आक्सीजन प्रदान करती हैं। जब हम इन पेड़–पौधों को काटतें हैं तो तब हम नहीं सौचते कि हम अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। उन असंख्य प्राणियों का जीवन नष्ट कर रहे हैं जिन पर स्वयं हमारा जीवन निर्भर करता है। पेड़–पौधे नष्ट हो गये तो जंगली जानवर और पक्षी भी नष्ट हो जाते हैं। हमारे पालतू पशु, गाय, भैंस, बैल, बकरी सभी चारे पर निर्भर करते हैं और ये जीव–जन्तु भी प्रकृति के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक होते हैं। आज मानव को यह सोचना होगा कि अपनी सुख सुविधा के लिये प्रकृति को विनाश से बचाना होगा। प्रकृति में एक–एक जीव, अणु, एक–एक वनस्पति प्रकृति तंन्त्र के आवश्यक पुरजा हैं। एक भी पुरजा यदि बिगड़ गया तो प्रकृति स्थित पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाता है। प्राकृतिक वनस्पतियों के नष्ट कर देने से हवा, पानी, भूमि एवं नदियो का सन्तुलन बिगड़ जाता है। भूमि के क्षरण से बाढ़, आंधी, भूचाल आदि कतिपय समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।

इसलिये वनो का हमारे जीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। मनुष्य के आगमन से पूर्व ये वनस्पतियां विश्व के धरातल पर विद्यमान थीं। यह भी कहा जाता है कि पादप के जीवन का प्रारम्भ समुद्र से हुआ। सम्भवतः हजारों वर्ष पहले ये पौधे समुद्र में रहे होंगे। बाद में जब पृथ्वी का धरातल उनके लायक वन गया तो पौधे जमीन की ओर अग्रसर हुये। जैसी––मृदा रही व मौसम और जमीन के अनुरूप घास, पेड़–पौधे और वनस्पतियों ने अपना स्थान ग्रहण किया। इसी कारण इस औभ्दिज सृष्टि मानव जीवन के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में पूर्ण सहायक हैं। इतना ही नहीं वनस्पति विश्व में उस निराकार प्रभु का साकार रूप भी है। ये पेड़–पौधे ही मनुष्यत्व एवं देवत्व के मध्य सम्बन्धों का प्रमुख माध्यम रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों ने वनस्पतियों के बीच बैठकर ईश्वर का साक्षत्कार किया। हमारे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सभी धर्मिक कार्यक्रम यज्ञ, पूजा–विवाह, जन्म–मरण आदि कायों में तुलसी, बड़, पीपल, आम, चन्दन, बेल आदि कतिपय वृक्षों की महिमा वर्णित है। यही कारण है कि शष्यश्यामला हरियाली सुख एवं समृद्धि का द्योतक है वैदिक काल से ही भारतीय लोकोपचार एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को मूर्तरूप देने में नदियो एवं वनों के महत्व के विषय में पूर्ण भूमिका रही है। ऋग्वेद में बारम्बार मौसम के नियंत्रण पाने, भूमि को उपजाऊ बनाने तथा मानव जीवन की एकसत्ता बढ़ाने में वनसम्पदा व वन्य जन्तुओं का महत्व दर्शाया गया है। धार्मिक ग्रन्थों में भी कतिपय ऋषि–मुनियों के आश्रमों में इस प्रकार सुरम्य प्रकृति संरक्षण एवं वन सम्बर्द्धन के उदाहरण मिलते हैं। वैदिक भारत में अधिक वृक्ष रोपण करना एक नारा ही नहीं, अपितु धर्म द्वारा अुनमति प्राप्त करना जीने की उत्तम पद्धति हैं, वेदों के अनुसार जो व्यक्ति वृक्ष लगाता है, वह सीधा स्वर्ग जाता है उपनिषदों में भी वृक्ष मनुष्य के तुल्य माना गया है। इसी कारण उपनिषदों में देव स्थान, जलस्रोतों के समीप, नगरों एवं वनों से पेड़ों के काटने पर दण्ड देने का विधान बताया है। वनों के विकास एवं रोपण संबंधी विस्तृत उल्लेख वृक्षायुर्वेद में वर्णित है। आयुर्वेदिक संहिता ग्रंथों एवं पुराणों में वन सम्पदा को एक दूसरे का पूरक और सहायक माना गया है। मनुष्य जीवन पर्यन्त स्वास्थ्य की रक्षा, रोगों की चिकित्सा, खाद्य सामग्री, रेशे, लकड़ी, पेट्रोलियम पदार्थ, काष्ठकला, वाद्यसामग्री, कृषिउपकरणों, भवन निर्माण, सेतुनिर्माण, रेल–यातायात आदि विविध रूप में इन वनस्पतियों का उपयोग करता है, आज विज्ञान इन प्राकृतिक ऊर्जा के अन्य स्रोतों की खोज में लगा हुआ है जिसके फलस्वरूप उपयोगी सामग्री इन पौधों से प्राप्त की जा रही है। नवीन उर्जा के स्रोतों की खोज में विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ है ब्राजील कुछ समयपूर्व से अपने वाहनों में गैसोलिन के स्थान पर एलकोहल प्रयोग करने लगा है, वहाँ पर गन्ना और कसावा की खेती बड़े पैमाने पर होती है। इन पौधो के किण्वन द्वारा इथेनोल बनाया जा रहा है जिससे वाहन चलते हैं। गन्ना, चुकन्दर मक्का, ज्वार, गेहूँ एवं समस्त प्रकार के जैव कचरा, (ओर्गेनिकवेस्ट) का उपयोग इथेनोल बनाने में हो सकता है। आस्ट्रेलिया के मैनवाल्ट विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में अनुसन्धान चल रहा है, वहाँ के वैज्ञानिकों का ध्यान यूफोर्वियालेथा, यानि सेहुण्ड नामक पौधे के सदृश हैं जिसके काण्ड से सफेद दूध सदृश तरल निकलता है इस पौधे का हाईड्रोकार्बन अंश कच्चे तेल की तरह होता है। दुनियाँ भर में यूफोर्विया की 6000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन पौधों से ईंधन के अलावा लुब्रिकेन्ट के रूप में तेल बनाया जा सकता है। इसलिये भारत में इस प्रकार नवीन उर्जा के स्रोतों की खोज में इस वन सम्पदा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

का उपयोग किया जा सकता है। अतः प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है कि गांवों, नगरों, स्कूलों, घर, आंगनों में जीवनदायिनी वनस्पतियों को लगाना चाहिये तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से बनों के महत्व के विषय में प्रत्येक नागरिक को जानकारी देनी चाहिये। इन वनस्पतियों का हमारे एवं प्राकृतिक जीवन में विशेष स्थान है। पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण की रोक–थाम के लिए इन उपयोगी वृक्षों की तालिका दी जा रही है।

वनस्पतियों का दैनिक एवं प्राकृतिक उपयोग

दैनिक उपयोग

1. वनस्पतियों द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ जलवायु प्रदान करना।
2. प्रदूषण को रोके रखना, हवा, पानी एवं भूमि के पर्यावरण को संतुलित रखना।
3. जलस्रोतों की प्रचुरता और निरन्तरता को बनाए रखना।
4. भूमि के क्षरण मरुस्थल व बंजर से बचाये रखना।
5. वर्षा एवं ऋतुओं का प्राकृतिक संतुलन बनाये रखना।
6. वन्यजीवों की प्राणरक्षा व वंशवृद्धि को बनाये रखना।
7. वन, उपवन, नदी, तालाब, सरोवर के सुन्दर द्यश्यों को स्थायी रखना।
8. प्रकृति संतुलन को बनाये रखना।

प्राकृतिक उपयोग

1. जीवन के लिए खाद्यान्न फल–शाक और पौष्टिक पदार्थ प्रदान करना।
2. अर्क, मशाले, इत्र व स्वादमय पदार्थ को प्रदान करना।
3. औषधि, विटामिन्स (जीवनीयतत्व) प्रोटीन,
4. कार्बोहाइड्रेट एवं प्राणवायु (आक्सीजन) प्रदान करना।
5. खाद्य तेल, ईंधन सुगंधित तेल, घृत, वसा आदि प्रदान करना।
6. मादक, उत्तेजक, वेदनाशामक पदार्थों को प्रदान करना पूजापाठ–हवन, यज्ञ एवं कृषि के साधनों को प्रदान करना।
7. गृह निर्माण सामग्री व वस्तु–निर्माण के साधनों को प्रदान करना।
8. कुटीर उद्योग सामग्री, पटसन, रेशम आदि वस्तुओं को सुलभ कराना।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपरोक्त विषयों पर पर्यावरण असंतुलन एवं प्रदूषण के कुप्रभावों का अध्ययन तथा उपायों का पता लगाया जाना है।

प्रदूषण की रोक-थाम में उपयोगी वनस्पतियाँ

1. शुद्ध हवा प्रदान करने वाले वृक्ष–

(क) बट, पीपल, नीम, पाकड़, जामुन, मौलसरी एवं पञ्चक्षीरी वृक्ष।

(ख) नीम पत्र, सफेद सरसों एवं साल के गोंद का धूपन देने से वातावरण स्वच्छ होता है।

2. प्रदूषण को रोकने वाले पादप– नीम, फरहद, मौलसरी, कपूर, तुलसी, भरवा, गन्धतृण, सीतावनी, नैरपत्ती, इनके रोपण एवं धूपन से प्रदूषण में लाभ होता है।

3. सर्वौषधि द्रव्य–

(क) जटामांसी, तगर, मुरामांसी, वचा कूठ, गुग्गुलू, सर्ज, चम्पा, नागरमोथा, कर्पूर, तुलसी, आदि।

(ख) पत्तियाँ वायु में मिले प्रदूषण पदार्थों के सूक्ष्मकणों को सोख लेती हैं। इसलिए वृक्षारोपण का महत्व है।

(ग) पत्थर के कोयले से उत्पन्न प्रदूषण को रोकने के लिये जंगल जलेवी नामक वृक्षों का रोपण लाभदायक है।

बाल्मीकीय रामायण में क्षीरसागर से अमृत का अवतरण एवं आरोग्य देवधन्वन्तरिः

संस्कृत साहित्य में बाल्मीकीय रामायण का विशेष महत्व है। प्रस्तुत पुस्तक में वनस्पतियों के विवरंण में बाल्मीकीय रामायण के सन्दर्भ स्थलों का भी उल्लेख किया गया है। वनस्पत्तियाँ हमें आरोग्य प्रदान करती हैं अतः आरोग्यदेव भगवान धन्वन्तरि के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

आयुर्वेद के आराध्य देव भगवान् धन्वन्तरि की कथा सभी धार्मिक ग्रंथों, पुराणों में एक सी मिलती है। कहीं–कहीं कुछ प्रकारान्तर से इसका वर्णन महाभारत, भागवत आदि ग्रंथों में भी उपलब्ध है। बाल्मीकीय रामायण में भी इसका प्रसंग उपलब्ध है। बाल्मीकि ने भगवान् धन्वन्तरि को "आयुर्वेद मय पुरुष" माना है। सभी ग्रंथ इसे एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि भगवान् धन्वन्तरि का अवतरण

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्र–मंथन से हुआ। यह स्वीकार किया जा सकता है कि यह एक रूपक है। क्षीरसागर को मंदराचल पर्वत को मंथनी बनाकर शेषनाग सांप की डोरी पकड़ कर अतुल मेधावी–शक्तिशाली देवताओं तथा दानवों ने मंथन किया और फलस्वरूप चौदह रत्न प्राप्त किए जिनमें एक रत्न थे भगवान् धनवन्तरि और दूसरा था अमृत।

यह मंथन ज्ञान का हो, या क्षीरसागर का कई वर्षों में मंथन के बाद ही चौदह रत्न प्राप्त हुए। भगवान् धन्वन्तरि के उक्त अवतरण की कथा की पुष्टि आयुर्वेद–ग्रंथों ने भी की है। सुश्रुतसंहिता में महाराज श्री दिवोदास धन्वन्तरि ने स्वयं–"अहं हि धन्वन्तरिरादिदेव जरारुजोमृत्युहरोमराणाम्" कहकर अपने आपको पूर्व में समुद्र मंथन द्वारा उत्पन्न हुए उन्हें धन्वन्तरि का अवतार घोषित किया है। धन्वन्तरि के अवतरण की जो कथा महर्षि बाल्मीकि ने महामुनि विश्वामित्र के मुख से कहलाई है उसे हम यहां यथावत् उद्धरित कर रहे हैं।

सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को महामुनि विश्वामित्र ने अपने अन्य साथी मुनियों तथा श्री राम, लक्ष्मण सहित पार किया और उत्तर तट पर पहुंच कर विशाला–नामक पुरी की शोभा देखने लगे। तदनन्तर वे सभी मुनि श्री राम, लक्ष्मण को साथ लेकर उस पुरी की ओर चल पड़े, जो अपनी सुन्दर शोभा में स्वर्ग के समान जान पड़ती थी। इस पुरी के ऐतिहासिक वैभव को जानने के लिए श्री राम ने महामुनि विश्वामित्र से प्रश्न किया। महामुनि ने बताया कि विशालापुरी के वैभव की कथा मैंने स्वयं देवराज इन्द्र के मुख से सुनी है–उसे ठीक उसी रूप में तुम्हें बता रहा हूं।

श्री राम! पहले सत्ययुग में दिती के पुत्र दैत्त्य बड़े बलवान थे और अदिती परम धर्मात्मा पुत्र महाभग देवता भी बड़े शक्तिशाली थे।[1]

पुरुष सिंह उन महामना दैत्त्यों और देवताओं के मन में यह विचार हुआ कि हम कैसे अजर, (जिसे बुढ़ापा नहीं आता) अमर (जिसे मृत्यु नहीं आती) तथा नीरोग (जिसे रोग नहीं सताता) होवें।[2]

---

1. पूर्व कृत युगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः।
अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः।।
2. ततस्तेषां नर–व्याध्र बुद्धिरासीनमहात्मनाम्।
अमरा विजराश्चैव कंथ स्यामो निरामयाः।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस प्रकार चिन्तन करते–करते उन विचारशील देवताओं और दैत्यों की बुद्धि में यह बात आई कि हम लोग यदि क्षीरसागर का मंथन करें तो उसमें से निश्चय ही अमृत प्राप्त कर लेंगे।[3]

समुद्र–मंथन का निश्चय कर उन अमित तेजस्वी देवताओं ने वासुकी नाग को रस्सी और मन्दराचल पर्वत को मंथानी बनाकर क्षीरसागर को मथना प्रारम्भ किया।[4]

तदन्तर (मंथन करते) एक हजार वर्ष बीतने पर रस्सी बने हुए सर्प के बहुसंख्यक मुख अत्यधिक मात्रा में तथा अत्यन्त तेज विष उगलते हुए वहां मन्दराचल की शिलाओं को अपने दोतों से डंसने लगे।[5]

अतः उस समय वहां अग्नि के समान दाहक हलाहल नामक महा भयंकर विष ऊपर को उठा। उसने, देवता, असुर और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत को दग्ध करना आरम्भ किया।[6]

यह देखकर देवता लोग शरणार्थी होकर सब का कल्याण करने वाले महान् देवता पशुपति रुद्र की शरण में गए और त्राहि–त्राहि पुकार कर उनकी सतुति करने लगे।[7]

श्री हरि[8] ने त्रिशूलधारी भगवान रुद्र से मुस्करा कर कहा हे "सुर श्रेष्ठ ! देवताओं के समुद्र मंथन करने पर जो वस्तु सबसे पहले प्राप्त हुई है वह आपका

---

3. तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद् विपश्चिताम्।
   क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै।।
4. ततो निश्चित्य मंथनं योक्त कृत्वा च वासुकिम्।
   मंथानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितोजसः।।
5. अथ वर्ष सहस्रेणा योक्तुं सर्प शिरांसि च।
   वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः।।
6. उत्पाताग्निसंकाषं हालाहलमहाविषम्।
   तेन दग्धं जगत् सर्व सदेवासुरमानुषम्।।
7. अर्थ देव महादेवं शंकरं शरणार्थिनः।
   जग्मुः पशुपति रुद्र त्राहित्राहीति तुष्टुवुः।।
8. एव मुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः।
   प्रादुरासीत् ततोसैव शंखचक्रधरो हरिः।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भाग है; क्योंकि आप सब देवताओं में अग्रगण्य हैं।" प्रभो–अग्रपूजा के रूप में प्राप्त हुए इस विष को आप यहां खड़े होकर ग्रहण कर डालें।[9]

ऐसा कहकर देव शिरोमणि वहां अन्तर्धान हो गए। देवताओं का भय देखकर और भगवान विष्णु की पूर्वोक्त बात सुनकर देवेश्वर भगवान रुद्र ने उस घोर हलाहल विष को अमृत के समान पान कर अपने कण्ठ में धारण कर लिया तथा देवताओं को विदा करके वह अपने स्थान को चले गए।[10]

रघुन्दन। तत्पश्चात् देवता और असुर सब मिलकर क्षीरसागर का मंथन करने लगे। उस समय मंथानी बना हुआ वह उत्तम मदार पर्वत पाताल में घुस गया।[11]

तब देवता और गंधर्व भगवान् मधुसूदन की स्तुति करने लगे– महाबाहो। आप ही सम्पूर्ण प्राणियों की गति हैं। आप हमारी रक्षा करें और इस पर्वत को ऊपर उठावें।[12]

यह सुनकर भगवान ऋषिकेश ने कच्छप का रूप धारण कर लिया और पर्वत को अपनी पीठ पर रखकर वे (श्रीहरि) वहीं समुद्र के भीतर सो गये।[13]

फिर विश्वात्मा पुरुषोत्तम भगवान केशव उस पर्वत शिखर को हाथ से पकड़

---

9. उवाचैनं स्मित कृत्वा रुद्र शूलधरं हरिः।
देवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम्।।
तत् त्वदीयं सुर श्रेष्ठ सुराणामग्रतो हियत्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेद विषं प्रभो।।

10. इत्युक्तवा च सुर श्रेष्ठ स्तत्रैवानतर धीयत।
देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्य तु शार्ङ्गिणः।।
हलाहलं विषं धोर स्तंजग्राहामृतोपमम्।
देवान् विसृज्य देवेशो जगाम भगवान हरः।।

11. ततोदेवसुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन।
प्रविवेशाथ पाताल मन्थानः पर्वतोत्तमः।।

12. ततो देवाः सगंन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्।
त्वंगतिः सर्व भूतानां विशेषेण दिवैकसाम्।
पालयास्मान् महाबाहो गिरिमुद्धर्तु मर्हसि।।

13. इतिश्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रेदधौ हरिः।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर देवताओं के बीच में खड़े होकर स्वयं भी समुद्र–मंथन करने लगे।[14]

तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतने पर उस क्षीरसागर में से एक आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष प्रगट हुए, जिनके एक हाथ में दण्ड और दूसरे में कमण्डल था। उनका नाम धन्वन्तरि था। उनके प्रगट होने के बाद सागर से सुन्दर कान्तिवाली बहुत–सी अप्सराएं प्रगट हुईं।[15]

मनुष्यों में श्रेष्ठ–मंथन करने से ही अप (जल) में उसके रस से सुन्दर स्त्रियां उत्पन्न हुई थीं, इसलिए अप्सरा कहलाईं।[16]

उन सुन्दर कान्तिवाली अप्सराओं की संख्या साठ करोड़ थी, और जो उनकी परिचारिकाएं थीं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। वे सब असंख्य थीं।[17]

उन अप्सराओं को समस्त देवताओं और दानवों में से कोई भी अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण न कर सका, इसीलिए वे साधारण व (सामान्य) मानी जाने लगीं।[18]

रघुनन्दन तदनन्तर वरुण की कन्या वारुणी, जो सुराकी अभिमानिनी देवी थी, प्रगट हुई और अपने को स्वीकार करने वाले पुरुष की खोज करने लगी।[19]

वीर श्री राम दिती के पुत्र दैत्यों ने उस वरुण कन्या को (सुरा को स्वीकार नहीं किया, परन्तु अदिति के पुत्रों ने (देवों ने) उस अनिन्द्य सुन्दरी को ग्रहण कर लिया।[20]

---

14. पर्वताग्रंतु लोकात्मा हस्तेनाक्रमय केशवः।
देवानांम ध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः।।

15. अर्थः वर्ष सहश्रेण आयुर्वेदमयः पुमान्।।
उद तिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः।
पूर्वं ध्नवन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः।।

16. अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्माद् वरस्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुज श्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवत्।।

17. षष्टि–कोटयोऽभवं तासामप्सरणां सुवर्चसाम्।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः।।

18. नतां स्म प्रतिगृहणन्ति एर्वे में देव दानवाः।
अप्रतिग्रहणादेव तावै साधारणः स्मृताः।।

19. वरुणास्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम्।।

20. दितेः पुत्रा ने तां राम जगृहुर्ववरुणात्मजाम्।
अतितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुरा–रहित होने के कारण ही दैत्य "असुर" कहलाए और सुरा–सेवन के कारण ही अदिति के पुत्रों की संज्ञा सुर हुई। वारुणी को ग्रहण करने से देवता लोग हर्ष से उत्फुलिलत एवं आन्द–मग्न हो उठे।[21]

नर–श्रेष्ठ तदनन्तर घोड़ों में उत्तम उच्चै श्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ तथा परम उत्तम अमृत प्रगट हुए।[22]

श्रीराम! उक्त अमृत के लिए देवताओं और असुरों में से कुछ का संहार हुआ। अदिति के पुत्र दिति के पुत्रों के साथ युद्ध करने लगें।[23]

समस्त असुर राक्षसों से मिलकर एक हो गए। वीर देवताओं के साथ उनका महा घोर संग्राम होने लगा, जो तीनों लोकों को मोह में डाल देने वाला था।[24]

जब देवताओं और असुरों का वह सारा समूह क्षीण हो चला, तब महाबली भगवान विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लेकर तुरन्त ही अमृत का अपहरण कर लिया।[25]

जो दैत्य बलपूर्वक अमृत छीन लाने के लिए अविनाशी पुरुषोत्तम भगवान विष्णु के सामने गए, उन्हें प्रभावशाली भगवान विष्णु ने उस समय युद्ध में पीस डाला।[26]

(बालकाण्ड पंच चत्वारिंश सर्ग)

इस प्रकार देवताओं ने भगवान विष्णु की कृपा से अमृत प्राप्त किया और अजर, अमर तथा नीरोग बने। उपरोक्त कथानक का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से निम्न बातें स्पष्ट सामने आती हैं :–

---

21. असुरास्तेन दैतेयः सुरास्तेनादितेः सुताः।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणी ग्रहणात्सुराः।।
22. उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम्।
उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथेवामृतमुत्तमम्।।
23. अथ तस्य कृते राम महानासीद् कुलक्षयः।
अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन्।।
24. एकतामगमन् सर्वे असुरा राक्षसैस्सह।
युद्धमासीन्महाधोरं वीर त्रैलोक्य मोहनम्।।
25. यदाक्षयंगतं सर्वे तदा विष्णु र्महाबलः।
अमृतं सोऽहरत् तूर्णं मायामास्थाय मोहिनीम्।।
26. ये गताभिमुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम्।
सम्पीडयास्ते तदा युद्धें विष्णुना प्रभविष्णुना।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1. क्षीरसागर के मंथन हेतु ऐसे साधन प्राप्त करना था जिससे प्राणी बूढ़ा न हो, मरे नहीं तथा रोगी न हो। ऐसा साधन प्राप्त करने के लिए बुद्धि और बल की आवश्यकता थी, जो दैत्यों तथा देवों दोनों में ही मौजूद थे।

2. लगातार दो हजार वर्ष से अधिक वर्षों तक प्रयास करने के बाद (अनुमानतः तीन हजार वर्षों) आयुर्वेदमय पुरुष धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव हुआ और इसके बाद फिर अनेक वर्षों तक ज्ञानसागर के (क्षीरसागर) मंथन के बाद अमृत मिला। सुदीर्धकाल के प्रयास (अनुसंधान) के फलस्वरूप अमृत मिला।

3. एक हजार वर्ष के मंथन के बाद हलाहल विष प्राप्त हुआ। उसके प्रतिफल भोगने के बाद ही अमृत के दर्शन हुए।

4. हलाहल विष अग्नि के समान दाहक तथा उत्पीड़क होता है और उसका प्रभाव इतना व्यापक होता है कि समस्त त्रैलोक्य विकल हो जाए। परन्तु शैव तत्व उसे अमृत की तरह अंगीकार कर संसार को सुखी बना सकता है।

5. वारुणी या सुरा एक ऐसा जलीय पेय है, जिसके सेवन से मनुष्य उत्फुलिलत और आनन्द–मग्न हो जाता है।

6. मोहिनी माया एक ऐसा अवसादक द्रव्य है, जो बलशाल से बलशाली व्यक्ति पर भी अपना मोहक प्रभाव जमा सकता है।

7. उस समय परिचारिकाओं का अस्तित्व मौजूद था और वे परिचारिकाएं परिचर्या–कला में निपुण होती थीं। वे हर समय अपने लक्ष्य के साथ लगी रहती थीं।

उपरोक्त सभी तथ्य उस समय प्रगट थे। अनुसंधान का कार्य कितना कठिन कार्य है और उसके मार्ग में कितनी बाधाएं उपस्थित होती हैं ये बातें भली प्रकार से उस समय विद्वानों को ज्ञात थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि बाल्मीकि रामायण में आयुर्वेद, सुरा, धन्वन्तरि तथा अमृत का स्पष्ट वर्णन किया गया है, जो ज्ञानोपार्जन की दृष्टि से लाभप्रव है।

अपनी रामायण में बाल्मीकि ने स्थान–स्थान पर अमृत तथा सुधा का नामोल्लेख किया है। साथ ही अमृत रस के अविष्कार की पौराणिक कथा को भी अपने शब्दों में उदधृत् किया है। इससे यह स्पष्ट हो सकता है कि अमृत एक पेय द्रव है। एकं स्थान पर–"देवराज इन्द्र जेसे शची को सुधा पान कराते हैं" ऐसा कह कर उन्होंने इसके पेय गुण को और दृढ़ किया है। कई द्रव्यों की समता करते हुए उन्होंने अमृत को कई बार साथ लिया है जेसे– अमृत के समान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जल। अमृतोपम फल, अमृत के समान मधुर, अमृत के समान पेय, अमृत के समान वाणी, अमृत के समान स्वादिष्ट, अगस्त्य जी का अमृत तुल्य भोजन, अमृत कर्म आदि। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि अमृत एक पेय है जो पानी की तरह निर्मल है– जो वाणी की तरह रुचिकर है, जो मधुर है, जो स्वादिष्ट है तथा दुर्लभ है। एक स्थान पर **अमृत को** चन्दन के समान सुगन्ध वाला भी बताया है। आगे के प्रसंग में "अमृत का अमृत" कह कर अमृत के तत्व की ओर इशारा किया है। इस कथानक में यह भी स्पष्ट किया गया है कि अमृत को बहुत ही गुप्त तथा सुरक्षित रक्खा जाता था, क्योंकि यह अमूल्य हुआ करता था। अमृत रस का पान एक महत्व की चर्चा मानी गई है जो पीने वाले को अजर, अमर कर देती है। इसलिये देवताओं को रामामृण में अमृताशी कहा गया है।

अपने उपरोक्त अमृत मंथन के कथन को समर्थन देते हुए लेखक (मुनि) ने जाम्बावान के मुख से निम्न वाक्य कहलाये हैं।

संमुद्र मंथन के समय देवताओं की आज्ञा से हमने औषधियों का संचय किया था, जिनके द्वारा अमृत को मथ कर निकालना था। उन दिनों हम में महान बली थे।[27]

अपरोक्त अमृत मंथन के दृश्य की उपमा देते हुए महर्षि बाल्मीकि ने कुम्भकरण का युद्ध स्थल में आकर डट जाने का इस प्रकार वर्णन किया है–

अमृत मंथन के समय उसके शेष नाग लिपटा हुआ मंदराचल पर्वत जिस प्रकार दिखता था उसी प्रकार कुम्भकरण दिख रहा था।[28]

उपरोक्त प्रकार के मंथन द्वारा निकाला हुआ अमृत अन्य किसी को प्राप्त हुआ भी या देवताओं के सिवाय किसी को नहीं। इसका उत्तर देते हुए महर्षि स्पष्ट करते हैं–

अश्विनी पुत्रों ने देवताओं की विशाल सेना को मथ कर अमृत पी लिया था, और ब्रह्मा जी की आज्ञा से द्विविद और मन्द नामक बन्दरों ने भी अमृत पिया इसका उल्लेख भी रामायण में मिलता है।[29]

---

27. तथा चोषधयोऽस्माभिः संचिता देव शासनात्।
    निर्मथ्यममृतं याभिस्तदानीं नो महद्बलम्।। (किष्कन्धा 66 सर्गः 1 को 33)
28. अमृतोत्पादने नद्धो भुजगेनेव मन्दरः।। (सुन्दर 23/26)
29. सुराणांममृतं वीर पीतवन्तो महाबली। (सुन्दर 60/3)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ब्रह्मा जी की आज्ञा से उन दोनों ने अमृत पान किया है। रावण ने भी यह इच्छा की कि उसे भी अमृत प्राप्त हो जाय और इसलिये उसने यह प्रण किया था कि मैं अमृत की प्राप्ति के लिए रसनिधि का मंथन करूंगा।[30]

क्षीरसागर से अमृत तथा स्वधा भेजी गई। यह कह कर बाल्मीकि ने क्षीरीरसागर से ही अमृत की उत्पत्ति की पुनः पुष्टि की है।

अमृत के चमत्कारी प्रभाव का उल्लेख करते हुए महर्षि बाल्मीकि ने रोगी के जी उठने का उल्लेख किया है। रामचन्द्र जी सीता के वियोग से दुःखी याने रुग्ण थे हनुमान की वाणी को सुन कर स्वस्थ हो गये।

उपरोक्त कथन में अमृत के जीवन दाता प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख है। उपरोक्त पद्य को समर्थन देते हुए एक पद्य और लिख ागया है जिसमें अमृत के समान प्रभाव वाली दिव्य औषधियों का उल्लेख है।[31]

जीवन का अन्त उपस्थित होने पर यदि रोगी अमृत के समान साधन भूत दिव्य औषधि का स्पर्श कर ले अथवा अमृतोपम द्रव भूत औषधि पी ले तो उसे जीने की आशा हो जाती है।

अमृत के उपरोक्त गुणों से प्रभावित होकर ही गरुड़ देव ने, जो विष चिकित्सा में सिद्ध हस्त थे, इसे चूस लेने का प्रयत्न किया और वे इस कार्य के निमित्त देव लोक में इन्द्र के यहां गये। **(अरण्य)**

आगे चल कर मुनि प्रवर ने अमृत की सुगन्ध की चंदन की सुगन्ध से समानता की है। तथा अमृत और कांजी में अन्तर बताया है यह अन्तर स्वाद और गुण दोनों को लेकर बताया गया है–

परन्तु अमृत पी लेने के बाद भी मृत्यु आ सकती है ऐसे एक अचिन्त्य प्रभाव का उल्लेख करते हुए मुनि ने कहा है–रावण यदि अमृत पान भी कर ले तो भी राम के प्रभावशाली वाणों से अपने प्राणों को नहीं बचा सकता।

(बाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद साभार)

---

30. व्रह्मणासमनु ज्ञाता वऽमृतप्राशिनावुभौ। (युद्ध कांड 28/7)
31. " श्रुत्वा तु मैथिली राम सत्वां शंसित जीवितम्"
जीवितान्तमनु प्राप्ता पीत्वामृतमिवा सुरः।। (उ. 126/40)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1. अक्ष (बिभीतक)

(Terminalia belerica Roxb)

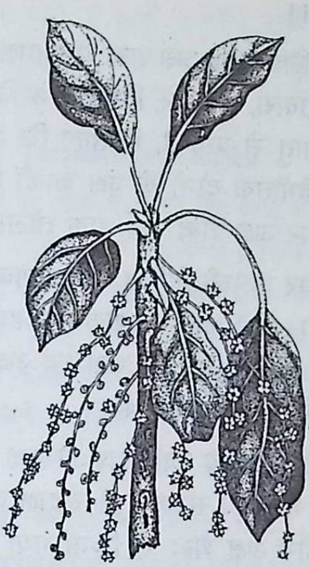

अक्ष (बिभीतक) **Terminalia belerica Roxb**

अक्ष – र.व.स. 11/66, 13/13/43, कुमा.स. 3/46

1. अक्षबीज वलयेन निर्वभों, दक्षिण श्रवणसंस्थितेन यः
क्षत्रियान्त करणैक विंशते ब्याजपूर्व गणनाभिवोद्वहन्।।

र.बं.स. 11-66

इक्कीसवार क्षत्रियों का संहार करने वाले परशुराम रूद्राक्ष के इक्कीस दाने दक्षिणकान में धारण किये हुये शोभित हुये।

2. एषोडक्ष मालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्
स भाजने में भुजमूर्ध्वबाहुः, सव्येतरं प्राध्वमितः, प्रयुङ्क्ते।।

र. 13/46

ऊपर को भुजा उठाये हुए यह तपस्वी रूद्राक्ष की माला के कंकनवाली मृगों की खुजाने वाली और कुश को तोड़ने वाली दाहिनी भुजा मेरे सत्कार निमित्त अनुकूल है, जोकि भगवान रामचन्द्र जी पुष्पक विमान में सवार होकर सीता को पंचवटी, उर्ध्ववाहु एवं शरभंग का आश्रम दिखाते हुये वर्णन करते हैं।

3. भुजंग मोन्नद्धजटाकलापं, कर्णावसक्त द्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासंग विशेषनीलां, कृष्णात्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम्।।

कु.स. 3/46

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भागवान शंकर सर्प से जटाजूटा को बांधे हुये कान में रूद्राक्ष माला को लपेटकर, गले के हालाहल विष की प्रभा से काले दिखने वाले मृगचर्म धारण किये हुये शंकर को देखा।

विमर्श : महाकवि कालिदास के अक्ष शब्द से रूद्राक्ष लिया है जब कि निघण्टु ग्रंथों में अक्ष, कलीद्रुम, भूतवास, कर्षफल, विभीतक आदि नाम बहेडे के लिये दिये हैं। अक्षशब्द अ व्याप्तौ धातु से बना है, जिसका कि अर्थ होता है कि विस्तार से फैलना। रूद्राक्ष एवं विभीतक दोनों के वृक्ष काफी विस्तृत एवं बड़े होते हैं। मानपरिभ़ाषा के आधार पर अक्ष शब्द कर्ष, एक तोला, के लिये आता है।

अमरकोष के टीकाकार भानुजी दिक्षित ने अक्ष शब्द से रूद्राक्ष एवं विभीतक ये दोनों अर्थ किये हैं यथा–अक्षौ ज्ञानात्मः शकटब्यवहारेषु पाशके, रूद्राक्षे रावणै सर्पे, विभीतक तरौ अपि" संहिता ग्रंथों में अक्ष एवं अक्षक शब्द कतिपय स्थलों पर आया है जो कि विभीतक का पर्याप है।

लेखक के विचार से महाकावि कालिदास ने अक्ष शब्द का उपयोग रुद्राक्ष के लिये किया है क्योंकि भारतीय संस्कृति में रूद्राक्ष की विशेष महत्ता है। अतः निम्न दो द्रव्यों का उपयोग अक्ष शब्द से किया गया है–

(अ) अक्ष (रूद्राक्ष) Elaeocarpus ganitrus

(ब) अक्ष (विभीतक) Terminalia belerica

रूद्राक्ष का सामान्य परिचयः Elaeocarpus ganitrus

रूद्राक्ष का मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसके वृक्ष नेपाल, बिहार, बंगाल सिक्किम, आसाम, आदि स्थानों में कहीं–कहीं पाये जाते हैं। नेपाल के पहाडी प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला रूद्राक्ष श्रेष्ठ माना जाता है ऐसी मान्यता रूद्राक्ष के विषय में है। वनस्पति शास्त्र के आधार पर रूद्राक्ष की कतिपय प्रजातियां पाई जाती हैं। पुष्प श्वेत, सुगन्धित, फुल–गोल, अण्डाकार–मांसल एक बीज वाला कठोर होता है। बीजों का प्रयोग रूद्राक्ष के नाम से किया जाता है। इन बीजों से माला, चूड़ियां एवं अन्य अलंकार की चीजें बनाई जाती हैं।

फलमज्जा का उपयोग अपस्मार में किया जाता है। रूद्राक्ष की माला धारण करने से रक्तचाप की वृद्धि नहीं होती है।

विभीतक (बहेड़ा) मध्यम आकार का वृक्ष होता है। भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

2. आयुर्वेद में अक्षः (विभीतक)

आयुर्वेदिक ग्रंथों में विभीतक के पर्यायवाची शब्दों के साथ अक्ष का उल्लेख मिलता है। रथ की धुरी एवं जुये के पासे के लिये मुख्यतः अक्ष शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य में विशेषकर कालिदास ने अक्ष शब्द से रूद्राक्ष को धारण करने के प्रसंग में उल्लेख किया है।

विभीतक (बहेड़ा) के गुणः Terminalia belerica

बहेड़ा कटु, तिक्त, कषैला पाक में मधुर एवं लघु होता है। यह कफनाशक नेत्रों के लिये हितकारी एवं पलित रोग नाशक है। इसके अतिरिक्त बहेड़ा रूधिर विकार, खांसी, क्षय रोग एवं कुष्ठ नाशक है। यह केश–वर्धक–नासारोग, नेत्ररोग एवं कृमिनाशक है। वृक्ष की छाल का काठा श्वित्र (सफेद कोठ) एवं पाण्डुरोग नाशक है। हरड़, बहेडा एवं आंवला इन तीनों फलों को मिलाकर त्रिफला कहते हैं। त्रिफलाचूर्ण नेत्रों के लिये हितकारी एवं उत्तम कब्जहर है। रात्री को सोने से पूर्व गर्मजल या दूध से एक बड़ा चम्मच चूर्ण का प्रयोग करें।

य़था बिभीतक कटुस्तिक्तः स्तुवरोष्णो लघुः सरः।
पाके च मधुरो रूक्षश्चक्षुष्यः केशबृद्धिकृत।।
हिमस्पर्शो भेदकश्च पलितस्वरभंगजित्।
नासारोग रक्तदोष कण्ठरोंगं च नेत्ररुक्।
जन्तूनां कासहृद्रोग नाशको मुनिभिस्मृतः।। "नि. रत्नाकर"

रूद्राक्ष के गुण :

अम्ल, उष्ण, वातनाशक कफविकार नाशक, विशेषरूप से भूतवाधा, ग्रहवाधा एवं हृदय के लिये बलकारी है।

रून्द्राक्ष मम्लमुष्णां च, वातघ्नं कफ नाशनम्।
शिरोर्तिशमनं रूच्ये भूतग्रहः विनाशनम्।। शा.नि.

2. अगुरूः (अगर)
(Aquilariaagallocha Roxb)

अगुरू र.वं.स. 6/8, 8/71, त्रतु. 5/12

1. अथस्तुते बन्द्रिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके।
संचारिते चागुरू सारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयंती।। र.स. 6/8

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महाराजा रघु जब स्तुतिपाठ पूजा में बैठते थे तो चारों तरफ अगुरूसार की सुगन्धित धूप होती रहती थी।

2. अथतस्य कथां चिदकतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।
विसर्ज तदन्त्यमण्डना मनलायाऽगुरूचन्दनधसे।। र.स. 8/71

कवि ने अगुरू एवं चन्दन की सुगन्धमय काष्ठ का उपयोग दाह–संस्कार के लिये भी निर्देश किया है। भारतीय संस्कृति में दाह–संस्कार हेतु चन्दन अगुरू के काष्ठ पवित्र माने जाते हैं।

3. अगुरू सुरभिः धूपामोदितंकेशपाशं
गलित कुसुम मालं तन्वती कुचिताग्रम्।
त्यजति गुरूनितम्बा निम्नमध्यावसाना
उषसि शयनमन्या कामिनी चारुशोभाम्।। ऋतु.स. 5/12

ऋतुसंहार नामक पुस्तक में कवि ने शिशिर ऋतु का वर्णन करते हुये अगरू नामक द्रव्य का उपयोग सुगन्धित धूप के लिये किया है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि अगरू का सारकाष्ठ भी चन्दन सद्यश सुगन्धित होता है।

विमर्श : महाकवि ने अपने काव्यों में अंगुरू एवं कालागुरू इनका उल्लेख किया है। राजनिघण्टुकार ने कृष्णागुरु, काष्ठागुरु, दाहागुरु, मंगल्यागुरु आदि प्रकार भेद से वर्णन किया है। संहिता ग्रंथों में कालागुरु एवं कृष्ण गुरु से अगुरू ही है। भारत में प्राचीन काल से ही,अगुरू का उपयोग सुगन्धित धूप तथा शीतहर प्रलेप एवं सौन्दर्यप्रसाधन में किया जाता है यद्यपि अगुरू उष्ण होने पर भी शीत है। सुगन्धित कृष्णवर्ण का वजन में भारी काष्ठसार वाला अगुरू श्रेष्ठ माना जाता है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर यह Áquilaria Agallocha Roxb है।

अगुरू का परिचय : Aquilaria Agallocha Roxb

इसके वृक्ष आसाम, बंगाल, पूर्वी हिमालय पर्वत खासिया पर्वत, मलयद्वीप, सिल्हट आदि स्थानों में पाया जाता है। यह मध्यम प्रमाण का सदाहरित धारीदार वृक्ष होते हैं। पुष्प श्वेत रंग के गुच्छों में ग्रीष्मकाल में पुष्पित होते हैं। सुश्रुत ने अगुरूकाष्ठ की पूय गन्ध को दुष्ठव्रण के समान एवं यदि पीप आने लग जाय तो मृत्यु सूचक लिखा है। अतः इसकी गंध विशेष प्रकार की होती है। आसाम, बंगाल के लोग काष्ठ सार से सुगंधित तैल (इत्र) और अगरवत्ती बनाते हैं। आजकल बाजार में शुद्ध अगुरू का काष्ठसार नहीं मिलता है। बाल्मिकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड 14/28 17/122, अरण्यकाण्ड 35/22 किष्कन्धाकाण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

33/37, युद्धकाण्ड 2114, सुन्दर काण्ड 9127 धूपन एवं अभिषेक के प्रसंग में अगुरू का उल्लेख है। गुणधर्मों के आधार पर अगुरू वातकफ शामक, शोथहर, वेदना स्थापक, नाडी संस्थान पर उत्तेजक, बल्य, दीपन–पाचन, हृदयोत्तेजक है। चरक ने अगुरू का पाठ श्वासहर एवं शीतप्रशमन महाकषायों में दिया है। अगरू अनेक प्रकार का होता है। उनमें काली सुगन्धित अगर काष्ठ श्रेष्ठ मानी जाती है। यह भारी होने के कारण जल में डूब जाता है। इसे पीसकर जलाने पर सुगन्धि आती है। तेलों के निर्माण में काष्ठ का प्रयोग किया जाता है। यथा–

अगुरूष्ण कटु त्वच्यं, तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम्।
लधु कर्णाक्षीरोगघ्नं, शीत वातकफ प्रणुत्।। **(भा.नि.)**

3. अतिमुक्तकः (माधवीलता)
(Hiptage benghalensis Kurz)

माल.विं. 4/13, 3/5

विसृंज्यक सुन्दरि संगमसाध्वसं
तवचिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे,
परिगृहाप्पगते सहकारतां,
त्वमतिमुक्तलताचरितं मपि।। **(माल.मि. 4/13.)**

जब रोमान्स से भरा हुआ राजा मधुर शब्दों में मालविका से अपनी घवराहट छोड़ने को कहता है और राजा मालविका को विश्वास दिलाता है कि वह उसके प्रेम से इस प्रकार तड़प रहा है जैसे कि माधवीलता आम के वृक्षों पर लिपट कर बढ़ती जाती है; उसी प्रकार राजा मालविका से लिपटना चाहता है।

विमर्श : कवि ने अपने काव्यों में अतिमुक्तक एवं माधवी इन शब्दों का प्रयोग किया है। माधवीलता का ही पर्यायवाची अतिमुक्तक है जो कि लता जाति की वनस्पति है; और आम्र आदि वृक्षों पर आरोहीलता के रूप में फैलती है। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसे Hiptage Benghalensis Kurz कहते हैं। अतिभुक्तक इसको इसलिये कहते हैं कि इसके पुष्प श्वेत होने पर यह मुक्ता को भी अतिक्रान्त करते है।

यथाअतिक्रान्तो मुक्तान् विरक्तान् अतिमुक्तः।

पर्याप : वासन्ती, माधवी, विस्तृत, विवरण देखिये माधवीलता में।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदीय गुण :

चरपरी, कड़वी, कषैली, मदगन्धवाली, पित्त, खांसी, व्रण, दाह एवं शोषनाशक है।

माधवी कटुका तिक्ता, कषया मदगन्धिका।
पित्तकास व्रणान् हन्ति, दाहशोष विनाशिनी।। **(नि.र.)**

4. अपराजिता

(Clitoria ternatea Linn)

अपराजिता : अभि ज्ञान शा.अ. 9–गंद्य, वि.मो. 2/31

1. **ऋणोतु महाभागः-एषा महाप्रभाव अपराजिता नाम सुरमहोषधिरस्य दारकस्य जातकर्म्भ समयके भगवता मारीचेनदत्ता।** **अभि.शा.अ.9-गद्य**

   जातकर्म संस्कार के समय भवान मारीच, ने इसके हाथ में रक्षार्थ बांध दी।

सखि

2. **विस्त्रब्धा भव ननु भगवता देवगुरूणा अपराजितां नाम शिखा बन्धिनी विद्यामुपदिशता त्रिदश प्रतिपक्षस्यालड्ध नीये कृते स्वः।।**

   (विक्र 2-31)

अभी तो देवगुरु भगवान वृहस्पति ने अपराजिता नामक वनस्पत्ति को केशवन्धन हेतु जो विद्या सिरवाई है उसके प्रभाव से राक्षस हमें देख नहीं सकते।

विमर्श : कवि ने अपराजिता नामक वनस्पति का उल्लेख भूतवाधाहर एवं जातकर्म संस्कार के रक्षोध्न द्रव्यों में किया है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में गिरिकर्णिका विष्णुक्रान्ता, आस्फोता, योनिपुष्पा आदि नामों का उल्लेख अपराजिता के लिये मिलता है। शास्त्रीय अपराजिता क्या है एवं उसका लैटिन नाम क्या हो सकता है इसमें कतिपय विद्वानों में मतभेद है। वनस्पति विशेषज्ञ ठा. वलवन्तसिंह जी ने Clitoria ternatea ही शास्त्रीय माना है। श्रीयुत वेद्य वापालाल जी ने Clitoria terfnatea को अपराजिता माना है। पुष्प भेद यह दो प्रकार की होती है। श्वेतअपनराजिता (गिरकर्णिका) इसे विष्णुक्रान्ता एवं सफेद कोयंल भी कहते हैं। दूसरी नील अपराजिता या नीलकोयल भी कहते हैं।

अपराजिता का परियच : Clitoria ternatea Linn

यह बहुवर्षायु चक्रारोही लता जाति की वनस्पति है। पुष्प भेद से यह श्वेत एवं नील दो प्रकार की होती है। इसके काले चपटे बीज औषध में उपयोग होते हैं। पुष्प की रचना स्त्री के मदनांकुर (क्लाइटोरिस) सधश होती है इसी कारण इसका पर्याप योनिपुष्पा भी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में अपराजिता :

गुण धर्मों के आधार पर अपराजिता रस के तिक्त, कषाय, विपाक में कटु एवं शीतवीर्य है। यह त्रिदोषघ्न, शिरोविरेचक, चक्षुष्य, मेध्य, मूत्रजनन एवं श्वास–कास हर है। चरक एवं सुश्रुत ने शिरोविरेचनगणों में अपराजिता का उल्लेख किया है। मूल वेदनास्थापन एवं मूत्रल होता है। दक्षिण के वैद्य इसे शंखपुष्पी मानते हैं। यथा–

श्वेता गोकर्णिका कहवी, शीतातिक्ता च बुद्धिदा।
चक्षुष्या तुवरा चैव, सराविष विनाशिनी।।
त्रिदोषं शीर्षशूलं च, दाहं कुष्ठं च शूलकम् **नि.र.**

5. अरविन्दः
(Nymphaea stellata Willd)

अरविन्द (कमल) **Nymphaea alba Linn**

अरविन्दः र.वं.स. 1/43, 6/13, कुमा.स. 1/32

अरविन्दं पद्मं रक्तकमलम् इति।।

1. सरसीष्वर विन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोद मुप जिन्ध्रन्तौ, स्वनिः श्वासानुकारिणम्। र.वं.स. 1/43

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्थात सरोवर में लहर की झंकोरों से उठी हुई ठंडी कमलों की सुगन्धि को सूंघते हुये महाराजा दिलीप गुरु के आश्रम की ओर बढ़े।

2. कश्चित्कराम्भामुपगूढनाल मालोलपत्रा भिहतद्विरेफम्।
रजोभिरन्तः परिवेषवन्धि, लीलारविन्दं भ्रमयाश्चकारः र.व. 6/13

महारानी इन्दुमती के स्वयम्बर में कतिपय राजा हाथों से पकड़ी हुई नाल वाले पत्तों के हिलने से भोंरों को दूर करने वाले, मध्य में पराग मण्डल बांधते हुये लीला के कमल फिराने लगे।

3. उन्मीलितं तुलिकमेव चित्रं सूर्याशुभिर्भिन्नभिवाऽ रविन्दम्।
बधूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि, वपुर्विभक्तं नवयौवनेन। कुमा. 1/32

नवीन यौवन से लावण्यमय पार्वती का शरीर उज्वलित चित्र के समान सूर्यकिरणों से विकसित कमल के समान पूर्ण शोभायमान हुआ।

विमर्श : महाकवि ने अपने काव्यों में अरविन्द कमल, उत्पल नीलोत्पल, अम्बुज, नलिन सरोरूह, कुमुद, कुवलय, पुष्कर, भिस, मृणाल, पुण्डरीक, आदि शब्दों का उल्लेख सरोवरों में विकसित कमल की सुगन्धि के रूप में एवं उसके श्वेत, रक्त, नील, पुष्प भेदों के संदर्भ में वर्णन किया है। विस्तृत वर्णन देखिये कमल में। संस्कृत साहित्य में कमल का विस्तृत रूप से उल्लेख आया है। यह लक्ष्मी का प्रिय पुष्प माना गया है।

6. अर्क (आंख)

(Calotropis procera (Ait) R.Br.)

अर्क : अभि.शा. 2/19

ललिताप्सरोभवं किलमुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरिशिथिलं च्यूतभिव नवमालिकाकुसुमम्।। अभि.शा. 2/9

शकुन्तला कण्वऋषि के पास इसी प्रकार आ गई है जैसे कि आक के पौधे के ऊपर नवमालिका (वासन्ती) का पुष्प आकर टपक पड़ते हैं। अर्थात शकुन्तला किसी अप्सरा से उत्पन्न हुई कन्या है।

विमर्श : मल्लिनाथ आदि टीकाकारों ने अर्क से मन्दार अर्थ किया है जोकि सन्देहयुक्त है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में अर्क से आंख लिया गया है तथा इस वनस्पति के संदर्भ में कोई विवाद नहीं है। अर्क श्वेत रक्त भेद से दो प्रकार का

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

होता है। टीकाकारों ने किस आधार पर मन्दार अर्क किया है यह विचारणीय है। कतिपय स्थलों पर मंदार से अर्क ही अर्थ लिया गया है।

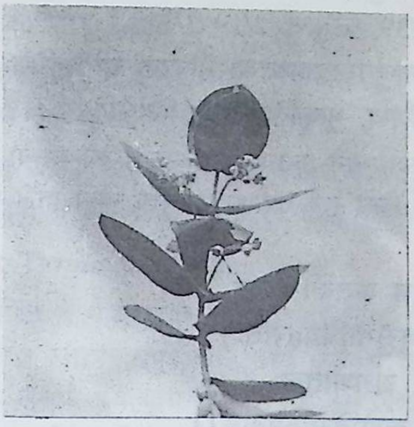

अर्क **Calotropis procera R. Br.**

अर्क का परिचय : Calotropis Procera (Ait) R.Br.

यह भारत वर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उष्ण एवं शुष्क स्थानों में 1200 मीटर की ऊंचाई तक सुलभ है। गुल्म 6 फुट तक लम्बा, पुष्पगुच्छों में रक्ताभ–श्वेत होते हैं। काण्ड दुग्धमय होता है। इसकी एक दूसरी जाति भी कहीं–2 पाई जाती है जिसे कि श्वेतार्क कहते हैं, जोकि हिमालय के निचले भागों में पंजाब से लेकर दक्षिण भारत, आसाम, सिंगापुर आदि स्थानों पर सुलभ है।

आयुर्वेद में अर्क :

पुष्प वृष्य, दीपन–पाचन, एवं कफघ्न होता है। मूल दुग्ध कास–श्वास नाशक एवं कुष्ठ तथा कृमिनाशक है। चरक ने भेदनीय, वमनोपग आदि महाकषायों में अर्क का पाठ दिया है। दुग्ध उत्तम विरेचक है।

रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिन्क्तं कुष्ठकृमिघ्नं कफनाशनञ्च।
अर्शो विषं हन्ति व रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौहितं तत्।
क्षीरं मर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्ध सलवणं लघुः।
कुष्ठगुल्मोदर हरं श्रेष्ठमेतद् विरेचनम्।। **भा.प्र.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में अर्क (आंख) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड 94/61 अर्कपुष्प (पुष्पार्क) के रूप में उल्लेख मिलता है।

7. अर्जुन
(Terminalia arjuna W & A)

अर्जुन : र.व.स. 19/39, ऋतु.सं. 2/19, 3/13

1. **अंसलम्वि कुटजार्जुन स्त्रजस्तस्य नीपरज सांगरागिणः**
प्राबृषि प्रमदवर्हिणष्व, भूत्कृतित्तमाद्रिषु विहारविभ्रमः।। र.व.स. 19/37

वर्षाकाल में लम्वायमान कुटज और अर्जुन की मात्ना धारण किये कदम्ब के पराग से अंगराग किये हुये उसका मदयुक्त भौंरों वाले पर्वतों में विहार को प्राप्त हुआ।

2. **कदम्व सर्जार्जुन केतकी वनम्,**
विकम्प यंस्तत्कुसुमाधिवासितः।
सरीकराम्मोधर संगशीतलः
समीरणः कंन करोतिसोत्सुकम्।। ऋ.स. 2/19

अर्जुन Terminalia arjuna W. & A.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्षाकाल का वर्णन करते हुये कवि ने कदम्ब, सर्ज, अर्जुन आदि वृक्षों के सुगन्धित पुष्पों के द्वारा स्वांग शीतल का वर्णन करते है।

3. मुक्त्वा कदम्ब कुटजार्जुनसर्जनीपान्
सपृच्छदानुपगाता कुसुमोद्गमश्रीः।। **ऋ.सं. 3/13**

कवि ने शरत्काल का वर्णन करते हुये कदम्ब, अर्जुन , कुटज आदि वृक्षों के पुष्पोंद्गम काल की शोभा बताते हैं।

विमर्श : संस्कृत साहित्य में शरत्कालीन में पुष्पित होने वाले वृक्षों में अर्जुन, सपृच्छद सर्ज, कदम्ब एवं कुटज मुख्य हैं।

अर्जुन सर्वविदित प्रसिद्ध वृक्ष है। अमरकोषकार ने ककुभ, पार्थ आदि नाम दिये हैं। साधारण भाषा में इसे कोह कहते हैं जोकि ककुभ का अपभ्रंश है।

अर्जुन का परिचय : Terminalia Arjuna W. & A.

इसके वृक्ष समस्त भारत में पाये जाते हैं विशेषकर हिमालय की तराई में, उ. प्र. मध्यप्रदेश, मध्यभारत, छोटानागपुर के जंगलों में स्वंय जात होते हैं। सड़कों के किनारे इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं। ये वृक्ष विशाल आकार के होते हैं। छाल श्वेताभ कुछ लालिमा लिये हुई होती है। पुष्प पीताभ वर्ण के भज्जरियों में खिलते हैं। गुणधर्म के आधार पर छाल का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है। छाल का प्रधान गुण हृद्य, रक्तस्तम्भक एवं रक्तपित्तशामक है। चरक ने कषायष्कन्ध एवं सुश्रुत ने सालसरादिगण और न्यगोधादिगण के द्रव्यों में अर्जुन का पाठ दिया है। रक्तचाप, (ब्लडप्रेशर) एवं हृदयरोग की यह उत्तम औषधी मानी जाती है। क्षीरपाक विधि से अर्जुन चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। अर्जुन कषैला, उष्ण, मधुर, शीतल, कान्तिकजनक, वलकारक, हलका, व्रणशोधक, अस्थिभंग, अस्थिसंहार, कफ, पित्त श्रमं, तृषा, दाह, प्रमेह, हृदयरोग, पाण्डुरोग, मेदवृद्धि एवं रूधिर विकार नाशक है। यथा–

अर्जुनस्तुवरश्चोष्णो मधुरः शीतलस्मृतः।
कान्तिदो बलकृश्चैव, लघुवर्ण विशोधकः।।
अस्थिभंगास्थिसंहारे हित' कफ विनाशकः।
पित्तश्रम तृषादाह मेह वातविनाशकः।।
हृद्रोगं पाण्डुरोगं, विषवाधां क्षतक्षयम्।
मेदोवृद्धि रक्तदोषं स्वेद श्वासं क्षतं तथा।। **नि.र.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में अर्जुन का उल्लेख अरण्यकाण्ड 60/14 में, राम का प्रश्न, किष्कन्धा काण्ड 1/80 पंपासर के बनों में, किष्कन्धा काण्ड 29/11 में प्रस्त्रवण गिरि पर 29/43 माल्यवान पर्वत पर युद्ध काण्ड के 4/80 मलय पर्वत के जंगलों में 22/56 सेतुनिर्माण कार्य हेतु एवं उत्तरकाण्ड के 42/4 आयोध्या के अशोक उद्यान में अर्जुन का उल्लेख मिलता है।

8. अलक्तक

(Laccifer Lacca)

अलक्तकः कुमा.स. 7/58, विक्रमो. 4/29

1. प्रसाधिका डलम्वितमग्रपाद माक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्कृष्ठ लीलागतिरागवासा दलक्तकांगा पदवीततान।। कुमा.सं. 7/58

शिव–पार्वती के विवाह के समय कतिपय स्त्रियां अपने पांवों में लाक्षारस (लाख) लगा रही थी, इस प्रकार वरात के वाजों की आवाज सुनकर राग लगाने वाले के हाथों से अपने पैरों को खींचकर गवाक्षतक मार्ग में उसने पैरों से महावर के अनेक चिन्ह लगा दिये।

2. पद्भ्यां स्पृशेद्वसुमती यदि रसा सुगात्री
मेधाभि वृष्ठ सिकतासु वनस्थलीषु।
पश्चानता गुरूनितम्व तयो ततोऽस्या
द्यश्येत चारूपद पंक्ति रलक्तकांगा।। विक्रयो 4/29

अर्थात वर्षा से गीली हुई रेतली भूमि में उर्वशी के पावों में लगी हुई मेंहदी (अलक्तक) के रंग से सुन्दर चिन्ह दिखाई देते थे। अर्थात् अलन्तक का प्रयोग उस काल में भी नवयोवनाओं के पादरज्जन हेतु किया जाता था।

विमर्श : कवि ने अलक्तक का उपयोग सुन्दरियों के पावों को रंगने के सन्दर्भ में वर्णन किया है। निघण्टु ग्रन्थों में अलक्तक को लाक्षा का पर्याय दिया है। अलक्तक (लाक्षा) यह वृक्षों की डालियों पर विशिष्ट प्रकार के क्षुद्रकीटों द्वारा लालिमा लिये हुये छोटे–छोटे लार्वा का भाग है। ये कीट वृक्षों का रस चूसकर अपना निर्वाह करते हैं तथा इनसे रालीय (लार्वासद्यश) निकल कर वृक्षों पर जमा करते हैं। यही अलक्तक है। यह शरीर को उज्वल करने में उपयोगी एवं शीतल और वलकारका होता है। विस्तृत वर्णन देखिये लाक्षा में। लाख शरीर के वर्ण को उज्वल करने वाली शीतल, बलकारक कष्पायरसयुक्त और लघु होती है। यह रक्त पित्त, हिचकी, कास, ज्वर कृमि एवं कुष्ठ रोग नाशक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

9. अम्भोजः (कमल)

(Nymphaea alba Linn)

हेमाम्भोज प्रसवि सलितं मानसस्पाददानः
कुर्वन कामंक्षणमुखपटप्रीतिभैरावतस्य।
धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीववातैः
नाना चैष्ठै र्जलद ललिते निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।। पूर्व.मेघ. 66

यक्ष मेघ से कहता है कि कैलाश में जाते समय प्यास लगने पर मानसरोवर का जलपीना वे सरोवर सुनहरे वर्ण के कमलों को पैदा करने वाले हैं, अतः तुम्हें भी आनन्ददायक सिद्ध होगा। अर्थात् कवि ने मानसरोवर में कमल पुष्प खिलते हैं ऐसी मान्यता का उल्लेख किया है।

अम्भोज (कमल)

विमर्श : मानसरोवर में सुनहरे रंग के कमल पाये जाते हैं ऐसी कवियों की कल्पना है। श्री स्वेन हे दिन ने अपने ग्रन्थ "ए नाइट ओन मानसरोवर" में लिखते हैं कि सुवर्ण वर्ण के कमलों के द्यश्य एकाधवार प्रातः काल की वेला में दिखाई देते हैं। महाभारत वनपर्व में भी कुवेर ने भीसुंवर्ण कमलों की सत्ता बताई है। एवं मानसरोवर ही कुवेर का सरोवर प्रतीत होता है जोकि गन्धमादन पर्वत पर स्थित हो सकता है। अम्भोज कमल का पर्यायवाची शब्द है। अम्भोरुह शब्द का प्रयोग कमल के लिये महाकवि ने कुछ स्थानों पर किया है। सम्भवतः यह कमल के प्रकार भेदों से भिन्न हो सकता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

10. अरणि (अग्निमन्थः)
(Premna latifolia Roxb)

अग्निमन्थ (अरणी) PremnaLatifoliaRoxb

अरणि : कुमा.स. 6/28

1. अतआहतु भिच्छामि पावर्ततीमात्मजन्भने।
उत्पत्तये हविर्भेक्तुर्यजमान इवारणिम्।। **कु.स.6/28**

देवों की प्रार्थना के कारण जिस प्रकार यजमान आग पैदा करने के लिये अरणी काष्ठ की इच्छा प्रगट करता है, उसी भांति पार्वती पुत्र उत्पन्नं करने की इच्छा व्यक्त करती है।

विमर्श : भारतीय संस्कृति में अरणिकाष्ठ की विशेष महत्ता है क्योंकि बड़े–2 महायज्ञों में अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये इस काष्ठ का उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद में अग्निमन्थ (अरणि) नामक, द्रव्य का उल्लेख दशमूलगण की औषधियों में मिलता है, तथा यह उत्तम वातशामक औषधि मानी गई है। निघण्टु एवं संहिताग्रन्थों में अरिणिद्वय शब्द पाठ है जिसे कि विद्वानों ने लघु एवं बृहत् भेद दो प्रकार का माना है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अरणि का परिचय : Premna Latifolia Roxb

यह समस्त भारतवर्ष में, विशेषतः हिमालय की तराई के प्रदेश बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश एवं कर्नाटक के शुष्क स्थानों पर सुलभ है। इसके मध्यम आकार के झाड़ीदार गुल्म होते हैं। पर्ण दुर्गन्ध युक्त होते हैं। पुष्प श्वेताभ सुगन्धित होते हैं। निघण्टु ग्रंथों में अग्निमन्थ, तर्कारी, गणिकारिका, वैजयन्ती अरणी आदि नाम मिलते हैं। तर्कारीद्वय से. अग्निमन्थ वं लघु अगि**न्मन्थ** से दो प्रकार का माना है जिन्हें कि वृ. अग्निमन्थ एवं लघु अग्निमन्थ कहते है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

गुण धर्मो के आधार पर यह कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, वेदनास्थापन, शोथहर, दीपन–पाचन, प्रेमहध्न एवं रक्तशोधक है। चरक ने अनुवासनोपग, शोथहर एवं शीतप्रशमन कषायों में इसका पाठ दिया है। गंडमाला तथा शोथ में उपयोग करते हैं। वसामेह तथा इक्षुमेह में जड़ का क्वाथ पिलाया जाता है। इसका प्रयोग धातुरोग, आमवात, पाण्डु एवं ज्वर में किया जाता है। वृहत्पंचमूल में अग्निमन्थ का उल्लेख है। यथा–

अग्निमन्थो बृहत्प्रोक्तः कटुश्चोष्णो मधुः स्मृतः।
तिक्तस्तु तुवरश्चाग्निदीपको वातनाशनः।।
प्रतिश्यायं कफं शोथ मर्शश्चैवामवातकम्।
मलरोध चाग्निमन्थं पाण्डुरोगं विषं तथा।
आम च मेदोरोगं नाशयेदितिकीर्तितम्।। **नि.र.**

मुख्य योग : दशमूलारिष्ट, दशमूलतेल, दशमूलअर्क, चयवनप्राश आदि।

बाल्मीकीय रामायण में अग्निमन्थः (अरणी) अयोध्याकाण्ड के 30/23 में अग्नि उत्पन्न करने के लिये युद्ध काण्ड 111/116 रावण की चिता जलाने के प्रसंग में एवं उत्तरकाण्ड 57/18 में उल्लेख आया है।

11. अशोक

(Saraca indica Linn)

अशोक : उत.मेघ.–18, रघु.प.स. 8/62, 63, 9/28, 13/32

कुमा.सं. 3/26, 53, विक्रमो. 2/222, 4/90

ऋतु.सं. 6/516, माल.मि. 3¢25, 12, 175

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

1. **रक्ताशोक श्चलकिसलयः केसर श्चात्रकान्तः**
प्रंत्यासत्नौ कुरूवंकवृते माधवीर्मण्डपस्य।
एकः ख्यात स्तवसह मया वामपादाभिलाषि,
कांइक्षत्यन्यों वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्या।। **उत्त.मे. 18**

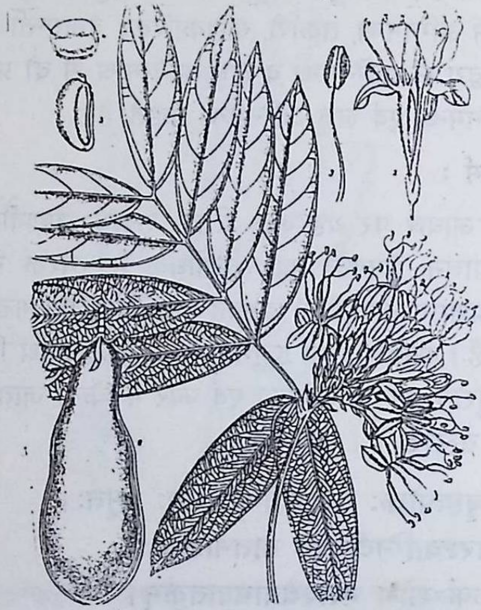

अशोक **Saraca indica, Linn**

वहां माधवी कुंज के समीप लालरंग के अशोक एवं केसर के पेड़ हैं तथा ये अशोक मेघ तुमारी भावी के वायें पैरे के ताड़न के लिये उत्सुक रहते हैं। केसर स्त्रियों के मुख्य मदिरा के लिये उत्सुक रहते हैं। कवि ने दोहद् वृक्षों में अशोक का उल्लेख किया है। अशोक दो प्रकार का होता है ऐसा कवि मानता है एक रक्त अशोक और दूसरा सफेद पुष्प वाला रक्ताशोक को कामोदीपक माना गया है।

कुसुमं कृत दोहदसत्वया यदशोकोऽयमुदीरयष्यति।
अलका भरणं कथं नु तत्तवः नेष्यामि निवापमाल्यताम्।।

रघु.वं.स. 8/62

अर्थात् सुन्दरियों के वायें पैर से ताड़ित अशोक वृक्ष जिसका पुष्प कामोद्दीपक है, उसको सुन्दरियों से अलग कैसे रखा जा सकता है।

अमुना कुसुमाश्रुवर्षिण त्वमशोकेन सुगात्रिशोच्यसे।।

रघु.व.स. 8/63

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि कि कल्पना है कि अशोक वृक्ष सुन्दरियों को यदि दुख में मग्न देखता है तो वह शोक भय से पुष्पित नहीं होता।

कुसुममेव ने केवलमार्तव मवशोकतरोस्मरदीपनम्। **रघु.स. 9/28**

कवि का कहना है कि वसन्त ऋतु में विकसित अशोक पुष्प केवल कामोद्दीपक ही नहीं बल्कि स्त्रियों के मद की मादकता को भी बढाने वाला भी है।

इमां तटाशोकलतां व तन्वी, स्तनाभिरामस्तबकामि नम्राम्।

रघु.वं.स. 9/32

कवि ने अशोक पुष्पों के गुच्छों को सुन्दरियों के स्तनकुचों के सद्यश मनोहर माना है यही कारण है कि काव्यकारों ने अशोकलता शब्द का प्रयोग किया है।

असूतसद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रमृत्येव सपत्लवानी।
पादेन नापेत सुन्दरीणां, सम्पर्क मासिज्जितनूपरेण।। **कुमा.स. 3/36**

कवि वसन्तऋतु की उपादेयता को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि वसन्तऋतु आने पर अशोक सुन्दरियों के पादाद्यात की अपेक्षा न करते हुये पुष्पित हो गया है।

अशोक निर्मार्त्सितपम्द रागं माकृष्ठहेमद्युत्तिकर्णिकारम्"

कुमा.सं. 3/56

वसन्तऋतु में अशोक पुष्प पद्मराग मणी सद्यश रक्तवर्ण के खिले हुये हैं।

अग्रेस्त्री नखपाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागियोः।
वालाशोक मुपौठरागसुभंग भेदोन्मुखंतिष्ठति।। **विक्र.मो. 2/22**

यह छोटा अशोक जोकि अभीखिलने वाला है, वह अपनी लालिमा से मनो हरदीखता है। अर्थात अशोक का पुष्प इतना लाल होता है कि जो कि विकसित्त होने पूर्व ही लाल–लाल दिखता है।

अरे रक्ताशोकस्तवक्समकरोगोमणिरयं,
यमुब्दर्त्तु पूसा व्यवसित दूवालम्पितकर। **विक्र. 4/90**

कवि ने अशोक के पुष्पों को पद्मरागमणी सद्यश रक्त माना है जिसको कि उठाने के लिये मानो सूर्य अपने किरण करूपी हाथों को फैलाये हुये है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्णेषु योग्यं नवकार्णिकारम्।
चलेषु नीलेष्वलकेश्यशोकम्।
पुष्पं च फुल्लं नव मल्लिकायाः
प्रयाति कान्ति प्रमदाजनानाम्।। **ऋतु.स. 6/5**
कुर्वन्त्यशोका हृदयं स शोकं,
निरीक्ष्यमाणा नवयौवनानाम्।। **ऋतु. 6/16**

वसन्तऋतु आने पर सुन्दरियां कर्णिकार (अमलतास) पुष्प कानों में लटकाई हुई हैं तथा केशों पर अशोक पुष्प लगाये हुये शोभायमान होती हैं।

रक्ताशोक रूचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तक।
प्रत्याख्यात विशेषकं कुरवकं श्यामावदातारूणः।। **माल.वि. 3/5**

अशोक पुष्प ने युवतियों के मुख श्रृंगार को भी नीचा दिखा दिया है। कवि की कल्पना है कि अशोक वृक्ष के रक्तपुष्पों की छटा से नीचा कर दिया है। प्राचीन समय में भी मुखप्रसाधन हेतु स्त्रियां हर्वललिपिस्टिक एवं पौडर आदि का प्रयोग मुख की सुन्दरता की बढाने के लिये करती थीं ऐसा उल्लेख कवि ने किया है।

अकुसुमितमशोकं दोहदा पेक्षया वा,
प्रणमित शिरसं वा कान्तमाद्रापराधम्।। **माल.वि. 3/12**
तपनीयाशोकस्य दोहद निमित्तं देव्यैविज्ञापयामि।। **माल.वि.3**

कालिदास ने अशोक, वकुल आदि वृक्षों में गर्भिणियों के समान ही दोहद् की स्थिति बताई है। जब तक इन वृक्षों की इच्छा पूर्ण न हो तब तक उनमें फूल नहीं खिलते हैं। यथा पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः। अर्थात् दोहद वृक्ष स्त्रियों के पादताड़न पर पुष्पित हो जाता है, जिसकी विस्तृत व्याख्या मालविकागिन्मित्रम् के तृतीय अंक में मालविका और अग्निमित्रा की वार्तालाप मुख्य है।

संस्कृत साहित्य में रक्त एवं श्वेत पुष्प भेद से दो प्रकार के अशोक वृक्ष का उल्लेख मिलता है। परन्तु एक दो स्थलों को छोड़कर रक्तपुष्प अशोक का विशेष उन्ल्लेख मिलता है। गर्मिणिकायों की तरह अशोक भी दोहद् वृक्षों में से है। यह तभी पुष्पित होता है जब स्त्रियो पादताडन करती हैं जो कि दोहद् सूचक है।

अशोक की काव्यकलात्मक मान्यतायें

संस्कृत एवं हिन्दीं काव्यों ने अशोक का समावेश दोहद् वृक्षों में किया है, जो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कि अपने प्रसव समृद्धि, उद्दीपनार्थ एवं कामांगनाओं के पादाघात से अशोक पुष्पित होने की अपेक्षा करता है। महाकवि ने दोहद् वृक्षों के साथ अशोक का सुन्दररूप से चित्रण किया है। इन प्रसंगों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्राचीनों को वनस्पतियों की संजीव सृष्टी (वायलोजिकल किंगडम) का भली–भांति ज्ञान था। जीवों की भांति वनस्पतियों में भी गीत, वाद्य तथा अन्य उद्दीपक वातावरण एवं स्नेहमय .क्रिया कलापों की प्रतिक्रिया होती रहती है। अशोक वृक्ष के लिये काव्यकारों ने अशोकलता, अशोकविटपी आदि भाव व्यज्जक शब्दों का उल्लेख किया है। अशोक (अर्थात शोक को दूर करने वाला भाव अभिव्यक्त करता है। कङ्के ल्लिवल्लरी शब्द से वाटिका में सघन छायादार एवं सुशोभित पुष्पवाला अशोक की महत्ता को व्यक्त करता है इसी कारण सीता को अशोक वाटिका प्रिय थी। ऐसा अभिभाव है। सुन्दरियों के कर्णाभरण भूषण हेतु अशोक पुष्प का उपयोग करना आदि सन्दर्भ काव्यों में उपलब्ध है। आज भी सोने–चांदी के काम के आभूषणों का स्वरूप अशोक पुष्प से मिलता है। यह कवि ने रक्ताशोक एवं नीलाशोक का उल्लेख कतिपय प्रसंगों में किया है। वास्तव में रक्ताशोक ही नीलाशोक है। कवि की कल्पना नीलाशोक से सघनहरित वृक्ष की छाया से अभिप्रेत है।

अशोक इन्डोमलायन वनस्पति मण्डल का अनुपम प्रेमी वृक्ष है। प्राकृतिक रूप से यह वृक्ष बंगाल, आसाम, हिमालय की तराई, चम्पारन, सिंहभूमि, मालावार, पश्चमि पठार, कोंकण–कनाड़ के सदाहरित जंगलों, वाटिकाओं, देवालयों में आरोपित पाया जाता है। लंका के वनों, वाटिकाओं में अशोक के वृक्ष स्वयं पाये जाते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में महिलाजगत प्रजनविकार सम्बंधी रोगों रक्तप्रदर श्वेतप्रदर में बहुतायद से अशोकारिष्ठ, अशोकचूर्ण का उपयोग किया जाता है। मुख्ययोग–

अशोकारिष्ठ (स्त्री रोगाधिकार)

अशोक चूर्ण (रक्तप्रदर–श्वेतप्रदर)

अशोक (रक्तप्रदर–श्वेतप्रदर)

अशोक का सामान्य परिचय Saraca indica Linn :

यह सदाहरित मध्यम आकार का वृक्ष है पर्ण आम्र पत्र सद्यश, मसृण एवं लम्बाग्र होते हैं पुष्प सघन गुच्छों में नारंगी–रक्तवर्ण के होते हैं। इसीलिए डल्हण ने इसे लोहितकुसुमः स्वनाम ख्यातः यह अर्थ किया है। यह मध्य पूर्वी हिमालय एवं दक्षिण भारत में पाया जाता है। उत्तरी भारत में यह प्रायः बगीचों में लगाया हुआ मिलता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। असली अशोक का उपयोग रक्तप्रदर एवं गर्भाशय के विकारों में किया जाता है। यह स्त्रियों के शोकनाशक है। इसीलिये इसे अशोक कहते हैं। चरक ने वेदना–स्थापन एवं कषायष्कन्ध में अशोक का पाठ दिया है। सुश्रुत ने लोध्रादिगण में अशोक पाठ दिया है। सर्वप्रथम अशोक छाल का उपयोग रक्तप्रदर में वृन्द ने किया है। आजकल बाजार में Saraca Indica के स्थान पर Polyacltha Longifo lia, एवं शाल नामक वृक्ष की छाल का उपयोग अशोक छाल के नाम से किया जा रहा है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

अशोक : शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यकषायकः
दोषापची तृषादाह कृमिशोष विषास्त्रजित्।।
अशोकस्य त्वचा रक्तप्रद्ररस्य विनाशिनी।। शो.नि.

अशोक शीतल, तिक्त, ग्राही, गर्भाशयशोधक, योनिदोष एवं रक्तप्रदर में उपयोगी है।

बाल्मीकीय रामायण में अशोक अरण्यकाण्ड 15/17 पंचवटी में 42/61 दण्डकारण्य में 60/17 वियोगी श्रीराम के प्रश्नकाल में पुष्पिताशोक संकास 11 पंपासर के पास, तुंगभद्रानदी के किनारे, सुन्दरकाण्ड 10/4 लंका में मन्दोदरी के अशोक पुष्पों की माला के रूप में लंका के अशोक वन के सीता जी के प्रसंग में अशोकवाटिका एवं अशोक वनिका के रूप में उल्लेख मिलता है।

12. असिपत्रवृक्ष

असिपत्र : रघ.वं. 14/48,

सानीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्, पियङ्करोमे प्रिय इत्यनन्दत्त्।
नाबुद्ध कल्षद्रुमतां विहाय, जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्।।

रघु.व. 14-48

कवि का कहना है की मनोकामनका को पूंर्ण करने कल्पवृक्ष को छोड़कर नारकीय असिपत्र वृक्ष को प्राप्त करता हुआ दुख भोगता है। मल्लीनाथ ने अपनी टीका में असिपत्र का अर्थ निम्न प्रकार से किया है यथा

''असिपत्र वृक्षः खड्गाकार दलो-
नारकोनाम कोऽप्यपूबों वृर्क्षविशेषः,
असिपत्रों भवेत्कोषाकारे च नरकान्तरे इति विश्वः'' मल्लीनाथ टीका।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तलवारपत्र सद्यश कोई वृक्ष विशेष है जो कि महान दुखदायी होता है।

विमर्शः

लेखक के विचार से इस संदर्भ में स्पष्ट रूप में कुछ कहा नहीं जा सकता। विद्वानों को इस विषय में विचार करना चाहिये। यह शोध का विषय है।

13. आम्र
(Mangifera indica Linn)

आम्र (आम) **Mangifera Indica**

आम्र :– पूर्व. मेघ– 19, 18 अभिज्ञान 1–22, मालवि. 3/4, 4/2, रघु. 13/34, 19/43, 11/43, कुमा.स. 1/29, 2/64, 3/32, विक्रमों. 2/22 ऋतु. 6/1, 3

त्वामासार प्रशमितवनो पप्लवं साधु मूर्ध्ना,
वक्ष्यत्वत्पध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः **पूर्व.में 19**
अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटः **पूर्व में मल्लीनाथ''**
छत्रोपान्तः परिणतफल द्यातिभिःकाननाम्रैः।। **पूर्व में. 18**

आम्रकूट विल्सन मतानुसार अमरकण्टक है। यह विन्ध्य का पूर्वभाग है, यहां पर आम अधिक होते हैं। यक्ष मेघ से कहता है कि आम्रकूट में पके हुये आमों से वह स्थान सुनहरी मालुम पडेगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सख्यौ..... किमपिब्याहरतीव मां चूतवृक्षं तपिद्यावेदन सम्भाव
यामि अभि.शा.अ.।

मुग्धे भ्रमर सवाध इतिवसन्तावतार सर्वस्वभूत किंन आम्र प्रसवोऽवतंसनीयः **''माल.वि.अ. 3''**

कवि का कहना है कि वसन्त ऋतु के आने पर विकसित आम्रमञ्जरियाँ सुयोवना स्त्री क्यों न कानों में पहने चाहे पीछे से भ्रमरक आ रहे हों।

अग्डेचाम्रः प्रसव सुरभिर्दक्षिणों मारूतों में,
सान्द्रस्पर्शः करतलइव व्यापृतो मानवेन।। **माल.3/4,**

अर्थात् वसन्त ऋतु के आने पर आमों की वौरों से चारों दिशायें सुगन्धित हो रही हैं ऐसे सुहावने वसन्त ऋतु में कामवेदना अधिक बढ़ती है।

मधुरवा परभृतिका भ्रमरी च, प्रफुल्लिताम्रसंगिन्यौ।। माल.वि. 4/2

मञ्जरियों से विकसित आम्रवृक्ष पर बैठी भ्रमरी को वर्षा की परवाह न करते हुये मञ्जरियों के प्रेम में आसक्त होने के कारण स्वयं पेड़ के खोले में बन्द हो गये।

एसात्वया शेषलमध्ययावापि घटाम्बु सम्बर्धित वालचूताः।।
रघु.स. 13/34

दक्षिणेन यवनेन सम्भृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम्।।
रघ.व. 19/43

अर्थात् स्त्रियों ने आम की सुगन्धित मञ्जरियों को देखकर विरोध छोड़ दिया।

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हिचूते द्विरेफमाला सविशेष सङ्गा। **कुमा. 1-29**

वसन्त ऋतु में नाना प्रकार के पुष्पों के पुष्पित होने पर भी भ्रमर आम्रमञ्जरियों पर दिखाई देते हैं।

सहचरमधुहस्त न्यस्तचूताङ्ग रास्त्रः।। **कुमा.2/64,**
चूताङ्कुरास्वाद कषाय कण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूच।।
कु. 3/32

वसन्तु ऋतु में आम्र मञ्जरियों की विशेषता कवि ने व्यक्त की है।

ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवामञ्जरी,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्वे मधुश्रीः स्थिता।।विक्र. 2/22

वसन्त ऋतु आने पर आम की मज्जरियां उग रही हैं, जिनमें पराग कण जमा होने लगा है।

प्रफुल्ल चूताङ्कुर तीक्ष्णसायको,
द्विरेफमाला विलसद्‌घ नुर्गुणः।। **ऋतु. 6/11**
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां, ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः ऋतु 6/3

कवि ने आम्रमज्जरियों का उद्‌गम वसन्त का महान् सूचक माना है।

विमर्श :

संस्कृत साहित्य में आम्र, रसाल, चूत, सहकार, माधवद्रुम आदि पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख आया है यथा–

आम्र कामशरः चूत रसाल कामवल्लभः।
वामाङ्ग सहकारश्च, कीरेष्ठो माधव द्रुमः।।

कालिदास ने अपने काव्यों के कतिपय स्थलों पर विशेष कर वसन्त ऋतु में पुष्पित वृक्षों के साथ आम्र का वर्णन किया है। यह सर्वप्रसिद्ध वृक्ष है यही कारण है कि कवि ने कतिपय स्थलों पर आम्रलता का भी उल्लेख किया है। देखिये सहकारः। यहां पर आम्र एवं चूत के संदर्भ स्थलों का एक साथ वर्णन किया गया है।

आम्र का परिचय : Mangifera indiaca Linn

यह उष्ण प्रदेशों में उपलब्ध प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके बडे–बड़े सदाहरित वृक्ष होते हैं। पर्ण–अभिलद्वाकार–भालाकार, पुष्प–सुगन्धित, मज्जरियों में एवं गुच्छों में खिलते हैं। खिलने पर इन पुष्पों की विशेष प्रकार की सुगन्धी होती है। वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाला यह प्रसिद्ध वृक्ष है। यही कारण है कि वसन्तोत्सव में आम्रवृक्ष की प्रधानता मानी गई है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

अंशुघात वा लू लगने पर आम कें पन्ने का वाहय आम्यन्तरिक प्रयोग बहुत उपयोगी होता है। आम के फलों का आम्र पानक एवं मुरब्बा भी अच्छा माना जाता है। कल्प चिकित्सा में आम्र कल्प बहुत उपयोगी माना गया है। चिकित्सा में आजकल, आम्रबीज (गुढली) एव पत्तों का उपयोग मधुमेह में किया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आम के कच्चे फल कषाय अम्लरस युक्त, रूचिकारक एवं बात एवं पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है। प्रौढ आम का कच्चा फल अत्यन्त अम्लरसयुक्त, रूक्ष एवं रक्त विकार को उत्पन्न करने वाला होता है। अमूचर–अम्ल कषाय रसयुक्त स्वादिष्ट होता है। मलभेदक एवं कफ–बातनाशक है। पका आम मधुर, वीर्यवर्धक वलकारक, गुरू, बातनाशक, शुक्र को बढाने वाला होता है। वृक्ष पर पका हुआ आम मधुर एवं वातनाशक होता है। निचोड़ कर आम का रस वलकारक, बातनाशक बृंहण, रसरक्तबर्धक, सन्तर्पण करने वाला एवं हृदय के लिये अहितकर माना गया है। दूध के साथ आम का सेवन स्वादिष्ट बातपित्तनाशक, रोचक, बृहण, बलबर्धक बृष्य, गुरू एवं शीतल होता है। आम के अधिक सेबन से जठराग्नि की मन्दता एवं रक्तसम्बंधी रोग होते हैं। आम की गुठली कषाय, रसयुक्त अतिसार मधुमेह एवं हृदय के दाह को दूर करने वाला होता है।

पक्व आम्र फल :

पक्व तुमधुरं बृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम्।
गुरू बातहरं हृद्यं, वर्ण्यं शीतमपित्तलम्।।
कषायानुरसंबह्नि, श्लेष्म शुक्रबिबर्धनम्। **भा.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में आम्र बालकाण्ड के अध्याय 5/22 अयोध्यापुरी के प्रसंग में 35/16 आम काटकर नीम बोना एवं आम काटकर पलाश बोना उदाहरण के रूप में तथा चित्रकूट के प्रसंग में आम्र का उल्लेख है।

14. इक्षु (गन्ना)

(Saccharum officinarum Linn)

इक्षु :– रघु बं.स. 4/20, ऋतु.सं. 5/16

1. इक्षुच्छायानिषादिन्य स्तस्यगोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुभार कथोद्घातं शालिगोप्योजगुर्यशः।। **रघु.बं. 4/20**

महाराजा रघु ईख की छाया में बैठी हुई श्वेत की रक्षा करने वाली स्त्रियों का भी विशेष ध्यान रखते थे।

2. प्रचुर गुडविकारः स्वादुशाली क्षुरम्य,
प्रबल सुरतकेलि र्जातकंदर्ष दर्पः।
प्रियजन रहितानां चित्तसंत्ताप हेतुः,
शिशिर समय एषं श्रेयले बोऽस्तु नित्यम्।। **ऋतु.स. 5/16.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि शिशिर ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ईख के रस द्वारा बनाये हुये चाबल स्वाद में बहुत सुन्दर होते हैं।

निघण्टु ग्रंथों में इक्षु के पांच भेद माने गये हैं जोकि आकृति एवं स्वाद भेद से भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। यथा–

इक्षवः पञ्चधाप्रोक्ता, नानावर्ण गुणान्विता।
सित पुण्ड्र करङ्केक्षुः कृष्णोरक्तश्च ते क्रमात्।। **रा.नि.**

इक्षु का परिचय : Saccharum officinarum Linn.

भारत के उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में प्रायः खेती की जाती है। इसके रस से बने गुड, खांड, मिश्री, चीनी आदि सर्वत्र सुलभ हैं। यह शरजाति का क्षुप है। इसका काण्ड मीठे रस से भरे होते हैं। ईख के अनेकों जातियां तथा भेद पाये जाते हैं। जिसमें ईख, गन्ना, और पौंड़ा कहते हैं।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

इक्षु–गुरु, स्निग्ध मधुर, सारक, हृद्य, मूत्रल, वल्य एवं स्तन्यजन्न होता है। आसव, अरिष्ट–शर्बत, अवलेह एवं पाकों में इसका उपयोग किया जाता है। श्वेत, कृष्णु एवं रक्त भेद से तीन प्रकार का होता है। इसके अतिरिक्त पौड्रक भी–रुक, बंशक, शतपोरक, कान्तार, सूचीपत्र, नेपाल, दीर्घपत्र, नीलपोडू एवं कोशकृत आदि ईख की जातियों का उल्लेख आयुर्वेद में है। **यथा–**

इक्षवो रक्तषि तत्ध्ना वल्या वृष्याः कफः प्रदाः।
विषाके मधुरास्निग्धा, गुरवो मूत्रलाहिमाः।। **शा.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में इक्षु (ईख) अयोध्याकाण्ड 91/56 भारद्वाज आश्रम में इक्षु का उल्लेख आया है।

15. इंगुदी

(Balanites aegypteiaca Linn)

इंगुदीः– अभिज्ञान 1/14, 4/16, रघु वं. 114/281

1. **नीवाराः शुककोटार्भक-मुखभ्रष्ठास्तरूणामधः,**
प्रस्निग्धा क्वचिदिङ्गु दिफलभिदः सूच्वन्त एवोपलाः।। **अभि 21/14,**
मा कस्यापि तपस्विन इंङ्गुदीतैल चिक्कण शीर्षस्य हस्तं पतिष्यति
अभि.शा. 2

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

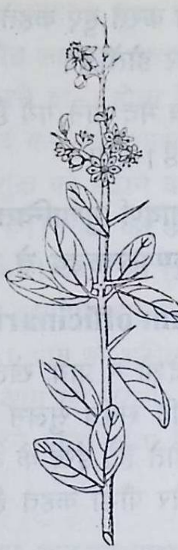

इंगुदी Balanitis aegypteiaca Linn.

आश्रम में स्थित मुनिलोग इंगुदी के फलों को पीसकर उससे तेल निकाल कर तेल को काम लेते हैं। जगह–जगह पर इंगुदी के फल पीसने से पत्थर भी चिकने दिखाई देते हैं।

यस्य त्वया व्रणविरोषणं भिङ्गुदीनामू,
तैल न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्यद्धे। अभि. 4/16

ऋषिलोग इङ्गुदी तेल का प्रयोग व्रणरोपण में भी करते थे। ऐसा उल्लेख कवि ने अभिज्ञान शकुन्तलम् में किया है।

ता इङ्गुदी स्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्ण मेध्याजिनतुल्यमन्तः।

प्राचीन काल में हिंगोट के तेल का प्रयोग दीपक आदि प्रकाश हेतु किया जाता था जो कि कवि ने रघुवंश नामक महाकाव्य में स्पष्ट किया है।

विमर्श :

महाकवि कालिदास ने हिंगोट के फलों का तेल अभ्यंग, व्रणरोपण एवं रोशनी हेतु भी प्रयोग करने का उल्लेख किया है। अर्थात जंगलों में निवास करने वाले ऋषि–महर्षि हिंगोट का तेल केश्य, व्रणरोपक, जन्तुघ्न एवं त्वचा रोग नाशक माना जाता है।

इङ्गुदी का परिचय : Balanites aegypteiaca Linn

इसके वृक्ष भारत के उष्ण प्रदेशों के जंगलों में विशेषतः राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात में होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इसके छोटे आकार के एवं कांटेदार वृक्ष होते हैं। पर्ण–पत्रक, अवृन्त, अखण्ड, अण्डाकार, पुष्प, पीताभ वर्ण के एवं सुगन्धित गुच्छों में बसन्त ऋतु में खिलते हैं। फल–अण्डाकार, पञ्चकोणीय, एक बीज वाला होता है। फलमज्जा में सेपोनीन होने से कपड़े धोने के काम में आता है एवं बीजों से निकाला हुआ तेल औषधि में काम आता है। फल–कटु, तिक्त उष्ण केश्य, व्रणरोपक एवं जन्तुघ्न होता है। **यथा–**

इंगुदी नामको वृक्षो मदगंधि' कटुर्लधुः।
तिक्तश्चोष्ण फेनिलश्च प्रोक्तश्यचैवरसायनः
कृमीन्वातं विषंशूले श्वित्र कुष्ठव्रणकफम्।।
ग्रहपीड़ा भूतवाधो, नाशेवदितिकीर्तितम्।
अस्यपुष्प मधुरं चोष्णं च तिक्तकम्।
वाते कफ च नाशयेत्, इति आचार्य भाषितम्।। **नि.र.**

इंगुदी के फल की मींग को जल के साथ मुख पर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है।

बाल्मीकीय रामायण में इंगुदी अयोध्याकाण्ड अध्याय 30/12 में वनगमन के प्रसंग में श्रीराम के विश्राम स्थान में इंगुदी का उल्लेख है।

16. इन्दीवर (नीलकमल)
(Nympheaea Stellata)

इन्दीवरः– रघु.वं. 6/65, 13/54, ऋतु. 2/12,

इन्दीवरश्याम तनुनृपोऽसौ, त्वं रोचना गौर शरीरयष्टिः।
अन्योन्य शोभा परिवृद्धये वां योग स्तडिन्तोयदयोरिवास्तु।।

रघु.व. 6/45

राजा का वदन नीलकमल सद्यश है एवं रानी गोरोचन सद्यश है।

अन्यत्रमाला सितजंकणा भिन्दीवरैरूत्रवचितान्तरेव,
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्व संसर्गवतीव पंक्तिः।।

रघु.वं. 13/54

पुष्पक विमान पर बैठे श्री रामचन्द्र जी जानकी के साथ जब लंका से लौटे तो उन्होंने नीलकमल एवं श्वेतकमलों के सरोवरों को सीता जी को दिखाया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विलोचनेन्दीवर वारिविन्दुभिः
निषिक्तविम्बाधरचारुपल्लवा।
निरस्तमाल्या भरणानुलेपनाः,
स्थितानिराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम्।। **ऋतु. 2-12**

नीलोत्पल के पत्रों में जलबिन्दु बहुत सुन्दर शोभायमान हो रहे थे।

विमर्श :

कालिदास में अपने काव्यों में कमल के संदर्भ में पुण्डरीक, उत्पल, रक्तोत्पल, कुमुद, पद्म, नीलोत्पल, सरोरुह, अम्बुज, मृणाल, अरविन्द, विस, लीलाकमल, स्थलकमल, पुष्कर, एवंकुवलय आदि कतिपय शब्दों का उल्लेख किया है।

निघण्टु ग्रंथों में कमल के तीन भेद पाये जाते हैं जिसमें श्वेत कमल को पुण्डरीक, रक्तकमल को कोकनद एवं नीलकमल को इन्दीवर कहते हैं। इसके अतिरिक्त श्वेत कुवलय तथा कल्हार (रक्त कुमुद) का अलग वर्णन आया है। स्थलकमल का भी अलग वर्णन मिलता है। संहिता ग्रंथों में भी कतिपय स्थलों पर इन्दीवर का पाठ आया है। जिसमें डल्हण, चक्रपाणी आदि टीकाकारों ने इन्दीवर से शरवालिका नीलोत्पल, कुरण्टक आदि कतिपय अर्थ किया है। **यथा–**

इन्दीवर कर्णपूरकाख्यों महापुष्पः शरवालिकोभेदः
अन्ये नीलोत्पलमाहुः डल्हण

सम्भवत : नीलोत्पलकन्द विशेष द्रव्य इन्दीवर है। वनस्पति शास्त्र के आधार इसे Nymphaea Stellata Willd कहते हैं। वनस्पतिक परिचय देखिये उत्पल नीलोत्पल में।

रक्त कोकनदं ज्ञेयं नीलमिन्दीवरंस्मृतम्।। **भ.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में इन्दीवर (नीलकमल, अरण्यकाण्ड के अध्याय 45/25 राममिन्दीवरःश्याम) नीलकमल सद्यश का रंग उपमा के रूप में वर्णन आया है।

17. उत्पल
(Nymphaea stellata Willd)

उत्पलः– पूर्व. मेघ 29 (श्लोक) रंघुर वं. 6/421, 13/31, कुमार.स. 5/49 ऋतु. सं. 2/2,

गण्डस्वेदापनयनरूजा क्लान्तकर्णोत्पलानां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलाबीमुखानाम्। **पूर्व.में. 29**

यक्ष मेघ से कहता है कि मार्ग में सुन्दरियों के कानों में मुरझाये हुये जो कमल हैं उनको तुम अपनी बर्षा से सींच देना या उनके प्रिय के वियोग में मुरझाये हुये मुखों को पहिचान लेना।

धारा शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्पुत्पुलपत्रसाराम्।।

रघु.सं. 6/42

कवि ने परशुराम की फरसे की धार को कमल के पत्र के समान तेज धार वाला माना है।

अत्रावियुक्तानि रथांड्गनाम्ना मन्योन्यदत्तोत्पल के सराणि।।

रघु.व. 13/31

हे प्रिये यहां परस्पर कमल के पराग देते हुये चकवा चकवी के जोड़े वियोगिनों को बड़ी लालसा से देखते हैं।

अहोस्थिर कोऽपि तवेप्सितोयुवा, चिरायकर्णोत्पल शून्यतांगते।
उपेक्षते यः स्थललम्बिनीर्जटाः, कपोलदेशे कमलाऽग्रपिंगला।

कुमा.सं. 5/49

कवि ने कान के आभूषण के लिये कमल का विशेष रूप से उल्लेख किया है।

नितान्तनीलोत्पल पत्रकान्तिभिः
क्वचित्प्रभिन्नाञ्जन राशितान्निभैः।। **ऋतु.स.2/2**

वर्षाकाल में कमल के पत्रों की शोभा मेघ से धिरे हुये आकाश में बहुत सुन्दर मालूम हो रही थी।

विमर्श :

कुमुद, उत्पल एवं नीलोत्पल में निर्णय करना कठिन है? कतिपय स्थलों पर कमल के लिये भी उत्पल शब्द का उल्लेख आया है। लेखक के विचार से शास्त्रीय उत्पल Nymphaea Stellata हो सकता है जोकि सम्भवतः इन्दीवर का पर्यायवाची हो। अतः इस संदर्भ पर विद्वानों को विचार करना चाहिये। **यथा–**

रक्तं कोकनदं ज्ञेयं, नीलभिन्दीवरस्मृतम्। **नि.र.**

उत्पल : बाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एवं सुन्दरकाण्ड आदि स्थलों पर उत्पल (कमल) का उल्लेख वन की शोभा, मुख की समानता, पंपासर के प्रसंग में, लंका के अशोकवन में, सह्यगिरी के जलाशय में, मूर्च्छाहरण के लिए उत्पन्न नल के प्रयोग में श्रृंगार के वर्णन में एवं सीता जी के नेत्रों की समानता आदि प्रसंगों में उत्पल (कमल) का उल्लेख है

18. उदुम्बर (गूलर)

(Ficus racemosa Linn)

उदुम्बर :–पूर्व.मे. 46 (श्लोक)

नीचैर्वास्यत्युपजिगभिषों र्देवपूर्व गिरिं ते,
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।। **पूर्व.मे. 46,**
उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गे हैमदुग्धकः इत्यमरः।।

देवगिरि को जाते समय हे मेघ तुमारे नीचे से सुगन्धित एवं गूलरों को पकाने वाली हवा बहेगी।

देवगिरि नामक स्थान विल्सन के मतानुसार आधुनिक देवगठ है जो चम्बल के दक्षिण में मालवा प्रान्त के मध्य में और झासी के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। यहां पर कार्तिकेय का मन्दिर भी है। यह स्थान अलकापुरी जाते समय मेघ के मार्ग में पड़ता है।

उदुम्बर का परिचयः Ficus Racemosa Linn

इस वृक्ष को साधारण भाषा में गूलर कहते हैं। निघण्टु ग्रंथों में इस वृक्ष का उल्लेख पञ्चक्षीरी वृक्षों में आया है तथा संस्कृत साहित्य एवं ज्योतिषशास्त्र में पञ्चबल्लकल में इसका उल्लेख मिलता है। इसके सदाहरित वृक्ष जंगलों एवं नदी नालों के किनारे पाये जाते हैं। कच्चे फल हरे एवं पकने पर नारंगी रंग के होते हैं।

आयुर्वेद के गुणधर्म :

गुणों में रुक्ष कषाय, मधुर एवं शीतवीर्य, छाल एवं कच्चे फल अग्निदीपक, रक्तपित्तशामक व्रणरोपक गर्भाशय–शोथहर एवं प्रमेहनाशक हैं। जड़ का पानी राजयक्ष्मा एवं मधुमेह के रोगी को पिलाते हैं। शोथ, वेदना एवं ब्रण विकारों में गूलर का शूंग् एवं दूध का लेप किया जाता है। क्वाथ का उपयोग ब्रण धोने के लिये किया जाता है। चरक के मूत्रंसग्रहणीय, कषायस्कन्ध तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि गण में गूलर (उदुम्बर) का पाठ आया है। **यथा–**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उदुम्बरः शीतलः स्याद्गर्भ सन्धान कारकः
व्रणरोपणकृद्बृक्षो मधुरस्तुबरो गुरुः।
अस्थिन्धानकृद्वर्ण्यः कपित्तातिसारकान्।।
योनिरोगं नाशयति बल्कं चैवास्य शीतलम्।
मध्यमं कोमलस्वादुः शीतलंतुवरं मतम्।। नि.र.

19. उशीर (खश)
(Vetiveria zizanioides Nash)

उशीर :–अभिज्ञान 3/10, 31

स्तन्यस्तोशीरं प्रशिथिल मृणालैकवलयं,
प्रियायाः सावाघं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामः मनसिज निदाघप्रसरयोः
नतुग्रीष्मस्यैवं सुभग मपराद्धं युवतिषु।। **अभि.शा. 3/10**
मणिवन्धाग लितभिदं संक्रान्तोक्षीरणरिमलं तस्या।
हृदयस्य निगदभिव में मृणालवलयं स्थितं पुरतः।। **अभि. 3/31**
प्रिय वदे कस्येद मुशीरानुलेषनं मृणालवन्ती च नलिन पत्राणी नीयन्ते।
शाकुन्तलम् 3

राजा दुष्यंत शकुन्तला के संदर्भ में कहती है कि मेरी प्रिया के स्तनों पर उशीर रखी हुई है। हाथों पर मृणाल के कंगण बाजूवन्द आदि बंधे हुये हैं।

कलाई पर से खिसक कर गिरा हुआ खश की सुगन्धी से सुवासित यह मेरी प्रिया का मृणाल निर्मित बलय मेरे हृदय की वेड़ी की तरह सामने पड़ा हुआ है। संस्कृत काव्यों में खश का उपयोग सुगन्धी एवं प्रसाधनों हेतु किया गया है।

उशीर का परिचय : Vetiveria zizanioides Nash

इसे साधारण भाषा में खस कहते हैं। यह भारत के सभी प्रान्तों में प्रायः सुलभ है, विशेषकर उत्तरी भारत, मैसूर आदि स्थानों में पानी के किनारे एवं नमी वाले स्थानों पर पाया जाता है।

यह घास (तृण) जाति की सुगन्धित जड़ है। गर्मियों में इसके पंखें एवं खस के पर्दे बनाये जाते हैं। इसके मूल में सुगन्धित उड़नशील तेल पाया जाता है। गुणों की द्रष्टी से यह तिक्त, मधुर एवं शीतवीर्य होता है। इसके अतिरिक्त यह

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मूत्रल, हृद्य, दाहतृषाशामक एवं बमन अतिसार नाशक है। चरक ने वर्ण्य, दाहप्रशमन, महाकषायों में एवं सुश्रुत ने सारिवादिगण एवं पित्तसंशमन वर्ग में उशीर की गणना की है। **यथा–**

उशीर शीतलंतिक्त, दाहश्रमहरंपरम्।
पित्तज्वरार्तिशमनं जलसौगन्ध्यदायकमम्।।
उशीर स्वेद दौर्गन्ध्य दाहपित्तास्त्र रोगजित्।। **रा.नि.**

अयोध्याकाण्ड के अध्याय 55/10 में नाव बनाने के प्रसंग में अरण्यकाण्ड 68/18 में सीता के केश की समानता के प्रसंग में एवं रावण के शव की चिता बनाने के लिये उशीर का उल्लेख आया है।

20. एला (इलायची)
(Elettaria cardamomum Moton)

एला : रघु.वं. 4/49, 6/64.

स सज्जुरश्वक्षुण्णानामेला नामुत्पतिष्णवः।
तुल्यगन्धिषु मत्ते भकटेषु कलरेणवः।। **रघु.व. 4/49**

महाराजा रघु दिग्विजय के समय घोड़े में सवार होकर चले तो उनके घोड़ों से खुदी हुई इलाचियों की उठी हुई रजतुल्यगंधिवाले हाथियों के गण्डस्थल में लगी। अर्थात् इलांचयी की गंध से हाथी भी मस्त हो जाते हैं।

ताम्बूलबल्ली परिणद्धपूगा स्वेलालता लिंगितचन्दनासु,
तमालपत्रास्तरणासु रन्तु शश्वन्मलयस्थलीषु।। **रघु.व. 6/64**

इलायची के पौधों से लिपटे चंदन वाली और तमालपत्रों के विछोने वाली मलयाचल पर्वत की शोभा निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार "एलालतास्फालनलब्धगन्धः" आदि कतिपय सन्दर्भ स्थल इलायची के लिये आये हैं। निघण्टु ग्रंथों में दो प्रकार की इलायची का निर्देश मिलता है। 1. लघुएला, 2. वृहत्–एला दोनों वनस्पतियाँ भिन्न–भिन्न कुल की हैं। लघुएला विशेष रूप से अधिक श्रेष्ठ मानी गई है।

एला का परिचय : Elettaria cardamomum Moton

वह दक्षिण और पश्चिम भारतवर्ष के मैसूर, कुर्म, द्रावनकोर, कोचीन के पहाड़ी जंगलों में पाई जाती है। आजकल इन स्थानों पर इसकी खेती भी की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

छोटी इलायची के बहुवर्षायु क्षुप होते हैं जिनका कि भौमिककाण्ड कन्दसदृश होते हैं। पर्ण एकान्तर क्रम से आयताकार, पुष्प मञ्जरियों में श्वेत एवं रक्तवर्ण के होते हैं। इलायची का फल त्रिकोष्ठीय, अण्डाभ, कच्चेपन पर हरे रंग का, पकने पर पीला तथा सूखने पर कुछ सफेद हो जाता है। इसकी दूसरी किस्म भी पाई जाती है जिसे बड़ी इलायची Amomum Subulatum Roxb कहते हैं। यह नेपाल, सिक्कम, आसाम, बंगाल, लंका आदि स्थानों में पैदा होती है। छोटी इलायची के अभाव में बड़ी इलायची का प्रयोग किया जा सकता है।

आयुर्वेद में गुणधर्मः

यह रूक्ष, लघु, मधुर, शीतवीर्य, मुख दुर्गन्धनाशक रोचक हृद्य, तृष्णानाशक एवं वमिनिरोधक है। चरक ने शिरोविरेचन द्रव्यों, श्वासहर महाकषायों एवं सुश्रुत ने एलादि गण में इलायची का पाठ दिया है। **यथा–**

एलासूक्षमक कफ श्वास कासार्शो मूत्रकृच्छ्र हृत्।
रसेसु कटुकाशीता, लध्वी वातहरामता। **भा.प्र.नि.**

21. कदम्व (नीप)

(Anthocephalus indicus A. Rich)

कदम्व : पूर्व.मेघ. 21/26 (श्लोक) उत्तर. मेघ 2 (श्लोक) अभिज्ञान 216, रघु. व. 13/29, 55, 15/99, ऋतु.सं. 2/19, 20, 23, 24, 3/13

नीपं द्यष्ट्वा हरित कपिशं केसरेरर्धरूढैः
राविर्भूत प्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।। **पूर्व.मे.21**
नीचे राख्यं गिरिमधवसेस्तत्त विश्रान्तहेतौः,
त्वत्सम्पर्कात् पुलकिताभिवः प्रौढपुष्पैकदम्बैः।। **उत्तरी में 26**

वर्षाकाल के प्रारम्भ होते ही कदम्व के पुष्प खिलने लगते हैं। कदम्व एवं कन्दलियों के पुष्पों की सुगन्ध से भौंरे, हरिण एवं हाथी मस्त होकर झूमते रहे होंगे। यह निर्देश यक्ष मेघ को करता है। वर्षाकाल के प्रारम्भ होते विदिशा की पहाड़ियों पर कदम्व पुष्प खिलने लग जायेंगे। इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि कदम्व वर्षाकाल में पुष्पित होते हैं।

छायावद्ध कदम्वकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यास्यतु
विश्रब्ध क्रियतां वराहषतिभि मुस्ताक्षति पल्वले।। **अ.शा. 216**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वनों में मृग, हरिण आदि कदम्व वृक्षों की छाया में बैठकर जुगाली लगाते हैं। अर्थात् कदम्ववृक्ष छायादार होता है।

गन्धश्च धाराहतपल्वबाना कादम्वमर्धोद्गतकेसरं च।

रघु.व. 13/29

वर्षाकाल में विकसित कदम्व के सुगन्धित पुष्प मनोहर होने पर भी विरहिणियों को असह्य है।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्वसंसर्ग वतीव पंक्तिः।

रघु.वं.स. १३/५५

जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पद्वीं हरिराक्षसः,
कदम्व मुकुल स्थूलरभिबृष्ठां प्रजाश्रुभिः।। **रघुं. 13/99**
कदम्व सर्जार्जुन केतकीवनं,
विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः।। **ऋतु. 2/19,**
मालाकदंम्व नवकेसर केतकीभिः
आयोजिताः शिरसिविभुति भाषितोऽध।। **ऋतु. 2-20**
मुदित इन कदम्वै जातिपुष्पैः समन्तात्
पवनचलितशारवैः शाखिभिन्यृत्यतीव **ऋतु. 2/23**
विकचनवकदम्वैः कर्णपूरं वधूनां,
रचयति जलदौधः कान्तवत्कालएषः।। **ऋतु. 2/24**

कवि ने ऋतुसंहार नामक काव्य में वर्षाकाल का वर्णन करते हुये कदम्व वृक्ष एवं पुष्प का सुन्दर रूप से वर्णन किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि कदम्व का पुष्पकाल वर्षाऋतु है।

मुकत्वा कदम्वकुटेजार्जुन सर्जनीपान्
सपृच्छदा नुपगता कुसुमोद्गमश्रीः।। **ऋतु. 3/13**

शरद् ऋतु का वर्णन करते हुये कवि ने कदम्व पुष्पों की सुन्दरता स्पष्ट की है।

विमर्श : ऋतुसंहार सर्ग 3 में कवि ने कदम्व एवं नीप का एक साथ उल्लेख किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि नीप कदम्व से भिन्न द्रव्य है। रक्तकदम्व का भी कवि ने कतिपय स्थलों पर उल्लेख किया है। निघण्टु ग्रंथों में भी धाराकदम्व, राजकदम्व, नीप आदि कतिपय भेदों का उल्लेख आया है। **यथा–**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

धाराकदम्व Adina Cordifolia एवं नीप Mytragynap parvifolia हो सकता है। राजकदम्व Anthocephalus Cadamba है। जिसके पुष्प मनोहर एवं सुगन्धित होते हैं।

कदम्व का परिचय : Anthocephalus Indicus A. Rich

यह हिमालय के उष्णकटिबंधों में मिलने वाला मध्यम आकार का वृक्ष है। वृक्ष छायादार 40–50 फुट तक ऊंचा होता है। पुष्प गुच्छों में गोलाकार नारंगी रंग के होते हैं। छाल का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है। यह कषाय, शीतल, सारक, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन एवं विषघ्न है।

फलरस ज्वरजन्य पिपासा में उपयोगी माने जाते हैं पके फल पित्तकारक और वातनाशक होते हैं। अंकुर कषैले शीतवीर्य, अग्निदीपक हलके एवं अतिसार नाशक होते हैं। **यथा–**

कदम्वः कटुकः तिक्तो मधुस्तुवरः पटुः।
शुक्रवृद्धिकरः शीतो गुरूर्विष्ठम्भकारकः।।
रूक्षः स्तन्यप्रदोग्राही वर्णकृत् योनिदोषहा।
रंक्तरूग् मूत्रकृच्छ्रंच वातपित्तं कफ व्रणम्।
दाहं विषं नाशयति ह्यङ्कु राश्चास्य तूबराः
फलं रुच्यं गुरुस्मृतम्।। **यो.र.**

बाल्मीकीय रामायण में कदम्व अरण्यकाण्ड में पंचवटी में विरही श्रीराम का प्रश्न करते हुये उल्लेख आया है।

22. कमल

(Nelumb Nucifera Garten)

कमल : पूर्व.मेघ. 29 (श्लोक) 37, 43 उत्तर.मे. 2, 11, 12, 16, 20, 60, रघु. वं. 3/36, 4/61, 17/75 कुमार 6/84

गण्डस्वेदापनयनरूजा, क्लान्तकर्णोत्पलानाम्। **मेघ.-2 देखिये उत्पल**
प्रत्यूषेषु स्फुटित कमलामोदमैत्रीकषायः
पत्रस्त्रीणां हरित सुरतग्लानिमग्डा नुकूलम्।। **पूर्व.मे. 32**

हे मेघ अवन्ती देश की राजधानी विशाला नामक नगर को जाते समय क्षिप्रा किनारे प्रातः काल के सूर्योदय के समय कमलों की सुगन्ध बहुत सुन्दर होगी।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्तु नलिन्याः।। **पू.मेघ. 43**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कमल के फूलरूपी मुखवाली वह सुन्दरियों की नगरी में है।

धारापातेस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि। **पूर्व.मे. 52**

हे मेघ, जिस प्रकार तुम कमलों पर जोर की वर्षा करके उनको नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं उसी प्रकार अर्जुन ने अपने धनुष से वाणों की वर्षा करके क्षत्रियों का नाश किया था।

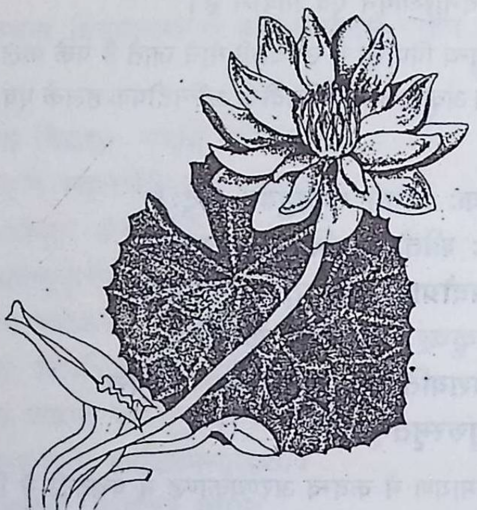

कमल

हस्ते लीलाकमललके वालकुन्दानुविद्धम्
नीतालोध्र प्रसवरजसा पाण्डुंतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरवकं चारूकर्णो शिरीषंर्ब्णे
सीमन्ते त्वदुपगमजं यत्रनीपं वधूनाम्।। **उत्तर.मे. 2 (श्लोक)**

अलकापुरी की सुन्दर युवतियाँ श्रृंगारप्रिया हैं। वे आभूषणों से प्रेम करती हैं। उनके आभूषण प्रायः प्राकृतिक ही हैं। सुन्दरियाँ हाथ में कमल रखती हैं वालों में ताजा कुन्द फूल गूंथती हैं, मुख में लोध्र पुष्प की धूल का पौडर लगाती हैं कान में शिरीष का पुष्प पहनती हैं और मांग में कदम्व का फूल लगाती हैं। कवि ने भिन्न–भिन्न ऋतुओं में पुष्पित होने वाले पुष्पों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है। **यथा–** कमल शरद ऋतु में, कुंन्द हैमन्त ऋतु में, लोध्र शिशिर ऋतु में कुरवक वसन्त ऋतु में, शिरीष्र ग्रीष्म ऋतु में और नीप वर्षा में खिलने वाले पुष्प हैं। इस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फूलों के खिलने से ही प्रकृति में स्वभाविक रूप से ऋतुओं का ज्ञान हो जाता है।

पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिमिश्च **उत्तर.में. 11**

सुनहरी कमलों से सिर गुंथे हुये मोतियों की ये सुन्दर लड़ियां हैं। अलका नगरी की सुन्दरियां सुवर्ण कमलों, मोती की लड़ियों और हारों को देखकर सभी यह जान लेते हैं कि यहां से रात को अभिसारिकायें गई थीं।

लाक्षारागं चरण कमलै न्यासयोग्यं च यस्या। **उत्तर.मे. 12**

उस अलका नगरी की देवियां अनेक प्रकार के आभूषण धारण करती हैं एवं कमल के समान सुन्दर चरणों में लाक्षारस लगाती हैं।

हैमे श्छन्ना विकचकमलैः स्निग्ध वैदूर्यनीलैः। **उत्तर.में. 16**

वावड़ी रक्तकमलों के पुष्पों से विकसित रहती है, मेघ से यक्ष कहता है कि मेरी प्रिया के घर में एक वावड़ी है एवं उसमें सुनहरे कमल खिले हुये हैं। काव्यों में कनक कमल, सुवर्ण कमल आदि शब्दों का उल्लेख प्रायः मिलता है।

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्पति स्वामभिख्याम्। **उत्तर.में. 20**

हे मेघ मेरी प्रिया के द्वार के कोनों पर शंख और पद्म के चित्र देखना कितने सुन्दर होंगे परन्तु मेरी अनुपस्थिती में उनकी शोभा उसी प्रकार मलिन हो गई है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने के बिना कमल नहीं खिलते है।

नत्वाऽऽर्यायारचशणकमलं कालिदासश्चकारः। **उत्तर.में. 60**

इस काव्य में कालिदास ने विरह वेदना का जो सुन्दर चित्रण किया है, वह सब भगवती काली के चरणकमलों की अनुकम्पा से किया गया है।

अगच्छंदंशेन गुणाभिलाषिणी, नवावतारं कमलादिवोत्पलम्।
रघु.वं. 3/36

राजा रघु नवीन कमल सद्यश शोभायमान थे

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेशवः,
गुणातस्य विपक्षेपि गुणिनो लेभिरेन्तरम्।। **रघु.सं. 17/75**

चन्द्रमा की किरणें कमल में नहीं जातीं एवं सूर्य की किरणें कुमुद में नहीं जाती हैं।

लीलाकमल पत्राणि, गणयामास पार्वती। **कुमा.4/84**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय पुत्री पार्वती पिता के पास बैठकर लज्जावश कमल पत्रों की गिनती कर रही थी।

कमल का परिचय : Nelumbo nucifera Gartern

कमल शब्द की ब्युत्पत्ती है कि "को न जलं अलति भूषयति जो जल को शोभित करता है या जिसे देखते ही लेने का मन हो जाय या जिसमें लक्ष्मी का निवास हो उसे कमल कहते हैं।

यह जलज स्थानों में पैदा होने वाला पादप है। कमलकन्द कीचड़ के अन्दर होते हैं। मूल से लम्बे वृत्तवाले पत्र निकलते हैं। पर्णों का उपरी भाग चिकना होता है। पुष्प लम्बे डंठल के शिखर पर खिलते हैं। फल कोषीय एवं प्रत्येक कोष में एक-एक बीज होता है। यह कषाय, मधुर, शीत वीर्य है। कमलकेशर ग्राही रक्तपित्तघ्न, मूत्रकृच्छ्र में क्वाथ उपयोगी माना जाता है। गर्भपात एवं गर्भस्त्राव में श्वेत कमल एवं नील कमल उपयोगी माना जाता है।

चरक ने उत्पल, कुमुद को गर्भस्थापना के लिए विशेष उपयोगी लिखा है। सुश्रुत में उत्पलादिगण एवं पित्तसंशमन वर्ग में कमल का उल्लेख है।

विमर्श :

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में कमल के सन्दर्भ में पद्म नलिन, अरविन्द, सरसिज, पुष्कर, कुमुद, अरविन्द्, अब्ज, अम्भोरुह, पुण्डरीक, इन्दीवर, उत्पल, मृणाल, विष, नीलोत्पल आदि शब्दों का उल्लेख किया है। कमल के अवयवों के विभिन्न नाम का संकेत काव्यकार ने किया है।

याथ–पम्द वीज (कमलगट्टा) कमलनाल (विस, मिस) कन्द (पद्मकन्द) पद्मकेशर (पुंकेशर) रक्तकमल (कोकनद) श्वेतकमल (कुमुद) उत्पल (नीलोफर) श्वेत कमल को Nymphaea alba Linn रक्तउत्पल Nymphaea pubescens

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों के कतिपय स्थलों पर उपर्युक्त नामों का उल्लेख विभिन्न रोगों के प्रयोग के लिये आया है। **यथा**–

कमलं शीतलं वर्ण्य मधुरं कफपित्तजित्।
तृष्णादाहास्त्र विस्फोट विष विसर्प नाशनम्।।
कमलं शीतलं स्वादु सुगन्धि भ्रान्तितापहम्।
वर्ण्य तृप्तिकरं चैव रक्तपित्त श्रमापहम्।। **रा.नि.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

23. ककुभ (अर्जुन)

(Terminalia arjuna W. & A.)

कुकुभ : पूर्व.मेघ. 22, ऋतु सं. 2/20,

उत्पश्यामि द्रुस्तमपिसखे मत्प्रियाथप्रियासौः।
कालक्षेपं कुकुभ सुरभौ पर्वते पर्वते ते।। **पूर्व में 22**

मेघदूत नामक खण्ड काव्य में महाकवि कालिदास ने वर्षा काल के साथ पर्वतों में पुष्पित अर्जुन वृक्ष का उल्लेख किया है। कुछ टीकाकारों ने ककुभ से कुटज अर्थ भी किया है जो कि लेखक के विचार से विचारणीय है।

मालाः कदम्ब नवकेशर केतकीभिः
आयोजिताः शिरसि बिभ्रतिर्योषितोऽद्यः।।
कर्णोन्तरेषु ककुभ द्रुम मज्जरीभिः
इच्छानुकूलं रचितानवतं सकाश्च।। **ऋतु.सं. 2/20**

कवि ने वर्षाकाल में पुष्पित वृक्षों कें सन्दर्भ में ककुभ (अर्जुन) नामक वृक्ष का उल्लेख किया है। यथा वर्षाऋतु में सुन्दरियाँ कदम्ब, केशर एवं केतकी आदि पुष्पों की मालायें गले में धारण करती हैं तथा अर्जुन पुष्प मज्जरियों को अपनी इच्छा से कानों में धारण करती है।

लेखक के विचार से अर्जुन का पर्यायवाची शब्द ककुभ है,कुछ टीकाकारों ने ककुभ पर्वतों पर उपलब्ध होने कसे कुटज अर्थ किया है जाकि उपयुक्त नही है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथें में अर्जुन के पर्यायवाची शब्दों के साथ कुकुभ का पाठ आया है। महाकविं कालिदास ने अपने साहित्य में अर्जुन का भी उल्लेख कतिपय स्थलों पर किया है। देखिये अर्जुन।

24. कदली (केला)

(Musa sapinetum Linn)

कदली : सघु.सं. 12/96, कुमार स. 1/36, उ.मे. 17, 36

राघवो रथमप्राप्तां ताम्गां च सुरद्विषाम्।
अर्थचन्द्रमुखे र्वाणैःश्चिच्छेद कदलीसुखम्।। **रघु.स. 12&96**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कदली (केला) Musa sapinetum Linn

श्री रामचन्द्र जी अपने अर्धचन्द्र वाणों से राक्षसों का विनाश कदली पत्र सद्यश आसानी से करते थे।

नागेन्द्र हस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेकान्त शैत्यात्कदली विशेष

कवि ने पार्वती के उरुओं की उपमा कदली के खम्मों से भी बढ़कर शीतल बताई है। इसी प्रकार उत्तरमेघ में भी कदली का उल्लेख कवि उपमाविषयक के रूप में किया है। यथा–

सरसिकदली गर्भ गौरः 1 उत्तर मेघ 33

क्रीडाशैलः कनक कदली वेष्ठन प्रेक्षणीयः उत्तर.मेघ. 17

कदली का परिचय : Musa sapinetum Linn

केले के वृक्षः प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं। देश भेद के आधार पर भी बम्बई का केला, कलकत्ते का चाटियकेला, पीतकेला, पर्वती–केला मुख्य माने जाते हैं। निघण्टु कारों ने माणिक्य–कदली, मर्त्यकदली, अमृतकदली तथा चम्पक–कदली आदि कतिपय भेद बताये हैं।

संस्कृत साहित्य में रम्भा, सुफला, सुकुमारा, गुच्छफला, बालकप्रिया, उरुस्तम्भ एवं ज्योतिषग्रंथों में भी कदली का विशेष उल्लेख आया है। यही कारण है कि हिन्दु संस्कृति में पंचपल्लव, वृक्षों में कदली का भी विशेष महत्व है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में गुणधर्म :

गुणधर्म के आधार पर केले का पका हुआ फल वल्य, रक्तपित्तशामक, संग्राहक एवं जीवनीय है। कच्चे केले का शाक मधुमेह में उपयोगी माना जाता है एवं अतिसार में संग्राही के रूप में देते हैं। इसके पुष्प एवं मूलस्वरस अत्यार्तव एवं रक्तपित्त में उपयोगी माना जाता है। केले की साधारण कली मधुर, वीर्यवर्धक, किञ्चित् कषेली, शीतल, रक्तपित्तनाशक, हृदय को हितकारी, रूचिकारी, कफकारक और भारी है। कच्चे केले की फली मलरोधक शीतल कषैली, वात कफकारक विष्ठम्भकारक, एवं बलवर्धक है। पकाकेला वातकारक शीतल, रक्तपित्तशामक, भारी, शुक्रवर्धक, थकान को दूर करने वाला, कान्तिजनक है। केले में फूल स्निग्ध, मधुर, कषैला, भारी, वातपित्तनाशक, रक्तपित्त नाशक एवं क्षयरोग हर है। केले का जल शीतल, मलरोधक मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अतिसार, रूधिरविकार, रक्तरोधक एवं योनिरोग नाशक है। केले का कन्द बलकारक कषैला, शीतल, रजोदोष एवं सोमरोग नाशक है। जंगली कदली शीतल, मधुर बलवर्धक रुचिकारक भारी, तृषा, दाह एवं पितहर है। इसी प्रकार सुवर्ण कदली, महेन्द्र कदली एवं कृष्ण कदली के गुणधर्मों का उल्लेख निघण्टु ग्रन्थों में मिलता है। **यथा–**

कदलं मधुरं बृष्यं कषाय नात्तिशीतलम्।
रक्तपित्त हरं हृद्य, रूच्यं श्लेष्मकरं गुरूः। **रा.ब.**
संग्राह्त्य पक्कं सुशीतल च, कषायक वातकफ करोति।
विष्ठम्भि गुरु दुर्जरच, आरण्यरम्भा फलमेव चैतत्।।

रम्भा पक्व फल कषाय, मधुर, बल्य च शीत तथा पित्तंचा स्त्रविमर्दन गुरुतरे पथ्य च मन्दानले। सद्यः शुक्र विवर्धन क्लमहरं तृष्णापहं कान्तिदम्। दीपाग्नों खुखदं कफामयकरं सन्तर्पणं दुर्जरम्।। शा.नि.

25. कंदली
(Crinum Defixum)

कन्दली : पूर्व मेघ–श्लोक–29, विक्रमो. 4/28, ऋतु.स.2/25.

नीपं द्यष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरुढैः।
आविर्भूत प्रथमुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।। **पूर्व.मेघ-29**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि ने वर्षाकाल में खिलने वाली वनस्पतियों के साथ कन्दली का उल्लेख किया है।

प्रभिन्न वैदूर्य निंभैस्तृणांकुरै,
समाचित प्रोत्थितकन्दली दलैः।
विभाति शुल्केतर रत्नभूषिता,
वरांगनेव क्षितिरिन्दुगोपकैः।। **ऋतु.सं. २/५**

वर्षाकाल के प्रसंग में कवि ने नवजातकन्दली नामक द्रव्य ऋतुसंहार नामक काव्य में उल्लेख किया है।

वक्तव्य :

यह संदिग्ध वनस्पति है। सुश्रुत–संहिता अध्याय 39/9 में कन्दली नामक द्रव्य का उल्लेख मिलता है, जिसमें कि सुश्रुत संहिता के टीकाकार डल्हणाचार्य ने कन्दली शब्द से यह अर्थ किया है कि यह वर्षाकाल में उत्पन्न सपृच्छत्रक सद्यश आकृति वाला एवं वर्ण में श्वेत कन्द सद्यश द्रव्यविशेष है, जोकि लेखक के विचार से कु रमुत्ता (गुच्छी) अपुष्प वर्ग के वनौषधि विशेष द्रव्य है।

शब्दार्णव नामकग्रंथ में शिलीन्ध्री, भूमिकन्द आदि नाम भूमिच्छत्रक के लिये आये हैं जो कि अनेकार्थ बेधक है। डल्हण ने मूर्वा के प्रसंग में भी कन्दली स्वल्प विटप हथोड़ इति लोके यह अर्थ किया है। सुश्रुत ने पित्तसंशमन वर्ग में इसका पाठ दिया है।

वनस्पति विशेषज्ञ डा. वलवन्तसिंह जी ने Crinum Defixum शास्त्रीय कन्दली है ऐसा विचार व्यक्त किया है। सम्भवतः महाकवि कालिदास ने वर्षाकालीन वनस्पति Crinum को कन्दली लिखा है।

26. कर्णिकार (अमलतास)

(Cassia fistula Linn)

कर्णिकार : कुमार.स. 3/28, 3/53, 2, ऋतुसंहार 6/5, 20, 29, विक्रमो. 2/23, 3/11

अशोक निर्भत्सितपद्म राग माकृष्ठ हैमद्युतिकर्णिकारम्।
वसन्तषुप्पाभरण वहन्ती। **कु.सं. 3/33**

कवि ने वसन्तऋतु में पुष्पित कर्णिकार के पुष्पों की उपादेयता बतलाई है तथा इनके पुष्पों का रंग सुवर्ण के सद्यश पीला बताया है। जिन पुष्पों को पार्वती धारण करती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

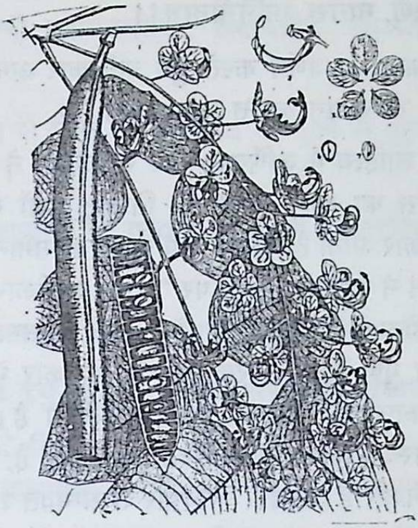

कर्णिकार (अमलतास) Cassia fistula Linn

वर्णप्रकर्षे सतिकर्णिकारं दुनाति निर्गन्धतयास्मचेतः कु.स. 3/28

अर्थात् कर्णिकार नामक पुष्प देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हुये भी उनमें गन्ध के न होने पर भी सुन्दर लगते हैं।

उमाऽपि नीलाऽलक मध्यशोभि विस्त्रंसयन्ती नवकर्णिकारम्
कु.स. 3-62

पार्वती के काले केशों में गुंथे हुये ताजे कर्णिकार पुष्प को और कान पर

रघुवंश महाकाव्य में महाकवि कालिदास ने अग्नि के समान कान्तिवान् कर्णिकार पुष्प को सुवर्ण आभूषणों के सद्य.शशोभा वाला बताया है।

कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारम्
पुष्पं कच फुल्लं नवमल्लिकायाः
प्रयातिकान्ति प्रमदा जनस्य।। ऋतु. 6/5
किं किंशुकेः शुकमुखच्छविभिर्नभिन्न।
किं कर्णिकार कुसमें र्न कृतं नु दग्धम्।। ऋतु. 6-20

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुसुमित सहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यैः,
इषुभिरिव सुतीक्ष्णै मानस मानिनीनांम्।।

कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये कर्णिकार अमलतास पुष्पों को कामोद्दीपक एवं अग्नि के समान कान्ति वाला माना है।

वक्तव्य : संस्कृत साहित्य में कर्णिकार शब्द से कवियों ने मन्दार, कठचम्पा एवं आरग्वध अमलतास का वर्णन किया है। निघण्टु ग्रंथों में अमलतास का पर्यायवाची शब्द कर्णिकार आया है जिसके पुष्प सुवर्ण के समान पीतवर्ण के होते हैं। महाकवि कालिदास ने कतिपय स्थलों पर "हुताश कर्णिकार" यह अर्थ किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि कर्णिकार पुष्प अग्नि के समान रक्ताभ होते हैं जोकि सम्भवतः मन्दार पुष्प हो । अमरककोष के टीकाकार भानुजी दिक्षित ने "त्रिणी कर्णिकारस्य कठचम्पा? इतिख्यातस्य अर्थ किया है। शिवदत्त ने भी कर्णिकारस्तु पलाशपत्रस्याद् स्वल्पकण्टकी यह अर्थ किया है, जिस आधार पर Erythrina Indica कर्णिकार है। लेखक के विचार से सम्भवत शास्त्रीय कर्णिकार Cassia Fistula है जिसे सामान्य भाषा में अमलतास कहते हैं।

कर्णिकार का परिचय : Cassia Fistula Linn

यह भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में सुलभ है। वृक्ष मध्यम प्रमाण के बृक्ष होते हैं। पत्र संयुक्त दलपर्ण, पत्रक 4 से 8 जोड़ों में पुष्प पीतवर्ण के गुच्छों में खिलते हैं। कली 1 से 2 फिट लम्बी रक्ताभ कृष्ण एवं कठोर होती है। आयुर्वेदिक गुणों के आधार पर यह रस में मधुर, तिक्त, मधुर–विषाक एवं शीतवीर्य है। मुख्य रूप से मृदुविरेचक है। चरक ने कुष्ठघ्न एवं कण्डूघ्न महाकषाय द्रव्यों में वर्णन किया है तथा सुश्रुत ने आरग्वधादि गण, अधोभागहर, द्रव्यों एवं श्यामादिगण में इस द्रव्य का उल्लेख किया है। ताजे पुष्पों का उपयोग गुलुकन्द बनाने के लिये किया जाता है। छाल का उपयोग गण्डमाला में किया जाता है। **यथा–**

कार्णिकारों दीर्घफलः स्वर्णाङ्ग स्वर्णभूषणः।
आरग्वधो गुरुः स्वादुः शीतल स्त्रसनोत्तमः।।
तस्फल स्त्रंसनं रुच्य, कुष्ठपित्तकफापहम्।।
ज्वरे तु सततं पथ्यं, कोष्ठशुद्धिकर परम्।। **भा.प्र.**

27. कल्पवृक्ष (सन्तानवृक्षः)

कल्पवृक्ष : कुमा.स. 8/68, 71, विक्रमो 4123, उ.मेघ रघु.व.सं. 5/52, 11/50, 6/6

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अथ प्रभावापनतैः कुमारं, कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्यपुष्पैः।
उवाच वाग्भी दशनप्रभाभिः, संवर्धितोरः स्थलतार हाटः।।

र.स. 5/52

अपने प्रभाव से प्राप्त हुये कल्पवृक्ष के फूलों से कुमार अज पर वर्षा करके विद्वानगण वोले।

सद्य एवं सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्ष फलधर्मिकाङ्क्षितम्

रघु.स. 11/50

कल्पवृक्ष फल के समान अभिलाषा करने वाला।

रराजर्धम्ना रघु सूनुरेव कल्पद्रुमाणभिवपारिजातः रघु.सं. 6/6

बड़े मूल्य के सिंहासनों पर बैठे सुन्दर वेषधारी उन राजाओं के बीच तेज से रघु का पुर कल्पवृक्षों के मध्य में परिजात के समान शोभित हुआ।

आसेवन्ते मंधु रतिफलं कल्पवृक्षं प्रसूतम् उत्त.मं. 5
लाक्षारागं चरण कमलन्यास योग्यं च यस्या
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः उत्त.मं. 5

कवि ने मेघदूत नामक काव्य में भी कतिपय स्थलों पर कल्पवृक्ष का उल्लेख किया है। इसी वृक्ष को कतिपय स्थलों पर सन्तानवृक्ष के नाम से भी उल्लेख किया गया है।

विमर्श : लेखक के विचार से अभी यह स्पष्ठ नहीं है। यह सुगन्धित एवं मनोहर पुष्पों वाला वृक्ष विशेष है। कल्पवृक्ष के संदर्भ में मतमतान्तर देखने को मिलते हैं। कल्पपादप भी इसे कहते हैं।

28. कालीयक (पीतचन्दन)

कालीयकः कुमारः स. 7/9, ऋतु स. 4/5, 6/12

तां लोध्र कल्केन हृताङ्ग तैला माश्यानकालेयकृताऽगरागाम्।
वासो वसानाभषिषेक योग्यं, नार्यश्चतुष्काऽभिमुखं व्यनैषुः।।

कु.स. 7/9

सुहागिनी स्त्रियों में लोध्र कल्क आदि द्रव्यों से उवटन किया एवं अगुरू, कालीयक आदि सुगन्धि द्रव्यों से स्निग्ध किया। टीकाकारों ने कालेयं गन्धद्रव्यम्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह अर्थ किया है।

गात्राणि कालीयक चर्चितानि,
सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि,
शिरांसि कालागुरुधूपितानि
कुर्वन्ति नार्य्यः सुरतोत्सवायः।। **ऋतु. स. 4/5**

टीकाकार ने कालीयकं दारुहरिद्रा यह अर्थ किया है। लेखक के विचार से कालीयक सुगन्धित द्रव्य विशेष होना चाहिये। कवि ने हेमन्त ऋतु में लेपन उपयोगी द्रव्यों में इसका वर्णन किया है।

प्रियंगु कालीयक कुङ्कुमानि,
स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः
आलिप्यते चन्दनमंगनाभिः
मदालसार्भिमृगनाभियुक्तम्।। **ऋतु 6/12**

कवि ने वसन्तऋतु के वर्णन के प्रसंग में सुन्दरियों के सुगन्धित आलेपन द्रव्यों में कालीयक नामक द्रव्य का पाठ दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सुगन्धित द्रव्य विशेष है।

विमर्श : संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में कालीय, कालीयक, कालेयक आदि कतिपय शब्द इस द्रव्य के लिये आये हैं। भावप्रकाशनिघण्टुकार ने "कालीयक पीतचन्द न कलम्वक इति लोके" यह अर्थ किया है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने "मलयोत्थम् पीतकाष्ठं हरिचन्दनम्" यह अर्थ किया है। इस उक्ति के आधार पर कालीयक पीतचन्दन है जोकि मलयपर्वत पर उत्पन्न होता है। भावप्रकाश निघण्टु के आधार पर कालीयक कलंवा नामक द्रव्य है। यह द्रव्य प्रायः नीलगिरी, ट्रावनकोर आदि स्थानों पर पाया जाता है जिसे Coscinium Fenestratum कहते हैं। कुछ विद्वानों ने दारूहरिद्रा भेद को कालीयक माना है। लेखक के विचार से यह सुगन्धित मलयपर्वत पर होने वाला चन्द्रनसद्यश पीतसार विशेष द्रव्य है जिस पर विद्वानों को विचार करना है।

सुश्रुत टीकाकार डल्हण के अनुसार "कालीयकं दारूहरिद्राकारी द्रव्य विशेष" है। पीतचन्दन के लिये भी कालीयक शब्द का प्रयोग किया गया है। चन्दनसद्यश सुगन्धित द्रव्य विशेष कालीयक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

29. कास (कासतृणविशेष)
(Saccharum sponatum Linn)

काश : कुमा.स. 9/11

सामंगलस्नान विशुद्ध गात्री, गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा
निर्वत्त पर्जन्यजलाऽभिषेका प्रफुल्ल काशावधुधेवरेजे।।

कु.स. 7/91

मंगलस्नान करने से निर्मल शरीर वाली पार्वती मेघजल से अभिषिक्त होने के बाद शरद्ऋतु में खिले हुये श्वेतकांस कुसुम से युक्त पृथ्वी पर शोभित हुये। "विकसित नव काशश्वेतवासोपसाना" ऋतु. सर्ग 13/26

कास का परिचय : यह भारत के ऊष्ण प्रदेशों के नदी नालों के आस–पास मिलने वाला तृण (घास) जाति का पौधा है। यह वहुवर्षायु तृण विशेष है। काण्ड ठोस पत्तियां बहुत कम चौड़ी और उनका तट मुड़ा हुआ होता है। इसकी जड़ को पञ्चमूल के घटकों में संग्रह किया जाता है। वनस्पतिशास्त्र के आधार पर इसे Saccharum Spontanatum कहते हैं।

आयुर्वेद में गुणधर्म : गुणधर्म के आधार पर यह लघु, स्निग्ध, मधुर विपाक एवं शीतवीर्य होता है। कर्म के आधार पर यह वातपित्तशामक, मूत्रविरेचनीय, अश्मरीभेदन एवं रक्तपित्ताशामक है। यह मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र एवं पित्तरोग नाशक है। **यथा–**

काशस्तु तर्षण शीतो गौल्यो रूचिकरो मतः।
बलकृन्मधुरो बृष्यः स्तिक्तपाकैः मधुः स्मृतः।।
सर स्निग्धः पित्तदाह मूत्रकृच्छ्र क्षयापह।
मूत्राश्मरी रक्तदोषं रक्तपित्तं क्षतक्षयम्।। **शा.नि.**

विमर्श :

सुश्रुत ने कांस के पुष्पों के लिये चामरपुष्प कहा है एवं इक्षुवत् गन्ध होने से इसे इक्षुगन्धा भी कहा है। नलचम्पु में शरद् काल में पुष्पित कास की शोभा का उल्लेख आया है। **यथा–**

प्रावृषं शरदं चापि बहुधाकाश हारिणीम्।
विलोक्यनोत्सुकः कः स्यान्नरो नीरजसंगताम् "नलचम्पू"

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में कास अयोध्याकाण्ड के 28/22 वन के प्रसंग में पंचवटी में चित्रकूट के पास पंचवटी में पंपासर के अरण्य में लंका के अशोक–बन में, श्रीराम तथा लक्षमण का युद्धाहृत रूप में पुष्पिताविवकिंशुका' लंका में आग की लपटें किंशुक सद्यश आदि कतिपय प्रसंगों में पलाश पुष्प का भी उल्लेख है।

30. कालागुरुः (अगरु)

(Aquilaria agallocha Roxb)

कालागुरु 30 स. 4/81, 13/55, 14/12, ऋतु.स. 2/21, 415, 515

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्यो तिषेवरः।
तद्न जालानतां प्राप्तैः, सह कालागुरुद्रुमैः।। रघु.स. 4/81

ब्रह्मपुत्र नदी के प्रसंग में कवि ने कालागुरु के वृक्षों का उपयोग हाथी बांधने के लिये किया है। ऐसा निर्देश किया है। इस भाव से स्पष्ट है कि अगुरुकाष्ठ आसाम में पाया जाता है।

अन्यत्रकालागुरु दन्तपत्रा, भीक्तर्भुवश्चन्दन कल्पितेव।।
रघु.स. 13/55

प्रासादकालागुरु धूमराजिस्तस्या पुरोवायुवशेनभिन्ना।।
रघु.स. 14/12

वायु के चलने से भिन्न–भिन्न महलों के कालागुरु के यें रेखा वन से लौटे हुए रामचन्द्र के स्वंय खोली हुई उस पुरी की वेणी के समान शोभित हुई।

कालागुरु प्रचुर चन्दन चर्चिताङ्गमू,
पुष्पावतंस सुरभी कृतकेशपाशाः।
श्रृत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे,
शय्यागृहं गुरुगृहात् प्रविशन्ति नार्प्यः।। त्रतु.स. 2/21

कवि ने कालागुरु का उल्लेख सुन्दरियों के सुकोमल अंगों पर लेपन हेतु वर्णन किया है।

शिकरांसि कालगुरु धूपितानि,
कुर्वन्ति नार्प्यः सुरतोत्सवायः।। ऋतु 4/5

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकामकालागुरु धूपवासितम्
विशन्ति शय्या गृह मुत्सुकास्त्रियः।। **ऋतु.स. 5/50**

कवि ने सुगन्धित धूपों में कालागुरु नामक द्रव्य का वर्णन किया है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में कालागुरु अगुरु का पर्याय आया है। अतः कालागुरु नामक द्रव्य से Aquilaria Agallocha Roxb अगुरू हैं। देखिये अगुरू।

आयुर्वेद में कालागरु : कालागुरु कटु, उष्ण, लेप में शीतल पित्तनाशक एवं त्रिदोषनाशक है। **यथा–**

कृष्णागुरु कटुष्ण च तिक्तं लेपे चशीतलम् **रा.नि.**

31. किंशुक (पलाश)
(Butea monosperma (Lam) Kuntez)

अपहितं शिशिरापगमश्रिया, मुकुलजालमशोभित किंशुकैः।
प्रणयभिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया।।
रघु.स. 9/31

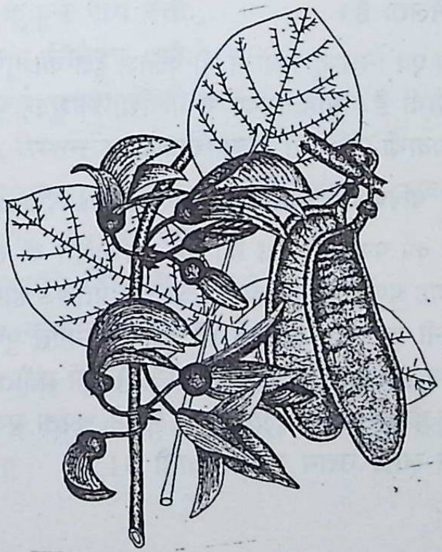

किंशरुक (पलाश) **Butea Frondosa**

वसन्त के आगमन की लक्ष्मी द्वारा पलाश में प्राप्त हुआ कलियों का गुच्छा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मद से लज्जा त्यागी हुई स्त्री का प्यार को दिया हुआ नखक्षत के भूषण के समान शोभित हुये।

सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः,
सद्योवसन्त समये समुपागते हि।
रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः।। **ऋतु.स. 6/9**

कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये पलाश (ढाक) के पुष्पों का सुन्दर रूप से चित्रण किया है।

किं किंशुकैः शुकमुखच्छविभिर्न भिन्नम्।। ऋतु.स. 6/20

वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये महाकवि ने पलाश पुष्पों की शोभा तोते नासिका के सद्यश रक्तवर्ण का बताया है।

आम्री मञ्जुलमञ्जरी वरशरः, सत् किंशुकं पद्धनुः।
भद्र वसन्तान्वितः।। **ऋतु.स. 6/28**

पलाश को कवियों ने वसन्तसूचक वृक्ष माना है। इसके पुष्पित होने से वसन्त का उदय माना जाता है। यही कारण है कि इस वृक्ष का वर्णन संस्कृत साहित्य में विशेष रूप से मिलता है।

आयुर्वेद संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में भी पलाश वृक्ष को गुण धर्मो के प्रयोज्य अंग विशेष से उपयोगी हैं। संहिताग्रंथों में पलाश, किंशुक, वृह्मवृक्ष, क्षारश्रेष्ठ याज्ञिक आदि पर्यायवाची नामों से जाना जाता है।

पलाश का सामान्य परिचय : Butea monosperma Kuntze.

यह मध्यम कद का पर्णपाती वृक्ष है। यह वृक्ष भारत के समस्त उष्ण भागों में सर्वत्र सुलभ है। यह पर्णपाति वृक्ष वसन्त ऋतु में पतझड़ होने लगता तो प्रायः नयी पत्तियां निकलनी शुरू हो जाती हैं तो वृक्ष रक्त–पीत पुष्पों से लद जाता है। पुष्पागम के समय इन वृक्षों के रक्तपुष्प होने से ऐसे प्रतीत होते हैं कि वनों में अग्नि की ज्वाला फैली हुई हो। प्रत्येक फली में चपटा एवं गोलाकार बीज होता है। पलाश की लाख उत्तम समझी जाती है।

आयुर्वेद में पलाश :

औषध प्रयोग में इस वृक्ष के बीज, पुष्प, छाल, गोंद, पत्र एवं क्षार सभी अंगों का उपयोग किया जाता है। गुणधर्मों के आधार पर बीज लेखन, भेदन, कृमिघ्न एवं विषघ्न है। पुष्प–स्तम्भन, मूत्रल, ज्वरघ्न, दाहप्रशमनकारक एवं श्वेत–प्रदर

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नाशक है। गोंद–स्तम्भन, वृष्य, वल्य एवं संधानीय है। क्षार–अनुलोभन एवं भेदन, पत्र संग्राही एवं मूत्रजननकर है। यूनानी मतानुसार बीज तीसरे दर्जे में गरम एवं खुश्क है। **यथा–**

पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित्।
भग्नसन्धानकृद्दोष ग्रहण्यर्श कृमीन्हरेत्।।
कषायं कटुकस्तिक्तः, स्निग्धो गुदरोगजित्
तत्पुष्प स्वाादुपाके सु कटुतिक्तं कषायकम्।। **भा.प्र.**

32. कुंकुम (केशर)
(Corcus saitivus Linn)

कुंकुम : रघु.स. 4/69, विक्रमो. 4/56, ऋतु. 5/9, 6/4, 4/2

विनीताध्व श्रमास्तस्य सिन्धुतीर विचेष्ठनैः।
दुध्रुर्वाजिनः स्कन्धाल्लंग्न कुंकुमकेसरान्।। **रघु.स. 4/69**

राजा रघु को घोड़ों के कन्धों पर लगे हुये कुंकुम, केशर को झाड़ते हुये देखा।

गोरोचना कुंकुम राग रक्तैः,
तुषारकुन्देन्दु निभैश्च हारैः
विलासिनीनां स्तनशालिनीनां
नालं क्रियन्तेस्तन मण्डलानि।। **ऋतु.स. 4/2**
पयोधरैः कुंकुमरागपिज्जरैः, सुखोप सेवब्यैः नवयोवनाभि,
स्वपन्ति शीत परिभूयः कामिनः **ऋतु.स. 5/9**
नितम्व विम्वानि विलासिनी नामू,
तन्वं शुकैः कुंकुमरागगौरैः।। **ऋतु.स. 6/9**

ऋतुसंहार नामक काव्य मे महाकवि ने कतिपय स्थलों पर सुन्दरियों के वदन की शोभा बढ़ाने के लिये चन्दर, अगुरू केशर एवं कुंकुम आदि द्रव्यों का बार–बार उल्लेख किया है।

वक्तव्य :

कुंकुम एवं केशर दोनों शब्द एक दूसरे के समान अर्थ बोधक हैह्व। कुछ विद्वान केशर से वकुल (मौलसरी) अर्थ करते हैं तथा मेरे विचार से केशर से Croucus Sativus का प्रयोग होना चाहिये। अतः कुंकुम एवं केशर दोनों भिन्न–भिन्नद्रव्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हैं। कुंकुम से सैफरान Crocus Sativus एवं केशर से वकुल (मौलसरी) का प्रयोग करना चाहिये। उत्तरी हिमालय में कुंकुम के नाम से Eunymus tingens भिल्लोटक की छाल का संग्रह किया जाता है जोकि शास्त्रीय भिल्लोटक है।

कुंकुम का सामान्य परिचय : Corcus Saitivus Linn.

यह बहुवर्षायु, कन्दिल एवं काण्ड रहित पौधा है। पत्तियां जड़ से निकलती हैं। पुष्प बैंगनी रंग के होते हैं, जो शरद ऋतु में प्रगट होते हैं। पुंकेशर गुलाबी पीत वर्ण के होते हैं तथा प्रत्येक के ऊपर रक्ताभ सूत्राकार योनिछत्र होता है। इसी योनिछत्र को केशर कहते हैं। जम्मु कश्मीकर में इसकी खेती की जाती है। जिसे मोंगराकेशर एवं छल्ला केशर कहते हैं जम्मू–कश्मीर के पामपुर क्षेत्र में विशेष रूप से खेती की जाती है। रानीखेत उ.प्र. में भी प्रायोगिक खेती की जा रही है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

गुणधर्म की द्यष्ठी से कटु तिक्त, उष्ण एवं त्रिदोषहर है। यह आर्तवप्रवर्तक, वाजीकरण, मूत्रल एवं सौमनस्यजननकर है। औषधियों के साथ मिलाने पर कुंकुम हृदय के लिए हितकर है। मुख की सुन्दरता एवं झाइयों को दूर करने के लिये कुंमुमादि तेल विशेष उपयोगी है। **यथा–**

कुंकुम सुरभि तिक्तकटूष्णं कासवातकफकण्ठ रूजाध्नम्। **रा.नि.**
कुंकुम रेचकं प्रोक्तं, कण्डू वैवर्ण्य नाशनम् **रा.व.**
कुंकुम तीक्ष्णमुष्णं च, प्रियं वर्ण्य सुगन्धिकम्।
कटूष्णं कफ वातघ्नं, त्वग्दोषस्वेद पित्तजित्।। **भा.नि.**

तैलादि सुगन्ध और रंग के लिये अधिकता से काम में ली जाती है। आनन्दपूर्वक प्रसव करने के लिए और प्रसव के उपरान्त जरायु की पीड़ा कम करने के लिये ईरान देश की स्त्रियां केशर की गोलियां को अंचल में बांधती हैं। होमियोपैथिक मत से रज सम्बन्धी रोगों में केशर का प्रयोग किया जाता है।

33. कुरवकः (बुरांस)

(Rhododendron Arborium)

कुरूवक : रघ.सं. 9/29, वीक्रमो. 2/9, माल.मि. 3/5, 9, ऋतु.स. 6/8, अभिज्ञान अ. 6/4, उत्तर. मेघ. 2, 18

विरचिता मुधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदान विशारदाः, कुरवका रवकारणतांययुः।।

र.स. 9/29

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुरुवक (व्रांस)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कुंकुम (केशर)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वसन्त से रचे हुये उपवन की शोभा में नवीन पत्र रचना के समान स्थित मधुदान में देने में चतुर कुरवक वृक्ष भौंरों की गुंजार से शोभित हो रहा है।

अग्रे स्त्री नखपाटलं कुरवकं श्यामं द्वयो भागयोः,
वालाशोक मुपोठराग सुभगं भेदोनमुखं तिष्ठति। वि.क्र. 2/3
अग्रे स्त्री नखवत्पाटलं श्वेत रक्तं द्वयोः
भागयोः उभयप्रान्तयोः श्यामं कुरवकपुष्पम्।। ऋतु.सं.

यहां पर कुरवक पुष्प की उपमा स्त्रियों के नाखून के समान गुलाबी वर्ण में विकसित है ऐसा उल्लेख है।

रक्ताशोक रूचा विशेषिति गुणो बिम्बाधरालक्तकः।
प्रत्याख्यात- विशेषक कुरवक श्यामावदातारूणम्।। मालवि. 3/5

रक्ताशोक पुष्प की सुन्दरता से रमणियों के बिम्व सद्यश अधर पर स्थित अलक्तक तिरस्कृत होते हैं। लाल रंग से युक्त कुरवक पुष्प के द्वारा कपोलावस्थित तिलक पराजित होता है।

''वोठा कुरवकरजसां किसलयपुट भेद शीकरानुगतः मा.वि. 3/9

कुरवक पुष्प के पराग से सनी, नूतन विकसित पल्ललव मकरन्द से भीगी यह मलवायु बिना किसी कारण के भी हृदय को उत्कण्ठित कर देती है।

शोभां परा कुरूवक द्रुममज्जरीणाम्।
द्यष्ढावाप्रिये सहृदयस्य भवेन्नकस्य।
कन्दर्प वाणनिकरै र्व्यथितं हि चेत।। ऋतु. 6/12

सुन्दरियों की मुख की शोभा कुरुवक पुष्प के समान रक्त सद्यशं अनुपम थी।

सन्न्द्धं यदपिस्थितं कुरवकं तत्कोरकावस्थया, अ.शा.अ. 6/4
कुरूवक शाखा परिलग्नच वल्कम् अ.शा.अ. 2
चूडापाशेनव कुरवकं चारूकर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् उत्तर. में 2
नालिंगितः कुरवकः तिलको न द्यष्ठो,
नोताडितश्च चरणैः सुद्यशामशोकः,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिक्तो न वक्त्रमधुना वकुलश्च चैत्रे
चित्तं तथा भवति प्रसवावकीर्णः।। **।।काव्यमीमांसा।।**

वक्तव्य :

संस्कृत साहित्य में कुरवक नामक वृक्ष का उल्लेख दौहद वृक्षों में आया है जिसका कि सुन्दर चित्रण काव्यमीमांसा में मिलता है। यथा–सुन्दरियों के आलिंगन मात्र से कुरूवक पुष्प विकसित होने लगता है। सुन्दरियों के अवलोकन मात्र से तिलक पुषिपत होता है। वास्तव में इन वृक्षों का सम्बन्ध स्त्रीरोगों के प्रजनन संस्थान के विकारों से है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में इन वृक्षों का उपयोग रक्त संग्राहक ग्राही, शीतल एवं रक्तप्रदर आदि रोगों में किया जाता है। कवियों ने कुरवकपुष्प का उपयोग स्त्रियों के केश पाश की सुन्दरता एवं मुख सुन्दरता बढ़ाने के लिए उपमाविषयक रूप से किया है। इसके अतिरिक्त वसन्त ऋतु में कुरूवक पुष्पों का खिलना, कानों की सून्दरता बढ़ाना आदि कतिपय संदर्भ स्थल मिलते हैं। गढवाल एवं कुमांयु क्षेत्र में इसे पुलास, बुरांस, कहते हैं। फूलों से शीतल पेय (शर्वत) तैयार किया जाता है।

संदिग्धता :

भावप्रकाश आदि निघण्टु ग्रंथों में सैरेयक के प्रकार भेदों में कुरवक नामक द्रव्य का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान पुष्प भेद से रक्त, पीत, श्वेत नील को सैरेयक मानते हैं। संहिता ग्रंथों में भी सैरेयक के पर्यायवाची शब्दों में आर्तगल, कुरण्टक, कुरवक, वाण आदि कतिपय नामों का उल्लेख मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने Barlaria की प्रजातियों को शास्त्रीय सैरेयक भेद माना है जो कि उपयुक्त नहीं है। संस्कृत साहित्य के आधार पर कुरवक का उल्लेख दोहद् वृक्षों में है, जब कि Barlaria की जातियां झाड़ीनुमा क्षुप है जोकि 4 फुट तक लम्बी होती है। जबकि दोहद् वक्ष कुरवक इतना बड़ा होना चाहिये जिस पर सुन्दरियां झूला झूल सकं एवं आसानी से आलींगन कर सकें। अतः लेखक के विचार Barlaria से की प्रजातियां कफघ्न एवं कासघ्न गुणों वाली हैं, जब कि कुरवक रक्त संग्राहक, ग्राही, एवं वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाला वृक्ष विशेष है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो गया है कि शास्त्रीय कुरवक एवं सहचर की प्रजातियों से भिन्न द्रव्य है जो कि उत्तराखण्ड हिमालय के निचली घाटियों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

में सर्वत्र सुलभ है। यहां के ग्रामीण लोग वुशस, पुलास, वुरूंस कहते हैं जिसमें शास्त्रीय कुरवक की साम्यता मिलती है लैटिन में Rhodendron कहते हैं।

कुरवक का वानस्पतिक परिचय : Rhododendron Arborium

यह सदाहरित मध्यम आकार का वृक्ष है। पर्ण 4–6 इंच तक लम्बे, प्रासवत्, आयताकार एवं मसृण होते हैं। पुष्प गुच्छों में रक्त वर्ण देखने में सुन्दर होते हैं। पुष्प कोष मधु से भरे रहते हैं इसी कारण कवि ने कुरवक को मधुकोष नाम दिया है। हिमालय के पार्वत्य प्रदेशों में जब ये पुष्प खिलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जंगल में आग की चिंगारियां व्याप्त हों।

पुष्पकाल-मार्च, अप्रैल

पाप्तिस्थान : यह वृक्ष, भारत के उत्तराखण्ड हिमालय, हि.प्र., दार्जिलिंग, काश्मीर के अतिरिक्त सिक्किम, भूटान आदि सभी स्थानों में सुलभ है।

उत्तराखण्ड हिमालय में यह 12,00 मीटर की ऊंचाई से लेकर 2,700 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः सभी घाटियों में सुलभ है। ग्रामीण स्त्रियां पुष्पों का प्रयोग अपने चुड़ापाश की सुन्दरता बढ़ाने के लिये करती हैं। इसके अतिरिक्त अन्यश्वेत, गुलाबी नील पुष्प भेद से Rhododendron की प्रजातियां इन घाटियों में सुलभ हैं लेखक के विचार यह शास्त्रीय सहचर भेद है। वनस्पति विशेषज्ञ ठा. वलवन्त सिंह जी ने ग्लासरीआफ मेजिटेविलड्ग्स इन वृहत्रयी में स्पष्ट किया है। देखिये ग्लासरी आफ वृहत्रयी।

34. कुटज

(Holarrhen antidseterica Wall)

कुटज : रघु.सं. 19/39, ऋतु.सं. 3/13, पूर्व में 4

अंसलम्वि कुटजार्जुनस्त्रजस्तस्य, नीपरज साड्गरागिणः।
प्रावृषि प्रमदबर्हिणष्व भूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः।। रघु.स. 19/39

पर्वतों एवं वनों में उपलब्ध कुटज, अर्जुन, कदम्ब आदि वृक्षों का वर्णन कवि ने किया है जो कि वर्षाकाल में खूव हरे भरे दिखाई देते हैं।

मुक्ता कदम्बककुटजार्जुन सर्जनीपान्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सपृच्छदा नुपगदा कुसुमोद्‌गमश्रीः।। ऋतु 3/13
स प्रत्यग्रैः कुटज कुसुमैः कल्पिताध्यार्य तस्मै,
प्रतिः प्रीति प्रमुख वचनं, स्वागतं व्याजहारः।। पूव.मे. 4

वर्षाकाल के बाद शरद् ऋतु में पुष्पित सुगन्धित कुटज वृक्ष का वर्णन महाकवि ने मेघदूत नामक खण्डकाव्य में सुन्दर रूप से किया है। रघुवंश एवं ऋतुसंहार में भी उल्लेख आया है।

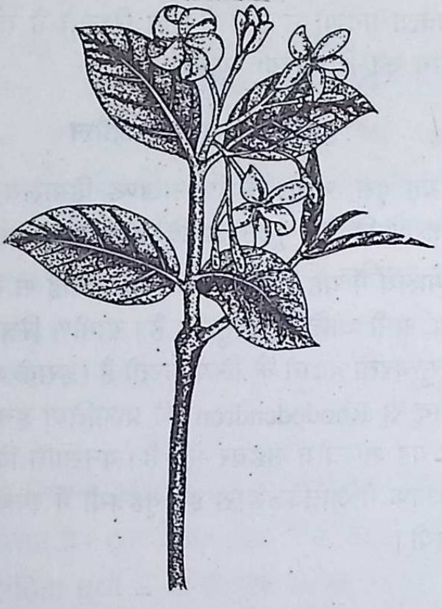

कुटज **Holarrhena Antidysenterica**

वक्तव्य :

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में कुटज के पर्याय : गिरिमल्लिका, शक्र, वत्सक, इन्द्रवृक्ष, कलिंग, इन्द्रयव (बीज) वृक्षक आदि नामों का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद में श्वेत कुटज एवं असित कुटज भेज से दो प्रकारों का उल्लेख मिलता है। असित कुटज के बीज कड़वे नहीं होते हैं। चरक संहिता कल्पस्थान के पंचम अध्याय में द्यठवल ने वत्सक के पुंकुटज और स्त्रीकुटज नाम से दो प्रकारों का वर्णन किया है। द्यढबल मतानुसार दोनों कुटज के बीज समान गुण धर्मी हैं परन्तु सुश्रुत टीकाकार डल्हण मतानुसार पुंकुटज कड़वा एवं अतिसार में विशेष उपयोगी है।

कुटज का सामान्य परिचय : Holarrhena Antidyseterica Wall

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह हिमालय की निचली घाटियों से लेकर भारत के प्रायः सर्वत्र ऊष्ण प्रदेशों में सुलभ है। वृक्ष मध्यम आकार का होता है। पुष्प सगुच्छ, ग्रीष्म के अन्त में एवं वर्षाकाल में खिलते हैं। पुष्प श्वेत रंग के एवं सुगन्धित होते हैं। कलियां लम्बी दो–दो होती हैं। इन कलियों में यव सदृश जो बीज होते हैं उन्हें इन्द्रयव कहते हैं।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

प्रयोज्य अंगः बीज, छाल, पुष्प।

गुणों की छष्ठी से यह कटु तिक्त, कषाय, एवं त्रिदोषघ्न है। प्रवाहिका–अतिसार अर्श (बवासीर) की यह रामवाण औषधी है। चरक ने अर्शोघ्न एवं स्तन्यरोधन कषायों में इस द्रव्य की गणना की है।

मुख्य योग :

कुटजावलेह (अर्श (बवासीर), अतिसार ग्रहणी, कुटजारिष्ट ज्वर, अतिसार) इन्द्रयवादि क्वाथ (सर्वातिसार) वत्सकादि क्वाथ (सामरक्तातिसार) में प्रयोग किया जाता है। कुटज पुष्प शीतल, तिक्त, कषाय, लघु एवं दीपन होते हैं। फलियों का शाक आमवातनाशक, रूचिकारक, कफनाशक तथा रक्तातिसार, कुष्ठ एवं कृमि में उपयोगी है। **यथा–**

कुटजः कटुको रूक्षो, दीपनस्तुवरो लघुः।
अर्शोतिसार पित्तास्त्र, कफ तृष्णाम पित्तनुत्।।
तत्पुष्पं शीतलं तिक्तं, कषायं लघु दीपनम्।
वातलं कफ, पित्तास्त्र, कुष्ठातिसार जन्तु जित्।।
तस्य शिम्बीभवं शाकं व्यञ्जनं चामवातजित्।
रूच्यं कफघ्नं रक्तातीसार कुष्ठकृमिज्जेयत्।। मदन विनोद नि.

बाल्मीकीय रामायण में कुटज किष्कंधाकाण्ड सुन्दरकाण्ड एवं युद्धकाण्ड में माल्यवान पर्वत के वनों में हनुमान जी के लंका जाते समय मार्ग में एवं सेतु निर्माणार्थ आदि प्रसंगों में उल्लेख आया है।

35. कुन्द (चमेली)

(Jasminum pubecences Willd)

कुन्द : पूर्व में. 49, उत्त. में 53. अभि. शा. 5/20, माल.वि. 3/8, कुभा. सं. 10/29,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऋतु. सं. 4/2

कुन्दक्षेपानुमधुकर श्रीमुषाम् पूर्व.में 49

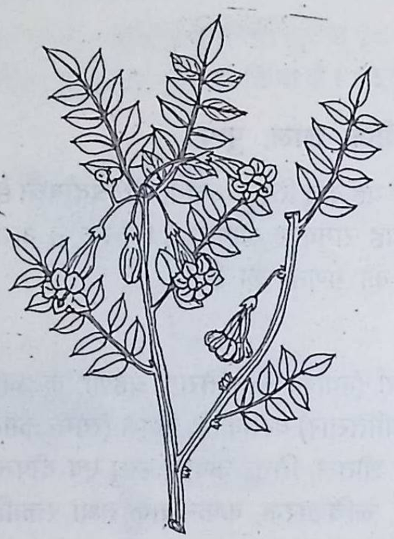

कुन्द Jasminum Pubecences

चमेली के श्वेत पुष्प पर बैठे हुये कृष्ण भ्रमर की शोभा बहुत अनुपम थी जो कि देखने में बहुत सुन्दर लगता था।

प्रातः कुन्द प्रसव शिथिलं, जीवितं धारयेथाः मेघ.5/53
भ्रमर इव निशान्तेकुन्दमन्तस्तुषारम् अभि.शा. 5/20
माधव परिणयपत्रा कतिपय कुसुमेव कुन्दलता।। माल.वि. 3/8

नायिका का कपोल कुन्द की तरह पाण्डुवर्ण का एवं शरीर परिमितालङ्कार है, ऐसा मालूम पड़ता है कि वसन्त में परिणत पत्र और कतिपय फूलों से युक्त कुन्दलता हो।

कुन्दोज्वलानि सकलातपवारणानि,
धूतानि तेन मरुता सूरसैनिकानाम्।
उड्डीयमान कलहंस कुलोपमानि,
मेघाभ धूलिमलिने नभसि प्रसस्त्रुः।। कुमा.सं. 19/27

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्थात श्वेत कुन्द पुष्प सैनिकों के द्वारा उड़ाई गई धूली से कुछ धुमिल प्रतीत होते थे।

मनोहरैः कुङ्कुम रागरक्तैः,
तुषार कुन्देन्दु निभैश्च हारैः **ऋतु.सं. 4/2**

अर्थात् सुन्दरियाँ श्वेत चमेली के पुष्पों को धारण किये हुये बहुत सुन्दर लगती थीं। बाल्मिकीय रामायण में कुन्द किष्कन्धाकाण्ड 1/77 के पंपासरोवर के तटपर एवं पंपासर में उल्लेख आया है।

कुन्द का सामान्य परिचय : Jasminum Pubecences Willd

सामान्यतया अमरकोषकार के अनुसार सुमना, मालती जाति ये तीनों नाम चमेंली के पर्याय आये हैं। परन्तु लेखक के विचार से Jasminum Pubecences आदि के प्रकार भेदों के आधार पर सुमना, जाति एवं मालती तीनों भिन्न–भिन्न द्रव्य विद्वानों को स्वीकार करना चाहिये।

कुन्द पुष्प माघ से चैत्र तक पुष्पित होते हैं। इसकी लता चमेली सद्यश होती है। ये पुष्प वन्यमलिलका सद्यश होते हैं। कुन्दपुष्पों की सुगन्ध उग्र एवं विशेष किस्म की होती है। कुन्द के पुष्प श्वेत रंग के एवं आकर्षक होते हैं। चमेली वन, उपवन एवं पुष्प वाटिका में लगाई जाती है।

वक्तव्य :

सुश्रुत संहिता एवं अष्टांग हृदय में कुन्द नामक द्रव्य का उल्लेख आया है। यथा–

शिरीष कदली कुन्दपुष्प मागधिरकायुतम् **सु.उ.**

"डल्हण ने निर्गन्ध श्वेतपुष्पं कुन्दम्" यह अर्थ किया है, जब कि राजनिघण्टु कार ने कुन्द को महामोदः कहा है। "कुभुवं द्यतिं इति कुन्दम्" इस व्युत्पत्ती के आधार पर जमीन पर परिसृत श्वेत पुष्पों की आभा को कुन्द कहा है। लेखक के विचार से कुन्द पुष्प सुगन्धित होना चाहिये।

कुन्दं तु कथितं माध्यं, सदापुष्पं च तत्स्मृतम्।
कुन्दः शुल्कः सदापुष्पों भृङ्ग बन्धु मनोरमः।।
मुक्ताः पुष्प सदापुष्पः तारपुष्पोऽट्टहासकः। (भा.प्र.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में गुण धर्म

चमेली कषैली, कड़वी, हलकी गरम, चररी, वमनकारक, मुखपाक, मुखरोग, दन्तरोग मस्तकरोगु नेत्ररोग, विष, कुष्ठ, रूधिरदोष एवं कृमिरोग नाशक है। पीली चमेली दन्तशूल, रूधिर विकार एवं कर्णशूल नाशक है। चमेली की अन्य उपजातियां होती हैं। जिसमें वार्षिकी, मल्लिका एवं मुद्गर है। वार्षिकी–शीतल त्रिदोष नाशक एवं मुखरोग नाशक है। मोतिया बेला, मोगरा के पुष्प सुगन्धित सफेद रंग के होते हैं।

पुष्प धारण के गुण : पुष्पों को धारण करने से कान्ति, काम ओज और लक्ष्मी की वृद्धि होती है। पुष्पों का अर्क सुगन्धित शीतल, श्रम, पित्तरोग, एवं मुख रोग नाशक है। **यथा–**

पुष्पस्य धारणं कान्तिवर्धन कामकारकम्।
ओजः श्रीवर्धकक चैव, पापग्रह विनाशनम्।। **नि.र.**
पुष्पद्रव सरः शीतस्तुवरश्रम दाहहा।
वान्ति तृट्पित्तरोगघ्नो मुखरोग विनाशनः।।

विशेष : पिछले कुछ वर्षों से फूलों की सुगन्ध पर पश्चिमी देशों में व्यापक खोज की गई है। जापान भी इस क्षेत्र में काफी आगे है। फूलों की सुंगध का सीधा असर दीमाग पर पड़ता है। यह भी पता चला है कि उत्तेजनात्मक महक खून में एड्रीनेलीन की मात्रा वढ़ा देती है। कुछ सुंगध मनाः को शान्ति प्रदान करती हैं। सुगन्ध के कतिपय चिकित्सकीय़ उपयोगों की खोज की गई है। अनुसन्धान के आधार पर यह पता चला है कि स्मृति और सुगन्ध के बीच गहरा सम्बन्ध है। कतिपय व्यक्तियों की खोई हुई याददास्त सुगन्धों के उपयोग से वापिस आ गई है। फूलों की सुगन्ध प्रेरित करने से बचपन की यादें पुनः जागृत हो जाती है।

36. कुमुद (उत्पलभेद)

कुमुद : रघु.स. 4/19, 6/68, 19/95, मेघ.पू. 42, 60

हंस श्रेणीषु तारासु, कुमुद्वत्सु च वारिषु।
विभूतय स्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव।। **रघु.सं 4/19**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हंसों की श्रेणी तारागण और कुमुद वाले सरोवरों में उसकी यश की विभूति सी फैली दिखाई देती है।

"उषसि सर इव प्रफुल्ल पद्मं कुमुद वनप्रतिपन्न निद्रमासीत्"।।

रघु.स. 6/86

प्रातः काल में फूले कमल और मुंदती कुमुदिनियों वाले सरोवर के समान हुआ।

इन्दोरगतयः पभ्दे सूर्यस्य कुमुदेंशवः **रघु.स. 9**

तस्यादस्या कुमुद विशदा **पूर्व.में. 42**

चन्द्रमा की किरणें कमल में नहीं जातीं, सूर्य की किरणें कुमुद में नहीं जातीं।

निघण्टु ग्रंथों में कुमुद शब्द प्रायः श्वेतकमल, नीलकमल आदि द्रव्यों के पर्यायवाची शब्दों में आया है। देखिये उत्पल, कमल है में। बाल्मीकीय रामायण में उत्पल, कुमुद (नीलोफर) अयोध्याकाण्ड, किष्कन्धाकाण्ड में माल्यवान पर्वत पर सह्यगिरि के जलाशय में एवं वनों की शोभा का वर्णन करते हुये उल्लेख आया है।

37. कुवलय (नीलकमल)

कुवलय : मेघ. उ. 35

मीन क्षोमाच्चलकुवलय श्री तुलाग्नेष्यतीती **उत्तर. मे. 35,**

महाकवि कालिदास ने मेघदूत नामक काव्य में कुवलय शब्द का उल्लेख किया है जो नीलकमल है। नीलोत्पल का पर्याय कुवलय आया है। अतः कुवलयः से नीलोत्पल का प्रयोग करना चाहिये। देखिये नीलोत्पल एवं उत्पल। महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में कमल का उल्लेख अनेकों पर्यायों के नामों से विशेष रूप से किया है। बाल्मीकीय रामायण में अरण्य काण्ड के 74/27 में शवरी के आश्रम के प्रसंग में उल्लेख है।

38. कुश (दर्भ)

(Desmostachya bipinnata Linn)

कुश : रघु.स. 5/9, 8/18 अभिज्ञान 1/26, 9/17, 13/43 कुमार. 5/33

क्रियानिमित्तेस्वपि वत्सलत्वाद् भग्न कामा मुनिभिः कुशेषु।।

रघु.स. 5/9

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मृगशावक ऋषियों के प्रिय कुशतृणों की रक्षा करते हुये घास चरते हैं एवं राजा वनसम्पदा की सभी कुशलता आश्रमवासियो से पूछते हैं।

परिद्येतु मुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्ठरम्   रघु.स. 8/18

युवराज ने पुजा की सुरक्षा हेतु धर्माशन स्वीकार किया एवं मन की एकाग्रता के लिये एकान्त में कुशासन स्वीकार किया।

अजिनदण्ड भृतं कुशमेखलाम्।   रघु.स. 9/19
एषोऽक्ष मालावलंय मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
रघु.स. 13/43

ऊपर को भुजा उठाये यह तपस्वी रूद्राक्ष के माला की कंकन वाली मृगों की खुजान वाली एवं कुश के तोड़ने वाली दाहिनी भुजा मेरे सत्कार निमित्त है।

अपिक्रियाऽर्थ सुलभं समित्कुशं, जलान्यपि स्नान विधि क्षमाणिते।
.... शरीरमाद्यं खलुधर्म साधनम्।   कुमार. 5/33

जिस तपोवन में हवन की सामग्री सुलभ है एवं आसन के लिये कुश आदि सुलभ है।

''अभिनव कुशसूचि परिक्षतं में चरणम्''   अभि.शा. 1/36

कुश का सामान्य परिचय :–

कुश भी मुज्ज जाति की एक किस्म है। दर्भद्वय भेदों में कुश भी एक प्रकार है। यह तृण जाति की वनस्पति है। काण्ड बहुवर्षायु होते हैं। खुले घास के मैदानों में यह सर्वत्र उपलब्ध है। चरक सुश्रुत ने कुश, काश तथा दर्भ का कतिपय स्थलों पर एक साथ उल्लेख किया है। डल्हण ने कुशः ह्रस्वदर्भः ह्रस्वोमृदु सूचिपत्र कासः चामरपुष्पः चामरपत्रः, दर्भः पृथुलः खरपत्रः दीर्घः'' इस प्रकार से व्याख्या की है। राजनिघण्टुकार में श्वेत दर्भ भेद भी लिखा है। यह मूल के रूप में विशेष गुणकारी हैं। शीतल, मूत्रल, पिपासाहर अश्मरी, एवं प्रदर में उपयोगी है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

कुश को सामान्य भाषा में डाभ भी कहते है। आयुर्वेद के दर्भद्वय कहा है दोनों प्रकार की दाभ त्रिदोषनाशक, मधुर, कषैली, शीतल, मूत्रल, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी) तृषा, बस्तिरोग एवं प्रदर रोगों मे उपयोगी है। जड़ शीतल रूचिकारक कामला और पित्तविकार नाशक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दर्भः शीतो रूचिकरो मधुरस्तुवरो मतः।
स्निग्धः कफकरः, शुक्ररक्त शुद्धिकरोमतः।।
कफं रक्तं रक्तपित्तं, पित्तं श्वासं तृष्णां तथा।
मूत्रकृच्छ्रंबस्तिशूलं कामलां प्रदरं तथा।
रक्तदोषं विसर्पं च, छर्दि मूर्च्छा तथाऽश्मरीम्।।
नाशयेदिति चे प्रोक्तो, मूलं तस्य च शीतलम्। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में कुश अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, सुन्दरकाण्ड आदि के वनो के प्रसंग में, चित्रकूट में पंचवटी में, पंचवटी में पर्णशाला के रूप में हवि के उपयोग में, कुशशय्या के रूप में, लक्ष्मण और इन्द्रजीत के युद्ध में आसन के लिये एवं मार्जन के लिये कुश का उल्लेख आया है।

39. कुसुम्भ
(Carthamus tinctoris Linn)

कुसुम्भः ऋतु.स. 1/24, 6/4

विकचनव कुसुम्भ स्वच्छ सिन्दूरभाषा,
प्रवलपवन वेगोद्भूत वेगेन तूर्णम्।
तट विटप लताग्राऽऽलिंगना व्याकुलेन,
दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेनः।। **ऋतु.स. 1/24**
कुसुम्भ रागारूणितैर्दुकूलैः,
नितम्ब विम्वानि विलासिनीनाम्।। **ऋतु.स. 6/4**

कुसुम्भ पुष्प केसरिया लाल रंग के होते हैं एवं सुन्दरियों के कुसुम्भ पुष्प सद्यशरंग का सिन्दूर मस्तक पर धारण की हुई है तथा केसरिया रक्त वस्त्रों को धारण की हुई बहुत सुन्दर लगती है।

कुसुम्भ का सामान्य परिचय : Carthamus tinctoris Linn

कुस् संश्लेषणें धातु से कुसुम्भ शब्द बना है, जिसका अर्थ है कि जो कपड़ों के रंगने के लिये भी प्रयोग होता है। यह 1–3 फुट तक ऊंचा क्षुप जांति का पौधा है। पर्ण लम्ब पत्रतट कटे हुये एवं कांटेदार होते हैं। पुष्प केसरिया लाल रंग के गोल गुच्छों में खिलते हैं। फल–चतुष्कोणीय, श्वेत, मसृण एवं शंख की आकृति में होते हैं। इसकी प्रायः खेती की जाती है। पुष्प पुंकेशर रंग में केसर सद्यश होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोज्य अंग :

पत्र, बीजतेल, खाने के उपयोग में आता है। गुंणधर्मो की द्यष्ठी से यह वातकारक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त और कफ का नाश करने वाला है। प्रमेहों में कुसुम्भ तेल का पान उपयोगी माना जाता है।

वक्तव्य :

चरक ने स्थावर स्नेह योनि वर्ग में कुसुम्भ की गणना की है। कुसुम्भ तेल के सेवन से कफज कृमि में होता है। ऐसा चरक का मत है। (चरक वि. 7रु/11, 17)। हृदय के रोगियों में इसका तेल उपयोगी माना जाता है। सफोला नामक दवा का विज्ञापन इस बात का प्रमाण है। सुश्रुत ने इसे कृमिध्न कहा है। विदाही भावात् अहितः कुसुम्भः "ऐसा पाठ दिया है। प्राचीन काल से कुसुम्भ का रंग प्रसिद्ध है। यही कारण है कि इसे वस्त्र रंजक कहते हैं।

खुजली में कुसुम्भ तेल बहुत उपयोगी माना जाता है। दिन में 2–3 बार अभ्यंग करने से खारिस में भी लाभ होता है।

द्यष्ठिं प्रसादं कुरूते विशेषाद, रूचिप्रदं दीप्तिकर च बह्मे।
कुसुम्भ तेलं कृमिहारि तेजो, बलावहं यक्ष्ममलापहञ्च।। **रा.नि.**
स्यात्कुसुम्भं वह्मि शिरवं वस्त्ररंज्जक मित्यपि।। **भा.प्र.**

40. कूटशाल्मलि
(Ceiba pentandra Linn)

कूटशाल्मली : रघु.स. 12/95,

अयः शंकुचितांरक्षः शतघ्नी मथ शत्रवे।
हृतां वैवस्वतास्येव कूटशाल्मलि माक्षिपत्।। **रघु.स. 12/95**

कवि का प्रयोजन कूटशाल्मली से सेमल पुष्प सद्यश विशेष से है। या सेमल की बनी हुई यष्ठी लोहे के कांटों से जड़ी हुई यष्ठी से अभिःप्राय है।

कूटशाल्मली का सामान्य परिचय : Ceiba Pentandra Linn.

इसके वृक्ष पश्चिम, या दक्षिण के ऊष्ण प्रदेशों के जंगलों में पाये जाते हैं। वृक्ष मध्यमाकार प्रमाण का होता है। पुष्प छोटे एवं श्वेत रंग के होते हैं। एक लाल रंग का होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

राजनिघण्टुकार ने कूटशाल्मली को राहितक का पर्याय माना है जो कि दोनों से–भिन्न द्रव्य है। काला सेमल तिक्त तथा कटु कफ वात का भेदन करने वाला है। यह प्लीहा उदर रोग, यकृत, गुल्म, विष एवं भूत–वाधाहर है। इसकी गोंद को भी मोचरस कहते हैं। यह गोंद गहरा कुछ भूरे रंग का एवं अपारदर्शी होता है। संस्कृत साहित्य में शात्मली (सेमल) वृक्ष का भी उल्लेख है।

कूट शाल्मलिकस्तिक्तः कटुकः कफवातनुत्।
भेद्युष्णः प्लीहजठरः यकृतगुल्मविषापहः।।
भूतानाह विवन्धास्त्र भेद शूल कफापहः।। **भा.प्र.**

41. केतकी (केड़वा)

(Pandanus tectorius Soland)

केतकी : 204155, 6117, ऋतु.स. 2/97, 23, 26, पर्व.मे.द्य.–23

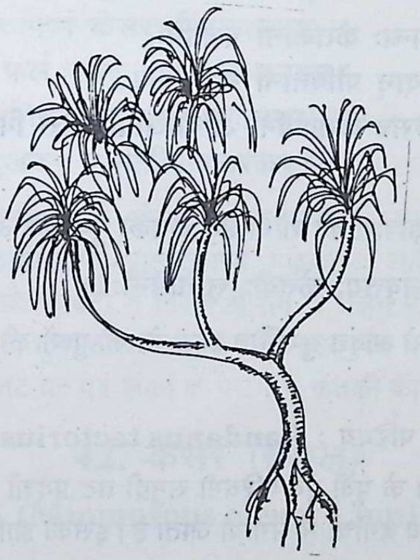

केतकी (केड़वा) **Pandanus Tectorius**

मुरला मारूतोद् धूतमगमत्केतकं रजः।
तद्योध वारबाणानामयत्नपटवासताम्।। रघु.स. 4156

मूरलानदी के पवन से उड़ाई हुई केतकी के फूलों की रज से योधाओं की कवचें सुगंध पूर्ण थीं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विलासिनीविभ्रमद-न्तपत्रमापाण्डुरं केतकवर्हमन्थः।
प्रिया नितम्बो चित संनिवेशें विपाटयामास युवानखाग्रैः।।

रघु.स. 6/17

सुन्दरियों के नितम्वों पर लगने वाले नरवों से स्त्रियाँ विलास निमित्त दन्तपत्र बने हुये पीतवर्ण केतकी के पत्रों की नोचते हुआ अबलोकित है।

कदम्व सर्जार्जुन नीपकेतकीः,
प्रकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः।। ऋतु.स. 2/19

वर्षाकालीन केतकी पुष्प का सुन्दर वर्णन कवि ने किया है।
हसित मिवविधन्ते सूचि-भिः केतकीनाम्।
नवसलिल निषेकाच्छिन्नतापोवनान्तः।। ऋतु.स. 2-23

ग्रीष्म कालीन उष्णता को शमन करने हेतु कवि ने वर्षाकालीन केतकी पुष्प का उल्लेख किया है।

जनिततरूचिरगन्धः केतकीनां रजोभिः,
अपहरति नभस्वान् प्रोषितानां मनांसि।। ऋतु.स. 2/26
''मालाकदम्वकेसर केतकीभिः आयोजिताशिरसि विभ्रति
योषिताऽद्यः''। ऋतु. सं.

सुन्दरियों के चूड़ापाश की शोभा हेतु केतकी पुष्प का उल्लेख मिलता है।

पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः केतकैः सूचिभिन्नैः।। पूर्व.मेघ 23

कण्टकिपल्लवों से आवृंत सुगन्धित श्वेत केतकी पुष्पों की शोभा का उल्लेख कवि ने किया है।

केतकी का सामान्य परिचय : Pandanus tectorius Soland

यह दक्षिण भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्री तट प्रदेशों में पाया जाता है। सुगन्धित पुष्पों के लिये बगीचों में लगाया जाता है। इसकी झाड़ियां समस्त भारत वर्ष में पायी जाती हैं।

केवड़े के गुल्म खजूर सद्यश मालूम होते हैं। इसकी कतिपय वायव्य मूल निकलती रहती हैं। पर्ण काफी लम्बे तलवार सद्यश होते हैं। पर्णतटों पर कांटे होते हैं। गुल्म के मध्य से गोफा निकलता है जोकि मकई के सद्यश सुगन्धित मटमैला सफेद रंग का होता है। केवड़े पुष्प का अर्क एवं शर्वत उपयोगी है। केवड़े

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुष्प का इत्र भी तैयार किया जाता है। पुष्प वर्षाकाल में खिलते हैं, यही कारण है कि कवियों ने वर्षाकालीन केतकी पुष्प का विशेष उल्लेख किया है। दूसरी सुवर्ण केतकी होती है। इसमें विशेष सुगन्धी पाई जाती है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

गुणधर्मो की द्यष्ठी से यह लघु, स्निगध मधुर, सौमनस्यजनन, दीपन–पाचन, अनुलोभन ज्वरघ्न, है। मूल–मूत्रसंग्रहणीय एवं प्रमेहनाशक है। श्वेत केतकी केवड़ा चरपरा, स्वादिष्ट, कफनाशक होता है। केतकी का पुष्प कान्तिकारक, वालों की दुर्गन्ध को दूर करने वाला, पुष्पकेसर–गण्डू एवं त्वक् विकार नाशक है। फल–वात, प्रमेह और कफ नाशक है। सुवर्ण केतकी नेत्रों के लिए हितकारी, हलके विषविकार एवं कफनाशक है। फूल–सुगन्धित एवं काम को बढ़ाने वाला है।

श्वेता सु केतकी कट्वी, स्वाद्वी तिक्ता लघुः स्मृता।
विषं कफं नाशयति, पुष्पमस्या लघुस्मृतम्।।
कटुतिक्तं कान्तिकरं मुष्णवात कफापहम्।
केश दुर्गन्ध तापघ्नं केसरः सिध्मकण्डुहा।।
किञ्चिदुष्णा फलं स्वादु वातमेहकफापहम्।
सुवर्ण केतकीतिक्ता, नेत्रया चौष्णालघुस्मृता।
अस्यापुष्पं सुखकर कामोद्दीपनकारकम्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में केतकी (केवड़ा) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड किष्कन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड युद्धकाण्ड आदिस्थलों में पुष्पार्क केतकाभारंग के लिये पंचवटी में विरही श्रीराम के प्रसंग में, ऋष्यमूकपर्वत पर, पंपासर के अरण्य में, तुंगभद्रानदी के किनारे, माल्यपर्वत पर वर्षाऋतु के प्रसंग में, पश्चिमी समुद्र तट पर एवं लंका के प्रसंग में केतकी का उल्लेख मिलता है।

42. केसर (बकुल)

(Minmusops elengi Linn)

केसर (केशर) : रघु.स. 9/36, 45, कुमार.स. 3/55, 8/25, उत्त.मे. 8/18, ऋतु. 2/20, अभि.शा. 1/30, 4/129

ललि-तविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्ध पराजितकेसरम्।
पतिषु निविशुर्मघुमंगनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्।।

रघु.सं. 9/36

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्त्रियों ने मधुर विलास कराने में चतुर मनोहर गन्ध से बकुल पुष्प के पराग का जीतने वाला कामदेव का मित्र मधुपतियों में रसभंग रहित पान किया। केसर वकुलपुष्पः इति। सामान्य भाषा में इसे मौलसरी कहते हैं।

कुसुम के सररेणु मलिव्रजाः सपनो पवनोत्थितमन्वयुः।।

रघु.स. 9/45

ऋतु श्री के मुख को सुन्दर करने वाले चुर्ण केसर के उपवन की वायु बहुत सुन्दर प्रतीत होती थी।

स्त्रतां निम्बादव लम्वमाना पुनः पुनः केसर दामकाञ्चीम्।
न्यासी कृतां स्थानविदास्मरेण मौर्वी द्वितीया मिवकार्मुकस्य।।

कुमा.स. 3/35

पार्वती ने अपनी केसर की माला से बनी करघनी को जाते समय रुकावट न हो, इसलिये स्वयं उपर खसकाकर हाथ में पकड़ी हुई पार्वती को देखा।

आचचाम स लवंगकेसर श्चाटुकार इव दक्षिणानिलः।।

कुमार.स. 8/25

मालाकदम्व नवकेशर केतकीभिः,
आयोजिताः शिरषि विभ्रतियोषितोऽथ।। **ऋतु. 2/20**

ऋतुसंहार में क़वी ने वर्षाकालीन केशर पुष्प से बकुल पुष्प का निर्देश किया है।

रक्ताशोक श्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः।
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृते माधिवीमण्डपस्य।। **उत्त.मे.18**

एष : वातेरिक : पल्लवांगुलीभिः स्त्वरयतीव मां केशरवृक्षकः
यावदेन समावयामि। **अभि.शा. 11 अंक**
कालान्तरक्षमा केसरमालिका" **अभि.शा. 4**

अभिज्ञान शाकुन्तल नामक काव्य में कवि ने केशर वृक्ष का उल्लेख किया है जिसका आशय वकुल वृक्ष से है ऐसा प्रतीत होता है।

वक्तव्य :

केशरा सन्ति अस्य। के-जले सरति इति वा। इस शब्दिक ब्युत्पत्ती के आधार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर जिस पुष्प विशेष के पुंकेशर जल में आसानी से तैरने लग जायं उसे केसर कहते हैं। कवियों ने संस्कृत साहित्य में केसर के सुगन्धित पुष्पों का उल्लेख वसन्तऋतु में विशेष रूप से किया है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में केसर शब्द का उल्लेख कुंकुम, नागकेशर पद्मकेशर एवं बकुल के लिये आया है। अधिकतर विद्वान काश्मीर प्रदेश में उत्पन्न बहुवर्षायु कन्द प्रधान एक वर्षायु काण्ड के पौधे Crocaus Sativus को केसर मानते हैं, तथा प्रचलित भाषा में इसी को शास्त्रीय केसर (कुंकुम) कहते हैं। महाकवि का शास्त्रीय केसर वकुल है जिसका कि वानस्पतिक परिचय यहां पर दिया जा रहा है। वृद्धबकुल को शिवमल्ली कहा है। इसके पुष्पों को बुकपुष्प कहा है।

केसर (बकुल) का परिचय : Mimusopis elengi Linn

बकुल के वृक्ष भारत के समस्त उद्यानों एवं सड़कों के किनारे लगाये हुये मिलते हैं। यह मध्यम आकार का सदाहरित वृक्ष है। इसकी शाखा प्रशाखायें चारों तरफ फैली हुई होती हैं पत्तियां चिकनी, गोल एवं कुछ अण्डाकार की होती हैं। पुष्प श्वेत रंग के एवं अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। फल अण्डाकार पकने पर पीत एवं नारंगी वर्ण का होता है। ग्रीष्म से शरद् ऋतु तक इस वृक्ष पर पुष्प खिलते हैं।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

गुण धर्मों की द्यष्ठी से बकुल कटुरस, कटु विपाक एवं कफपित्त शामक है। औषध प्रयोग में पुष्प, फल एवं छाल का प्रयोग किया जता है। छाल चूर्ण का उपयोग दन्तमंजन–चूर्णों में किया जाता है। पुष्प मनोरम–सुगन्धि के कारण मनः प्रसादक, हृद्य एवं मेध्य है। फल एवं छाल संग्राही, वेदनास्थापन और विशेषकर योनिस्त्रावक तथा शुक्रमेहघ्न होते हैं। बकुल पुष्प शीतल, रूचिकारक मधुर, स्निग्ध एवं मल संग्राहक है। फल कषैले, मधुर शीतल, कफ–पित्तनाशक, दांतों को स्थिर करने वाला और विशद होता है। यथा–

बकुलः शीतलोहृद्योो विषदोषविनाशनः।
मधुरं च कषायश्च, मदाह्वयो हर्षदायकः।। **रा.नि.**
पुष्पं कषायं शीतं पित्तकफास्त्रजित्।। **रा.व.**
बकुलस्य फलं रूक्ष विशदंस्तम्भनं गुरुः।
कषायं मधुरं शीतं लेखनं कफपित्तहृत्त्।।
दन्तदाठ्यकरं ग्राहि बिवन्धाऽध्मान वातकृत्।
तद्वीजं दन्तचालघ्नं, न स्याच्छीर्षरूजापहम्।। **शो.नि.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

43. कोविदार (कांचनार)
(Bauhinia variegata Linn)

कोविदार : ऋतु.स. 3/6

कांचनार (कोविदार) Bauhinia verigata Linn.

मन्दानिला कुलित चारूतलाग्रशाखः,
पुष्पोद्गम प्रचय कोमल पल्लवाग्रः।
मन्त द्विरेफ परिपीत प्रधुप्रसेकः,
चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः।। ऋतु.स. 3/6

कवि ने शरद् ऋतु का वर्णन करते हुये कोविदार (कंचनार) पुष्पों की सुन्दरता का उल्लेख किया है।

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में कोविदार एवं कर्वुदार ये शब्द आये हैं। चरक संहिता के टीकाकार चक्रपाणी ने कर्वुदार एवं कोविदार की व्याख्या इस प्रकार से की है। यथा–

कोविदार स्वनाम ख्यातः सः शरदि पुष्पति।
कर्वुदारः कंचनारः स वसन्ते पुष्पति।। चरक.क.अ. 2/14

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शरद्ऋतु में पुष्पित होने वाला कोविदार कहलाता है एवं वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाला कर्वुदार कहलाता है। कोविदार के पुष्प रमणीय एवं मनोहर होते हैं।

कोविदार का संक्षिप्त परिचय : Bauhinia variegata Linn

यह हिमालय की तराई में उत्पन्न होने वाला मध्यम आकार का वृक्ष है। भारत वर्ष के जंगलों के निचली पहाड़ियों में इसके स्वयं जात वृक्ष पाये जाते हैं। सौन्दर्य के लिये इसके वृक्ष बगीचों में लगाये जाते हैं। पुष्पदण्ड छोटे एवं पत्रकोंणों से निकलते हैं। पतझड़ होने पर प्रायः पुष्प पुष्पित होते हैं। लाल एवं बैंगनी रंग का होता है।

कांचनार की अविकसित पुष्पकलिका का शाक एवं अचार बनाया जाता है। छाल का औषध में प्रयोग किया जाता है आयुर्वेद में गुण धर्मों के आधार पर कचनार छाल रुक्ष, लघु, कषाय, कटुविपाक एवं शीतवीर्य होता है। गण्डमाला पर इसका अच्छा प्रभाव है। व्रणशोधन एवं रोपण स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय मेदो–रोग, कुष्ठ, प्रमेह एवं ग्रन्थिशोथ परं उपयोगी है। कांचनार गुग्गुलू एवं कांचनार क्वाथ आदि इसके मुख्य घटक हैं। श्वेत, रक्त एवं पीत पुष्प भेद से निघण्टुकारों ने तीन किष्मों का उल्लेख किया है। लाल कचनार शीतल, सारक, अग्निदीपक, कषैला, ग्राही गण्डमाला, रक्तपित्त, गुदसश एवं त्वक् दोष–नाशक है। सफेद कचनार अग्निदीपक, कषैला, व्रण को भरने वाला, मल–रोधक मूत्रकृच्छ्र, दाह एवं वातनाशक है। पीला कचनार ग्राही, दीपन, एवं व्रर्ण रोपक माना जाता है। यथा–

रक्तस्तु कांचनः शीत सरो हयग्निदीपनः
सप्रोक्त स्तुवरोग्राही, कफपित्त व्रण क्रिमीन्।।
गण्डमाला रक्तपित्तं कुष्ठवातांश्चनाशयेत्।
गुदभ्रंशं रक्तपित्तं नाशयेत्पुष्पामस्य च।।
शीतलं तुवरं रूक्षं संग्राहिमधुरं लघु।
पित्तं क्षयं च प्रदरं, कासं रक्तरूजं हरेत्।। **नि.र.**
तथा कोविदारो दीपनः स्यात्कषायो व्रणरोपणः।
संग्राही सारकः स्वादुः पर्णशाकेषु चोत्तमः।।
मूत्रकृच्छ्रं त्रिदोषं च, शोषं दाह कफं तथा।
वातं हरेत्पुष्पगुणा रक्ताकांचन पुष्पवत्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में कोविदार (कचनार) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

किष्कन्धाकाण्ड एवं युद्धकाण्ड आदि स्थलो में कोविदार का ध्वज के रूप में पंपासर के अरण्य में मालयवान् पर्वत पर लंका में हनुमान जी द्वारा कोविदार वं सह्यपर्वत कानन के प्रसंग में उल्लेख आया है।

44. कीचक (वांस)

(Bambusa bambos Durce)

कीचक : रघु.सं. 2/12, 4/73

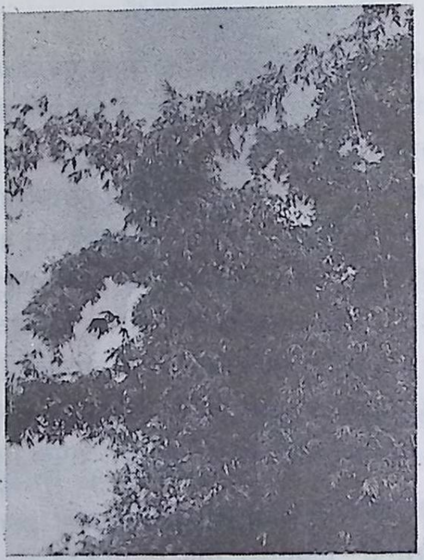

कीचक (वास) **Bambusa bambos**

स कीचकै र्मारूतपूर्णरन्ध्रैः कुजभ्दिरापादितवंशकृत्यम्।
सुश्राव कुज्जेषु यशः स्वमुच्चैरूद्गीयमान वनदेवताभिः।।
रघु.स. 2/12

राजा दिलीप को पवनपूर्ण छिद्रवाले शब्दाययान वांशों से सम्पादन किये वंश–कुंज उनके यश को गाते थे।

भूर्जेषु मर्मरी भूता कीचकध्वनि हेतवः।
गंङ्गाशीकणो मार्गे मरूतस्तं सिषेवरे।। रघु 4/93

मार्ग में भोजपत्रों में मर्मर शब्द करने वाला तथा वांसों में शब्द करने वाली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हवा का सेवन किया। वांस काण्ड सुषिर होने से हवा के चलने पर ध्वनित होते हैं। ऐसी कवि की कल्पना है।

कीचक (वांस) का सामान्य परिचय : Bambusa bambos Durce.

कीचक शब्द बांस के लिये आया है। इसकी झाड़ियां भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं। यह विशेषकर उड़ीसा, आसाम, पूर्वीबंगाल एवं हिमालय की तराई आदि भागों में पाया जाता है। मादा बांस के खोखले भाग से बंशलोचन प्राप्त होता है। बांस का काण्ड मूल से ही अनेक शाखाओं वाला होता है मूलस्तम्भ काफी मोटा होता है। काण्ड प्रायः सीधा होता है। पत्तियां रेखाकार, भालाकार एवं अग्रुभाग नुकीला होता है। काफी पुराना होने पर बांस पर पुष्प एवं फल लगते हैं। बीज यवाकार होते हैं, जिसके कारण इनको वंशयव कहते हैं। भारत में बांस की अनेकों जातियां पाई जाती हैं।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

औषध व्यवहार में वंशलोचन, मूल, पत्र, पत्रंअंकुर बीज का उपयोग होता है। यह शीतवीर्य वात–पित्त शमक ग्राही, कफनिसारक है। इसके अतिरिक्त मूत्रल, ज्वरघ्न एवं बल्य है। बांस के अंकुर पचने में भारी सारक कषैले, चरपरे, कफकारक, स्वादिष्ट एवं वातपित्त कारक हैं। बांस के चावल कषैले मधुर, पुष्टिकारक, बलवर्धक तथा कफ, पित्त, विष एवं प्रमेह नाशक हैं। इसके ग्रंथी भाग को चीरकर सारभाग बंशलोचन कहा जाता है। **यथा**–वंशलोचन उपयोगी द्रव्य है।

बंशोम्लः तुवरस्तिक्तः शीतल सारको मतः।
वस्तिशुद्धिकरः स्वादुश्छेदनो भेदको मतः।।
कफं रक्त रूजं पित्तं, कुष्ठं शोथं व्रणं तथा।
मूत्रकृच्छ्र प्रमेहार्शान् हान्ति चैव विनाशयेत्।। नि.र.

45. कर्कन्धु (बेर)

(Zizyphus numularia W. & A.)

कर्कन्ध : अभिज्ञा. अ. 4/4, 6/12

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या।। अ.शा.अ. 4/4

कवि ने अभिज्ञान शाकुन्तल नामक काव्य में बदरी फल का उल्लेख किया है जिसे कि साधारण भाषा में झड़ेवेर या जंगली बेर कहते हैं। शवरी के वेर सुदामा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के तण्डुल यह लोक कहावत सर्वत्र प्रचलित है। जंगली फलों में बेर मुख्य फल है।

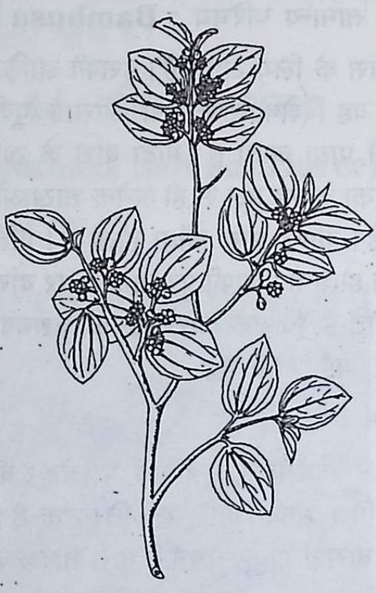

कर्कन्धु **Zizyphus numularia W. & A.**

कर्कन्धु का सामान्य परिचय : Zizyphus numularia W. & A.

इसकी कांटेदार झाड़ियां प्राय : सर्वत्र सुलभ हैं ये झाडियां भारतीय उष्ण प्रदेशे में प्रायः सर्वत्र सुलभ हैं। ग्रामीण भाषा में इसको जंगली बेर या झड़बेर कहते हैं। फल पकने पर लालवर्ण के होते हैं। इसकी कतिपय जातियाँ लगाई हुई एवं जंगलों में भी पाई जाती हैं। जिसमें उन्नाव, घोण्ट, कोलवदर आदि मुख्य हैं। ये सभी ग्राही, शोथघ्न एवं पित्तशामक होते हैं। यथा –

कर्कन्धु कोलवदरं मामं पित्तकफापहम्।
पक्वं पित्तानिलहरं, स्निग्धं सुमधुरं सरम्।। **सुश्रुतः**

वक्तव्य :

चरक में बृदरबीज का हिक्कानिग्रहण, बदरफल का श्रमहर और हृद्य आदि तथा बदर का विरेचनोपग, स्वेदोपग दशेमानि में उल्लेख आया है। विरेचनोपग दशेमानि में कर्कन्धु का उल्लेख है। फलासव में तीनों का उल्लेख है। सुश्रुत ने वातसंशमन वर्ग में कोल एवं वदर का उल्लेख किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में बदरी (बेर) बालकाण्ड 24/15 विश्वामित्र के साथ वन जाते समय मार्ग में, अयोध्याकाण्ड 55/8 भारद्वाज आश्रम से चित्रकूट की राह में एवं पिण्डदान के लिये बदरी का उपयोग आदि सन्दर्भ मिलते हैं।

46. खर्जूरी (खजूर)

(Phoenix dactylifera Linn.)

खर्जूर : रघु.स. 4/59

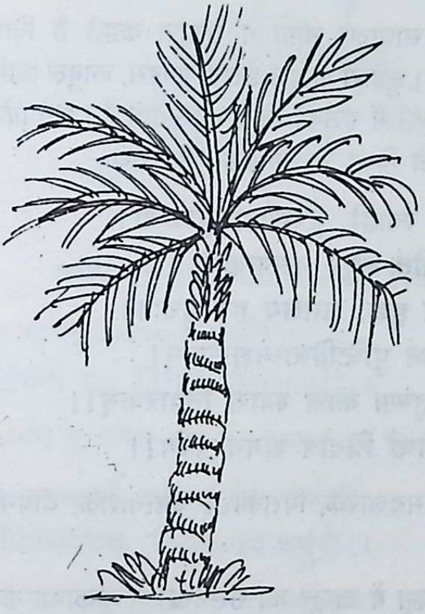

खर्जूरी **Phoenix dactylifera Linn.**

खर्जूरीस्कन्ध नद्धानां मदोद्गार सुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतु पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः।। **रघु.स. 4/5**

खर्जूर के स्कन्धों में बंधे हुये हाथियों के मद निकलने के सुगन्धिवाले गण्डस्थलों में पुन्नाग वृक्षों से भौंरे टूट पड़े।

अभिज्ञान, शाकुन्तल नामक काव्य में पिण्डखर्जूर का उल्लेख मिलता है। यथा–

यथाकस्यापि पिण्डखर्जूरै : उद्वेजितस्य तिन्तिण्याम
भिलाषो भवेत्तया स्त्रीरत्न परिभाविनी भवतः इयमभ्यर्थना।।

(अभिज्ञानशकुन्तल अध्याय 2)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खर्जूर का सामान्य परिचय : Phoenix Sylvestris Roxb

इसके वृक्ष भारत के ऊष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं। निघण्टुग्रंथों में क्षुद्र खर्जूर, पिण्डखर्जूर आदि भेदों का उल्लेख मिलता है। पिण्ड खर्जूर काबुल आदि स्थानों पर अधिकतर पाया जाता है। इनके वृक्ष ताड़ वृक्ष सद्यश होते हैं। पर्ण 6–7 फुट तक लम्बे पक्षाकार होते हैं। इससे मद्य तैयार किया जाता है। गुणों की द्यष्ठी से फल वल्य एवं पौष्टिक होता है। इसके वृक्ष का रस शीतल, मूत्रजनन तथा पौष्टिक पेय माना जाता है। इसका मद्य दीपन, पाचन तथा उत्तेजक होता है। इसकी शर्करा अधिक पौष्टिक एवं सारक होती है।

पिण्डखर्जूर को साधारण भाषा में छुहारा कहते हैं ज़िसे कि Phoenix Dactylifera कहते हैं। छुहारा के वृक्ष ईरान, फारस, काबुल आदि देशों में अधिक तर पाये जाते हैं। भारत में इसकी खेती की जाती है। अधपके फल का छुहारा एवं पके हुये फलों को पिण्ड खजूर कहते हैं। यथा–

भूमि खर्जूरिका स्वाद्वी, दुरारोहामृदुच्छदा।
खर्जूरी त्रितयंशीतं मधुरं रसपाकयोः।।
स्निग्ध रूचिकर हृद्यं, क्षतक्षय हरं गुरुः।।
तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्ठम्भशुक्रलम्।
ज्वरामिघात क्षुतृष्णा कास श्वास निवारकम्।। **भा.प्र.**
पक्वमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोष शमन परम।। **आ.स.**

खजूर की ताड़ी मदकारक, पित्तकारक वातनाशक, दीपन, बलकारक और शुक्र वर्धक है।

बाल्मीकीय रामायण में खजूर का उल्लेख अरण्यकाण्ड के 15/16 पंचवटी में, धान की बालों से खर्जूर पुष्प की समानता, एवं जाते समय हनुमान जी ने लंका में खजूर के वृक्ष देखे आदि कतिपग प्रसंगों में उल्लेख आया है।

47. चन्दन

(Santalum album Linn)

चन्दन : रघु.सं. 4148, 51, 10142, 6/64, 8/71, 19/24, 19/23, कुमार. स. 5/5, ऋतु.स. 1/2, 4, 68, 2/21, 3/20, 5/3, 6/12 अभिज्ञान. 4/113, 9/245, 1/44

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चन्दन (श्वेत) Santalum album Linn

भोगिवेष्ठन मार्गेषु-बन्दनानं समर्पितम्।
नास्त्रसत्कारिणां ग्रैवं त्रिपदी छेदिनामपि।। रघु.स. 4/48

चन्दन वृक्ष अति सुगन्धित होने के कारण उन पर सर्प लिपटे रहते हैं।

स निर्विश्य यथाकामं तटेस्वालीन चन्दनौ
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौमलय दर्दुरौ।। रघु.स. 4/51

रघु ने मलय एवं दुर्दुर पर्वतों के किनारे चन्दन वृक्ष देखे।

स्त्रष्ठुर्वराति सर्पात्तु मयात्स्य दुरात्मनः।
अत्यारूठं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः।। रघु.स. 10/42

चन्दन वृक्ष से सर्प का विशेष स्नेह कवि ने इस श्लोक में दर्शाया है।

ताम्बूलवल्ली परिणद्ध पूगा स्वेलालतालिंगितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासुरन्तु, प्रसीदशश्वन्मलयस्थलीषु।। रघु.स. 6/64

मलयाचलपर्वत चन्दन, पान, सुपारी, एला आदि वृक्षों से व्याप्त है। ऐसा उल्लेख महाकवि कालिदास ने किया है।

विससर्ज तदन्त्य मण्डना मनलामागुरूचंदनैधसे। रघु.स. 8/91

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चन्दनेनाङ्ग रागं च मृगनाभिसुगन्धिना।
समापय्य ता श्चक्रुः पत्तं विन्यस्तरोचनम्।। **रघु.स. 19/24**

कस्तूरी–चन्दन आदि द्रव्यों का उल्लेख कवि ने सुगन्धित द्रव्यों के लिये किया है।

अध्यशेरत बृहद् भुजान्तरं पीवरस्तन विलुपृचन्दनम्। **रघु.स. 19/32**

रघुवंशमहाकाव्य में स्तनों की सुन्दरता एवं सुगन्धि हेतु चन्दन लेप का उल्लेख मिलता है।

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिका चन्दन धूसराऽलका।
न जातुवाला लभते स्मनिबृतिं तुषार सङ्धर्त शिलातलेस्वपि।।
कुमार. 5/55

पार्वती के कामज्वर की शान्ति हेतु ललाट पर शीत चन्दन का लेप करने पर भी कामज्वर का शमन नहीं हुआ।

मणिप्रकाराः सरसंस चन्दनम्,
शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेब्यताम्।। **ऋतु 1/2**
नितम्व बिम्बै सदुकूलमेख ले स्तनैः सहारा भरणे स चन्दनैः।
ऋतु 1/4
पयोधरा श्चन्दन पङ्कशीतला.......... **ऋतु.1/6**
स चन्दनाम्बु ब्यजनोद् भवानिलैः **ऋतु. 1/8**

कवी ने ऋतुसंहार नामक खण्डकाव्य में ग्रीष्म काल में तापनिवारण हेतु चन्दन के लेप का निर्देश किया है।

कालागुरु प्रचुर चन्दन चर्चिताःङ्गा,
पुष्पावतंस सुरभी कृतकेशपाशाः।
श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे,
शय्यागृहं गुरुगृहात् प्रविशन्तिनार्य्यः।। **ऋतु 2/21**
न चन्दनं चन्द्र मरीचिशीतलम्
नहर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम्।
न वायवः सान्द्र तुषारशीतलाः,
जनस्य चिन्तं रमयन्ति साम्प्रतम्।। **ऋतु 5/3**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः
आलिप्यते चन्दनमंगनाभिः।
करोति कांमः प्रमदाजनाम्।। **ऋतु. 6/12**
मलयतरुन्मूलिता चन्दन लता। **अभिज्ञा 1/44**
तातस्य अंकात् परिभ्रष्ठा मलयतरुन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये **अभिज्ञान 4/113**

चन्दन का सामान्य परिचय : Santalum album Linn.

यह दक्षिण भारत मैसूर, कुर्ग मालावार आदि प्रदेशों के जंगलों में पाया जाता है। बगीचों में सौंदर्य हेतु इसके वृक्ष लगाये जाते हैं। यह मध्यम आकार का वृक्ष है जो कि सदा हरित रहता है। पर्ण–सवृन्त, अण्डाकार, अग्र की फल गोलाकार, कालिमा लिये हुये जामुनी रंग के एवं गुठली युक्त होते हैं। पुराने वृक्षों का काष्ठसार पीताभ एवं सुगन्धित होता है। औषधि में उक्तकाष्ठ एवं इसके बुरादा तथा इससे प्राप्त तेल का उपयोग होता है।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में विस्तृत रूप से चन्दन का उल्लेख मिलता है। चन्दन लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर विपाक–कटु–शीतबीर्य, कफपित्त शामक, सौमनस्यजनन, मेध्य, वल्य रक्तपित्त–शामक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न दाहप्रशन एवं विषघ्न है। चन्दन आनन्दजनक हृदय के लिये हितकारी वर्ण को उज्वल करने वाला, पित्तरक्त एवं दाह को दूर करने वाला है। श्रीखण्ड चन्दन अत्यंत शीतल, दाह, पित्त, ज्वर छर्दि, रक्तरोग एवं मूत्रकृच्छ्र नाशक है। चन्दन वेट्ट और सुक्कडि भेद से दो प्रकार का होता है। मलयाचल चन्दन को वेट्ट चन्दन कहते हैं। वेट्ट चन्दन शीतल दाह, पित्त एवं तिमिर रोग नाशक है। सुक्कडि चन्दन मूत्रकृच्छ्र, पित्तरक्त एवं दाहनाशक है। शीतल एवं सुगन्धि दायक है। इसी प्रकार शम्वर चन्दन, पीतचन्दन (हरिचन्दन) कान्तीदायक कुष्ठ, कण्डू एवं त्वक् विकार नाशक है। यथा–

चन्दनं शीतलं रूक्षं, तिक्तमाल्हादनलघुः।
हृद्यं वर्ण्यं विषश्लेष्म तृष्णापित्तास्त्रदाहजित् **मदनपाल नि.**
श्रीख्ण्डोयं द्वितीयः स्यादति शीतश्च तिक्तक।।।
रक्तरुड्. मूत्रकृच्छ्रघ्नः कासांश्चैवविनाशयेत्।। **गणनिघण्टु**
नारायण प्रियं पीतं पीताभ हरिचन्दनम्।।
कालीयंक पीतकाष्ठं, जायक कातिदायकम्।। **राज़बल्लभ**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में चन्दन का विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है। अयोध्याकाण्ड, किष्कन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड आदि कतिपय स्थलों पर राज्याभिषेक के समय, धूपन सामग्री में अंगों पर प्रलेप के लिये, चन्दनयुक्त जल के लिये, पंपासर के वन में पंचवटी के प्रसंग में, बाली के दाह संस्कार के प्रसंग में मलयगिरि पर, तुंगभद्रा नदी के किनारे, रावण के अन्तपुर में रावण के शरीर पर लेप के रूप में लंका के अशोक वाटिका में देह उवटन हेतु आदि स्थलों पर चन्दन का उल्लेख मिलता है।

48. जपा (गुड़हल)
(Hibicus rosasinensis Linn)

जपा : पूर्व. में 38

सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।। पू.में 38

सांय काली सूंर्य जपापुष्प सद्यश रक्तवर्ण की शोभा लिये हुये दिखाई दे रहा था।

जपा **Hibiscus rosasinensis Linn.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जपा का वानस्पतिक परिचय : Hibicus rosasinensis Linn

इसके झाड़ीनुमा गुल्म प्रायः उद्यानों में सर्वत्र सुलभ हैं। गुल्म सदाहरित होता है। पुष्प दर्शनीय होते हैं। इसकी श्वेत, नारंगी, पीली, लाल पुष्प भेद कई जातियां पाई जाती हैं। संस्कृत साहित्य में लाल जाति का विशेष महत्व है।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

जपा पुष्प ग्राही केश्य, रक्तप्रदर, कफ, पित्त, इन्द्रलुप्त को नाश करने वाला एवं हृद्य है। गर्भाशय सम्बंधी विकारों में जपा पुष्प उपयोगी माना जाता है। जपा पुष्प का शर्वत हृदय एवं मस्तिष्क को शक्ति देता है तथा उन्माद, ज्वर और रक्त प्रदर में उपयोगी है। घी में भुना हुआ जपा (गुडहर) का पुष्प सुखपूर्वक रजोधर्म करने वाला है। यथा

जपा शीता च मधुरा स्निग्धा पुष्ठि प्रदामता।
गर्भवृद्धिकरी ग्राही केश्या जन्तु प्रदा मता।।
धातुरूक् प्रदरं चेन्द्रलुप्तं चैव विनाशयेत्।
जपापुष्पं लधु ग्राही, तिक्तं केशविवर्धनम्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में गुड़हल पुष्प का उल्लेख युद्ध काण्ड के 106/23 बालू की सूर्य की तुलना चित्रकूट के प्रसंग में भारद्वाज के आश्रम पर एवं विरही श्रीराम के प्रसंग में मिलता है।

49. जम्बु (जामुन)

(Syzygium cumini Skeel)

जम्बु : विक्रमो. 4/93, पर्व.में. श्लोक 20, 23

अधरमिव मदान्धा पातु मेषा प्रवृता
फलमभि मुखपाकं राजजम्बु द्रुमस्य।। **पूर्व.मे. 20**

जामुन वृक्ष के अधर तुल्य परिणत फल को चूसने लग गई है।

त्वया सन्ने परिणत फल श्यामजम्बु वनान्ता, **पूर्व.मे. 23**

जामुन के पके फलों के कारण तथा उनकी काले वर्ण से वनों की शोभा बहुत सुन्दर प्रतीत होती थी।

जम्बु कुञ्ज प्रति हतरयं तोयमादायगच्छैः।। **पूर्व.मे. 20**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

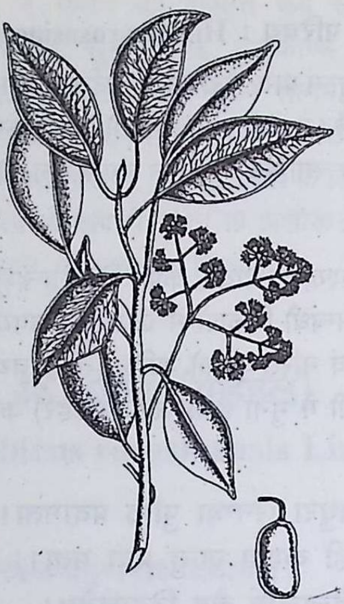

जम्बु (जामुन) Syzygium cumini Skeel

वर्षा काल में जामुन के कुञ्ज अति सुन्दर प्रतीत होते हैं।

जामुन का सामान्य परिचय : Syzygium Cumini Skeel

जामुन के वृक्ष भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ हैं। इसका वृक्ष मध्यम आकार का एवं सदाहरित होता है। पर्ण लट्वाकार, आयाताकार, लम्बाग्र एवं चमकदार होते हैं। वसन्तऋतु में छोटे–छोटे हरिताभ पुष्प खिलते हैं। फल–लम्बगोल और कच्ची अवस्था में हरे, अर्ध–पक्वावस्था में गुलाबी रंग के एवं पकने पर काले रंग के होते हैं।

आयुर्वेदीय गुणधर्म :

शास्त्रकारों ने बड़े फल के जामुन को राजजम्बु एवं छोटे फलवाले जामुन को काक जम्बु कहा है। जंगलों में ये वृक्ष प्रायः नदी के तटों पर पाये जाते हैं। औषध उपयोग में त्वचा, फल, गुठली, पत्र का प्रयोग किया जाता है। फल–कषाय मधुर, विपाक, मधुर, वीर्य–शीत, दीपन–पाचन, कफ–पित्तशामक है। गुठली चूर्ण का उपयोग मधुमेह उदकमेह, रक्तप्रदर एवं अतिसार में उपयोगी है। सुश्रुत ने जम्बु का आवस, प्लीहा के विकारों में उपयोगी माना है। जामुन की मींग कषाय, मधुर मलरोघरक विशेषकर मधुमेह में उपयोगी है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :

सुश्रुत संहिता के न्यग्रोधदिगण में जम्बुद्वय पाठ मिलता है। जम्बुद्वय की व्याख्या सुश्रुत टीकाकार ने निम्न प्रकार से की है। यथा–

जम्बुद्वयं एका राजजम्बुः वृहत्फल, द्वितीया काकजम्बुः
स्वल्पफला द्वय ग्रहणात् भूभिजम्बुः तृतीयाः प्रतिषेधः। **सुश्रुत**

डल्हण टीकाकार का भूमिजम्बु से किस द्रव्य विशेष का निर्देश है। स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है।

जामुन के वृक्ष तीन चार प्रकार के होते हैं। नदीजामुन, बड़ी–जामुन, साधारण जामुन। यथा–

जम्बू बृक्षस्तु त्वक्रोग्राही मधुरपाचकः।
मलस्तम्भकरो रूक्षो रूचिकृत् पित्तदाहया।।
फलं तु तुवंर चाम्लं, मधुरं शीतलं मतम्।
मलस्तम्भकरं वातकारकं कफ पित्तनुत्।। **रा.नि.**

50. तमाल (तेजपात)

(Cinnamomum tamala Nees)

तमाल : रघु.स. 6/64, 13/49, कुमार.स. 8/53

ताम्बूलवल्ली परिणद्ध पूगा स्वेलालतालिंगितचन्दनासु।
तमालपत्रा स्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु।।

रघु.स. 6/64

कवि ने मलयाचल पर्वत में तमाल पत्र के प्राप्ति का स्थान बताया है।

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी, मयावतंसः परिकल्पितस्ते।।

रघु.स. 13/49

पहाड़ों के समीप सुगन्धित पत्र वाले तमाल पत्र शोभायमान हैं।

एकतस्तर तमालमालिनी पश्य धातुरसनिम्नगामिव।।

कुमार.स. 8/53

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हे प्रिये देखो, एक आंर से बढ़ते हुए अन्धकार में घिरी हुई यह सन्ध्या ऐसी लग रही है मानों तमाल वृक्षों से एक तरफ घिरी हुई कोई गेरू की धारा हो।

तमाल ताली वनराजी नीला, आभति वेला लवणाम्बुराशेः।।

रघु.स. 13/15

वक्तव्य :

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में तमाल पत्र के सन्दर्भ में तज, त्वक्पत्र, चोच, त्वक् आदि कतिपय पर्याय मिलते हैं। उत्पत्ति स्थान के सम्बंध में कतिपय स्थलों पर यह आमूपदेशज वृक्ष माना गया है तथा कुछ स्थलों पर तमाल वृक्ष पहाड़ी प्रदेशों के समीप उत्पन्न होने वाला सुगन्ध पत्र वृक्ष विशेष तमाल है ऐसा निर्देश है। संहिता ग्रंथों के आधार पर शास्त्रीय तमाल पत्र Cinnamomum tamala है। संस्कृत साहित्य के लेखक Garcinia Morella के पत्र को तमाल पत्र मानते हैं। लेखक के विचार से गार्सीनियां शास्त्रीय कंकूॅष्ठ भेद है।

तमाल पत्र का सामान्य परिचय : Cinnamomum tamala Nees

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में 900 मीटर की ऊंचाई से 2,100 मीटर की ऊंचाई तक प्रायः सर्वत्र सुलभ है। इसके सुखाये हुए पत्र बाजारों में तेजपात के नाम से विकते हैं। सर्वत्र गरम मसालों में इसका उपयोग होता है। इसके वृक्ष मध्यम ऊंचाई के होते हैं। छाल पतली, शिकनदार, अन्दर से गाढ़े भूरे रंग की एवं बाहर से हरित–कृष्णाभ होती है। पत्तियां एकान्तर, अभिमुख, लद्वाकार, आयताकार, एवं सुगन्धित होती है। पत्तियों में उड़नशील तेल पाया जाता है। पुष्प पत्रकोषीयु पीताभ वर्ण के फल गोल पकने पर कृष्णाभवर्ण के गुठली में होते हैं। विदेशों में उत्पन्न जाति क्रो दालचीनी कहते हैं जो कि लंका, सिंगापुर आदि स्थानों से भारत में आती है। औषध प्रयोग में छाल (त्वक) एवं पत्र उपयोग किया जाता है। यह लघु, तीक्ष्ण, कटु विपाक एवं उष्णवीर्य है। लेखन, दीपन, पाचन, वातानुलोमन आमाशय वल प्रंद एवं सौमनस्य जनन है। यूनानिमतानुसार यह दूसरे दर्जे के उष्ण एवं रूक्ष है। मसालों में विशेष उपयोग होता है। यथा

तेजपत्रं गन्धजातं पत्रकं पाकरज्जनम्।।
पत्रमुष्णं लधुश्लेष्म हृल्लासार्शोनिलापहम्।।
हृद्रोगं पीनसं चापि त्रिदोषे चैव नाशयेत्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में तमाल (तेजपात) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्कन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के कतिपय स्थलों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भरद्वाज में, पंचवटी मारीच के आश्रम में तुंगभद्रानदी के किनारे सुवर्णशिखर पर, दक्षिण की एक गुफा में एवं पश्चिमी समुद्रतट पर वर्णन मिलता है।

51. ताम्बूल : (पान)
(Piper betle Linn)

ताम्बूल : लघु. 4/42, 6/64 ऋतु.स. 5/5

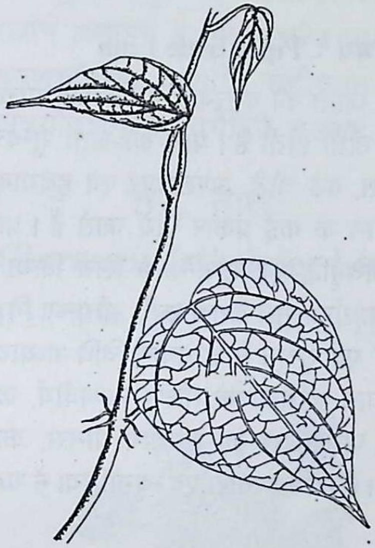

ताम्बूल **Piper betle**

ताम्वूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः।
नालिकेरासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः।। **रघु.स. 4/42**

तहां मदिरागोष्ठी बनाने वाले वीरों ने ताम्बल के पत्रों द्वारा नारियल का आसव और शत्रु सम्बन्धि यश का पान किया।

ताम्बूलवल्लीपरिणाद्धपूगा स्बेला लतालिंगितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तु प्रसीद शश्वन्मलय स्थलीषु।।
रघु.स. 6/64

पान की लताओं से ढके हुये सुपारी के वृक्षों वाली मलयाचल पर्वत शोभा बहुत सुन्दर शोभायमान होती थी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गृहीतताम्बूल विलेपनं स्त्रजः
पुष्पासवामोदित वत्र पंकजाः
प्रकामकाला गुरुधूमवासितं,
विशन्ति गृहमुत्सुकास्त्रियः।। **ऋतु.स. 5/2**

कवि ने शरद् ऋतु का वर्ण करते हुये सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धित एवं कालागुरु से धूपित एवं ताम्बूल लिये हुये सुन्दरियों का शय्यागृह का वर्णन किया है।

ताम्बूल का सामान्य परिचय : Piper betle Linn

यह सर्व प्रसिद्ध लता जाति की वनस्पति है जिसकी भारत, लंका, मलयद्वीप उष्ण एवं आर्द प्रदेशों में खेती होती है। पान की लता सुन्दर एवं कोमल होती है। पर्ण–पीपल पत्र सद्यश, बड़े चौड़े, अण्डाकार एवं हृदयाकृति के तथा मसृण होते हैं। स्थान भेद से पान के कई प्रकार पाये जाते हैं। प्राचीन काल से पान का व्यवहार मुखशुद्धि, रूचिवृद्धि एवं सुगन्धि के लिये किया जाता है। चरक में मात्राशितीय अध्याय में "धार्याण्यासेन वैशद्य रूचि सौगन्ध्य मिच्छता–कंकोल फलं पत्रं ताम्बूलस्य शुभं तथा" एवं सुश्रुत में अन्नपान विधि अध्याय में इसका उल्लेख है। गुणों के आधार पर पान रूचिकारक तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कषैला, हृद्य एवं श्रम को दूर करने वाला है। पानस्वरस का उपयोग पीनस, कास, स्वर्य, शोथघ्न, कफविकारों में किया जाता है। तमकश्वास एवं न्यूमोनिया में यह अच्छा लाभ करता है।

पथ्यं सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वाते च संगरें।
सभायां विदुषां राज्ञां, कुर्यात् तांबूलचर्वणम्।।

विशेष :

पान चरपरा, कड़वा, वात–कफ, पीनस, कासनाशक, रूचिकारक तथा अग्निप्रदीपक है। श्रीवाटी पान मधुर तीक्ष्ण, वात पित्त कफनाशक एवं रूचिकारक होता है। अम्लवाटी पान चरपरा, अम्ल, तीक्ष्ण, गरम, मुख को पकाने वाला एवं दाह को उत्पन्न करता है। सातसीपान मधुर, तीक्ष्ण, कटु, पाचक, गुल्म, उदररोग एवं जाठराग्नी को दीपन करता है। पुराना पान रूचिकारक, सुगन्धित, हृदय को हितकारी, बलकारक एवं मुखशोधक होता है। मालवे का सारक तीक्ष्ण, मधुर, रूचिकारक, शीतल, दाह नाशक, पित्त नाशक, अग्नि को दीपन करने वाला, बल को देने वाला, आध्मान और विवन्ध नाशक है। आन्ध्र प्रदेश का पोटकुली पान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कषैला गरम, चरपरा, तीक्ष्ण, हृदय का हितकारी कफ वात नाशक, रूचिकारक, चरपरा दीपन और पाचन है। तत्काल के तोड़े हुये पान का भक्षण करना मुख रोग और जड़ता को दूर करता है। त्रिदोषकारक और दाहजनक होता है। पानी में बहुत दिन तक सींचा हुआ पान रूचि को उत्पन्न करने वाला और श्रेष्ठ है। कालापान कड़वा गरम, कषैला मुख की जड़ता को दूर करता है। सफेद पान कफ वातरोग नाशक, पथ्य, रूचिकारक जठराग्नि प्रदीपक और पाचक है। यथा–

ताम्बूलं कटुतिक्त मुष्णं मधुरं क्षार कषायान्वितम्।
वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं दुःख्य विच्छेदनम्।।
स्त्रीसंभाषण भूषणघृतिकरं कामग्नि संदीपनम्।
ताम्बूले निहितात्रयोदशगुणा स्वर्गोपिते दुर्लभाः।।

52. तालः

(Borassus falbelefer Linn)

ताल : रघु.स. 4/34, 56, कुमार. 2/35, विक्रमो. 5/117, पूर्व.मे. 32 अभिज्ञान 3/25।

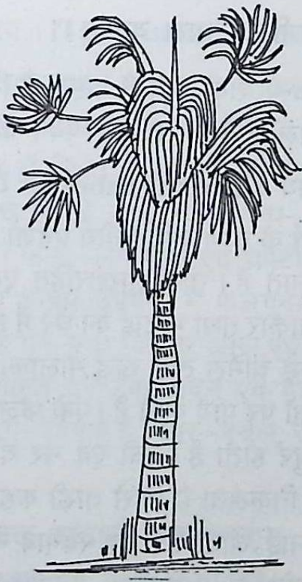

ताल (ताड़) Borassus flabelefer Linn

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पौरस्त्यानेवमाक्रामं स्तां स्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याम मुपकण्ठं महादधेः।। **रघु.स. 4/34**

वह जय शील रघु उन–उन देशों को जीतता हुआ ताल के वन से सांयकाल को सागर के तट पर पहुंचा।

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्र शिञ्जितैः।
वर्मभिः पवनोद्धूत राजताली वनध्वनिः।। **रघु.स. 4/56**

चलते हुये घोड़ों के शरीर पर शब्द करते हुये कवचों ने पवन की उठाई हुई राजताली वन की ध्वनि को तिरस्कार किया।

व्यावृत्त गति रूघाने कुसुमस्तेय साध्वसात्।
न वातिवायु स्तत्पार्श्वे तालवृन्ताऽनिलांधिकम्।। **कुमार.स. 2/35**

पवन तारकासुर के बगीचों के पुष्पों का पतन न हो, इस डर से तारकासुर के समीप तालवृन्त की हवा अधिक नहीं वहती।

हैमं तालद्रुम बनभूदन्ततस्यैव राज्ञः। **पूर्व.मे. 32**

अर्थात् उज्जयिनी में तालवृक्षों का वन था।

सञ्चालयामि नलिनी दलताल वृन्तम्।। **अभि.अ. 3/35**

राजा दुष्यन्त ऋषिकन्या शकुन्तला से कहता है कि ताम्र वर्ण के चरणकमलों को गोद में रख कर ताल वृन्त के पंखे से पवन करूं।

ताड़ का सामान्य परिचय : Brassus flabelefer Linn

यह समस्त भारत वर्ष के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में तथा समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में स्वयंजात वृक्ष पाये जाते हैं। ताड़ शाखारहित एवं ऊंचे–ऊंचे वृक्ष होते हैं। काण्डस्कन्ध काला, वेलनाकार तथा मोटाई का घेरे में होता है। पत्र–पंखे के समान करतलाकार, खण्डित कड़े चर्मिल तथा खंड भालाकार या रेखाकार होते हैं। नर एवं नारी पुष्प पृथम 2 वृक्षों पर पाये जाते हैं। पंके फल का गूदा रेशा बहुत, ललाई लिये हुये पीला और मधुर होता है। स्त्री एवं नर दोनों प्रकार के वृक्षों से क्षत करने पर एक मीठा रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं। इस रस को पकाकर गुड़, चीनी एवं मिश्री बनाई जाती है। यह स्वभाव में मधुर, बीर्यशीत, वातपित्त शामक दाह प्रशमन, शोथहर व्रणरोपण, ज्वरघ्न, वल्य, वृहण मूत्रल, हृद्य तृष्णाशामक, बलवर्धक एवं मृदुरेचन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मधुमेह वाले रोगियों के लिये ताड़ एवं खजूर के रस से बनी हुई चीनी, मिश्री पथ्य द्रव्य है। श्वास–कास में प्रयुक्त अवलेह कल्पों में इसी का गुड़ एवं चीनी डालना अधिक हितकर है। चरक ने मधुरस्कन्ध एवं कषयस्कन्ध तथा सुश्रुत ने सालसारादिगण तथा मधुर स्कन्ध के द्रव्यों में ताड का पाठ दिया है। यथा–

तालवृक्षस्तुमधुरः शीतलोमदकृद्गुरुः।
पुष्ठिकृत् शुक्रकफकृन्मेदकृ द्बलकारकः।। **नि.र.**

53. तिन्तिणी (इमली)

(Tamarindus indicus Linn)

तिन्तिणी : अभिज्ञा.अ. 2/10 यथा–

कस्यापित पिण्ठखर्जूरैः उद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषि भवेन्तथा स्त्रीरत्न भाविनो भवतः इयमभ्यर्थना। **अभिज्ञा.अ. 2**

स्त्रियों को खट्टी चीजें अच्छी लगती हैं। अतः इमली के वृक्ष को देखकर शकुन्तला का ध्यान इधर गया। संहिता एवं निघण्टुग्रंथों में अम्लिका, चिंचा, तिन्तिडी आदि पर्याय इमली के लिये आये हैं।

इमली का सामान्य परिचय : Tamarindus Indicus Linn

यह समस्त भारत के उष्ण प्रान्तों में पाया जाने वाला सदाहरित वृक्ष है। मध्य प्रदेश एवं दक्षिण भारत में इसकी जंगली वृक्ष पाये जाते हैं। पर्ण–सपत्रक 10–20 युग्म, पत्रक, अभिमुख क्रम से स्थित, रेखाकार, आयताकार एवं मसृण होते हैं। पुष्प–गुच्छवल्क होकर नीचे लटके रहते हैं। ये पुष्प–पीताभ वर्ण के एवं लाल धारियों से चित्रित होते हैं। फली–लम्बगोल एवं चपटी होती है। फल जाड़ों के अन्तिम दिनो में पकते हैं। औषध उपयोग में फलगूदा, बीज, पत्र एवं क्षार का उपयोग किया जाता है। यह गुरू रूक्ष, विपाक, अम्ल एवं ऊष्णवीर्य है। पकी इमली का गूदा–रोचक, दीपन, यकृत उत्तेजक, भेदन एवं हृद्य है। बीज–प्रमेहनाशक, संग्राही, वीर्यस्तम्भन एवं वीर्य–शोषक है। क्षार–मूत्रल, उदरशूल एवं गुल्म नाशक है। यथा

अम्लिकायाः फलं बालं वातघ्नं कफपित्तकृत्
तत्पक्व दीपनं रूच्यमत्युष्णं कफ वातजित्।। **रा.व.**
शुष्कं चिञ्चा फल हृद्यं लघु भ्रान्ति श्रमापंहम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तृषाहरं क्लमहरं कृमिनाशकरं मतम्।।
चिञ्चाक्षारश्चाग्निमाद्यं शूल नाशकरोमतः।। **नि.र.**

54. तिलक
(Wendlandia exerta Pers)

तिलक : रघु.सं. 9/41, 44, कुमार.स. 3/30, मालविका. 3/5, 42

अलिभिरज्जन विन्दु मनोहरैः कुसुमपंक्ति निपातिभिरङ्कितः।
नखलु शोभयातिस्म वनस्थली, न तिलक स्तिलकप्रमदामिवः।।
रघु.स. 6/41

काजल के कणों के समान सुन्दर फलों की पंक्ति पर गिरने वाले भौंरों से चिन्हित तिलक वृक्ष ने, कामिनी के समान वनस्थली को शोभित किया है।

सद्यशकान्तिरलक्ष्यतमज्जरी तिलक जालक जालकमौक्तिभि :।
र.प्र. 6/44

तिलक वृक्ष की मंज्जरी वालों के समूह में गुथे हुये मोतियों के समान दिप्तिमान दिखाई दिये।

लग्नद्विरेफाज्जन भक्ति चिंत्र, मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्म।
रागोणवालारुरणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठ मलश्चकार।।
कुमार.स. 3/30

वसन्तशोभारूपी स्त्री ने भ्रमररूपी कज्जल से युक्त तिलक कुसुम रूपी तिलक को मुख में लगाकर सवेरे के सूर्य की लाली रूप महावर से आम्रपल्लव रूप ओष्ठ को अलंकृत किया।

आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाज्जनैः।
सावज्ञेव मुख प्रसाधन विधो श्रीमाधिवी योषिताम्।। **माल.वि.3/5**

पुन्नाग पुष्प ललाटस्थित लितक को पराभूत करता है। मालूम पड़ता है कि यह वसन्तकाल सुन्दरियों की प्रसाधन की अवज्ञा कर रहा है।

वक्तव्य :

निघण्टु ग्रन्थों में तिलक के पर्यायवाची शब्द भालविप्रूषणसंज्ञ, मुखमण्डनक, तरूणीकटाक्षकाम आदि पर्याय आये हैं। संस्कृत साहित्य में तिलक वृक्ष का उल्लेख

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दोहदवृक्षों के प्रकरण में मिलता है। महाकवि कालिदास ने कतिपय स्थलों पर तिलक पुष्प की उपादेयता सुन्दरियों के मुखमण्डन हेतु किया है। संहिताग्रंथों में तिलक एवं पुण्ड्र का उल्लेख मिलता है। शास्त्रीय तिलक वृक्ष क्या है इस पर विद्वानों का मतभेद है परन्तु शास्त्रीय तिलक Wendlandia Exerta है ऐसा विचार ढा. वलवन्तसिंह जी ने स्पष्ट किया है।

तिलक का सामान्य परिचय : Wendlandia exerta Pers

इसके मध्यम प्रमाण के वृक्ष शिवालिक वनखण्ड एवं मध्य प्रदेश तथा में उपलब्ध हैं। स्थानिक भाषा में इस वृक्ष को हुण्ड्र एवं तिलका कहते हैं। इसके पुष्प वसन्तकाल के समय खिलते हैं। पुष्प गुच्छों में एवं श्वेतवर्ण के मनोहर होते हैं। आदिवासी ग्रामीणों की स्त्रियां इसके पुष्पों का उपयोग मुखमण्डल हेतु करती हैं। विद्वानों को इसकी छाल के उपयोग हेतु अनुसंधान कार्य करना चाहिये। यह पाक तथा रस के कटु, उष्ण, रसायन, रेचक, कुष्ठ, कृमि एवं मुखदन्त सम्बंधी रोगों में उपयोगी है। यथा–

तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः।
कफ कुष्ठ क्रिमीन्वस्ति मुखदन्तगदानहरेत्।। भा.प्र.

55. दर्भः

(Desmostachya bipinnata Stapf)

दर्भ : रघु.सं. 13/39, कुमार सं. 5/35, अभिज्ञान 1–15,

पुरा सदर्भाकुरमात्रवृत्ति श्चरन्मृगैः सार्थ भृषिर्मधोना।
समाधि भीतेन किलोपनीतः, पंचापसरो यौवनकूटवन्धम्।।

रघु.स. 13/39

प्रथम दर्भाकुंर भक्षण करते हुये मृगों के साथ फिरते हुये वह महर्षि समाधि से डरे हुये इन्द्र द्वारा पांच अप्सराओं के योवन रूपी कूटजाल मे फंसाये गये थे।

अपित प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भः प्रणयाऽपाहारिषु।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनैः..... कुमार.स. 5/35

तुम्हारे हाथ से जबर्दस्ती छीन कर कुशों को खाने वाले इन हरिणों के विषय मे तो तुमारा चित्त तो प्रसन्नं में रहता है।

छिन्न दर्भाङकुरायाम् अभिज्ञान शा.अ. 1-15
समिद्बन्तः प्रान्त संस्तीर्णदर्भाः अभिज्ञान.श. 4/10

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

महर्षि कण्व के आश्रम के समीप हिरणों के खाने के लिए कुश लगा हुआ है।

वक्तव्य :

यह मुञ्ज जाति की एक किस्म है। दर्भद्वय भेदों में यह एक प्रकार है। यह तृण जाति की वनस्पति है। काण्डबहुवर्षायु, खुले घासों के मैदानों में सर्वत्र सुलभ है। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों मे "दर्भद्वय त्रिदोघ्न" ऐसा उल्लेख किया है देखिये कुश प्रकरण में'। महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में कुश, कास एवं दर्भ का कतिपय स्थलों में उल्लेख किया है। आयुर्वेद संहिताओं एवं निघण्टुग्रंथों में तृणपञ्चमूल द्रव्यों में इसका उल्लेख आया है। धार्मिक एवं ज्योतिष शास्त्र में कुश, कास एवं मुञ्ज का महत्वपूर्ण स्थान है।

56. दूर्ब्वा (दूब)
(Cynodon doctylon Pers)

दूर्व्वा : रघु.सं. 6/25, 19/12, कुमार.स. 919, विक्रमों. 3/12, अभिज्ञान अ. 4/29

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्त्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला।
ऋजुप्रमाण क्रियंयैवतन्वी, प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा। रघु.स. 6-25

दूव लगी हुई एवं महुये की माला धारण किये हुये इन्दुमती ने राजा को देखा।

दूर्वायवाङ्कुर ल्पक्षत्वग्भिन्न पुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन्।। रघु.स. 17/12

दूव, यवांकुर, पट की छाल और महुये के पुष्प सहित जाति के वृक्षो की हुई आ रत्ती उसने पाई

स गौरसिद्धार्थ निवेशवभ्दि दूर्वा प्रवालैःप्रतिभिन्न शोभम्।
कुमार.स. 5/9

पार्वती ने वाण के साथ सफेद सरसों से युक्त दूवों से शोभित स्नानीयं कौशेयवस्त्र को धारण किया।

सितांशुका मंगलमात्र भूषणा
पवित्र दूर्व्वाङ्कुर लाञ्छितालका।। विक्रमो.3/12

देवी उजले वस्त्र और मंगल सूत्र मात्र पहने केवल दूव की शिखा केश में लगाये, व्रत के बहाने अपने गर्व को त्याग कर आ रही है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दूव का सामान्य परिचय : Cynodondactylon Pers

यह बहुवर्षायु तृण जाति की वनस्पति है। इसके काण्ड ज़मीन पर परिसृत होते हैं। प्रत्येक पर्व पर मूल निकलता है, इसी कारण इसको शतपर्व कहते हैं। हिन्दू धर्म में दूव का विशेष स्थान है। पुष्प–छोटे, हरिताभ एवं नीलारूण होते हैं। दूव पशुओं के लिये उत्तम चारा है। निघण्टु ग्रन्थों में श्वेत, नील एवं गण्ड–दूर्वा भेद से तीन प्रकारों का उल्लेख मिलता है। यह मधुर कषाय शीतवीर्य, व्रणरोपण रक्तस्तम्भक, प्रजास्थापन, जीवनीय एवं मूत्रल है। आयुर्वेद में श्वेत दूर्वा (दूव) नीलदूर्वा एवं गण्डदूर्वा भेद से दूव का उल्लेख है। हरी दूव त्वचा के रोगों रक्तपित्त एवं खुजली में उपयोगी है। गांडर दूव मधुर, शीतल, वात, पित्त, ज्वर, तृषा और श्रमहर है। गांडर दूव जलाश्य के स्थानों पर पाई जाती है। पौधा 2 फुट ऊंचा कांस समान होता है। यथा–

दूर्वा कषया मधुरा च शीता पित्तं तृषारोचक वान्ति हन्त्री।
सदाह मूर्च्छा ग्रहभूतशान्ति, श्लेष्म श्रमध्ववसन तृप्तिदा च।।
नीचदूर्वा-दूर्वा तु रक्त पित्तघ्नी कण्डूत्वग्दोषनाशिनी।। रा.नि.
गण्डदूर्वा-गण्डदूर्वा तु मधुरा वात पित्त ज्वरापहा।
शिशिरा द्वन्द दोषघ्नी, भ्रमतृष्णा श्रमापहा।। रा.नि.

57. देवदारु

(Cedrus deodara Roxb)

देवदारु : रघु.सं. 2/36, 4/76, कुमार.स. 1/15, 54, 3/49, मेघ.उ. 47

अमुं पुरः पश्यसिं देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषमध्वजेन।
यो हैम कुम्भ स्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः।।
रघु.स. 2/36

शेर राजा से कहता है कि इस देवदारु वृक्ष को जो तू आगे देखता है वह शिव जी ने पुत्र समान माना है।

तस्योसृष्ठनिवासेषु कण्ठ रज्जू क्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः, शशंसुर्देवदारवः।। रघु.4/96

राजा रघु के घोड़ों के पड़ाओं में गले की रस्सी से छिली हुई छाल वाले देवदारु के वृक्ष थे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भागीरथी निर्झरणीकराणां बोढा मुहुः कम्पित देवदारूः।।

कुमार.सं. 1/15

गंगाजी के क्षरने के जलविन्दुओं को धारण करने वाला बारंबार देवदारु वृक्षों को कांपने वाला तथा मोरों की पंखों को उल्लसित करने वाला यह हिमालय है।

देवदारु Cedrus deodara Roxb

स देवदारु द्रुमवेदिकायं शार्दूल चर्मव्यवधान वत्याम्।

कुमार. 3/44

मौत के मुख में पड़े हुये कामदेव ने देवदारु के नीचे पत्थर से बने हुये चबूतरे पर व्याध्रचर्म को विछा कर समाधि में बैठे हुये शंकर को देखा।

स कृन्तिवासास्तपसे यतात्मा, गङ्गाप्रवाहोसितदेवदारुः।।

कुमार. 1/55

गजचर्म को धारण कर जितेन्द्रिय शंकर भगवान् तपश्चर्या करने के लिये जहां भागीरथी का झरना वहा करता था वहां देवदारु के बहुत से पेड़ थे।

भित्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारु द्रुमाणां,
ये तत्क्षीरस्त्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृन्ताः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आलिङ्गयते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः,
पूर्व स्पृष्ठं यदि किल भवेदङ्ग मेभिस्त्वेति।। **मेघ.उ. 49**

कवि ने उत्तरी हिमालय में उपलब्ध देवदारु वृक्ष का बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

देवदारु का सामान्य परिचय : Cedrus deodara roxb

यह चिरवर्षायु हिमालय में उपलब्ध सदाहरित वृक्ष है। देवदारु के वृक्ष सबसे ऊंचे, चिरायु एवं सुन्दर होते हैं। शाखायें चारों ओर फैली हुई होती हैं। काण्ड सीधा एवं मोटा होता है। पर्ण–सूच्याकार, त्रिकोणाकार, चमकदार एवं हरे रंग के होते हैं। पुष्प, सितम्बर, अक्टूबर में इन पुष्पों से ग्रामीण स्त्रियां रक्तवर्ण का सिन्दूर संग्रह करती हैं। देवदारु दो प्रकार का होता है। स्निग्धदारु और काष्ठदारु औषध उपयोग में काष्ठसार, बुरादा एवं देवदारु तैल का व्यवहार होता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

यह कटु विषाक एवं ऊष्णवीर्य है। वात–कफ शामक, शोथहर, वेदना स्थापन क्रिमिघ्न, व्रणशोधन एवं रोपण, दीपन–पाचन, अनुलोमन कफः निस्सारक, लेखन एवं ज्वरघ्न है। चरक ने स्तन्यशोधन एवं अनुवासनोपग महाकषाय में तथा कटुक–स्कन्ध के द्रव्यों में, सुश्रुत ने वात संशमन वर्ग के द्रव्यों में देवदारु का उल्लेख किया है। यथा–

स्निग्ध दारुः कटुः पाके स्निग्धोष्णाः तिक्तकोलघुः।
कफ वात प्रमेहार्शो मलस्तम्भामदोषहा।।
ज्वराध्मान श्वासकास शोथकण्डू विनाशनः।
हिक्कातन्द्रारक्तदोषं पीनसं चैव नाशयेत्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में देवदारु का उल्लेख बालकाण्ड 14/23 दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ के लिये अयो.का. 76/17 चिता जलाने के लिये, कि.का. 43/13, हिमालय पर्वत समीप आदि कतिपय स्थलों पर उल्लेख मिलता है।

58. द्राक्षा (दाख)

(Vitis vinifera Linn)

द्राक्षा : द. 4/65

विनयन्ते स्म तपोधा मधुमि र्विजयश्रमम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आस्तीर्णजिन रत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु।। **रघु.स. 4/65**

उसके योधा अच्छे चर्म से विधि हुई दाखों से छिरी हुई भूमि में मदिरा द्वारा विजयश्रम को मिटाते थे।

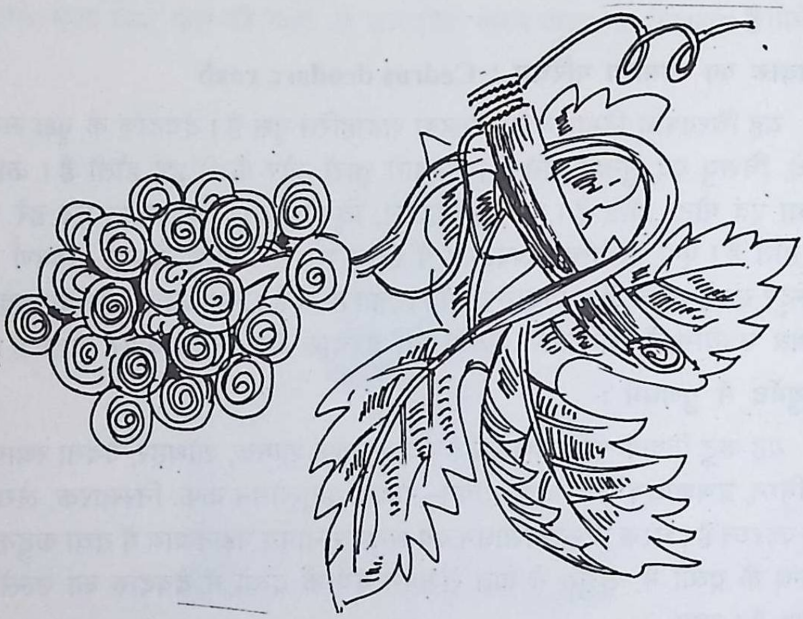

दाख (द्राक्षा) **Vitis vinifera Linn**

द्राक्षा का सामान्य परिचय : Vitis vinifera Linn

यह पश्चिमोत्तर हिमालय प्रदेश, कश्मीर, काबुल, अफगानिस्तान, आदि स्थानो में पाया जाता है। साधारण भाषा में इसे मुन्नका, अंगूर या दाख कहते हैं। यह एकवर्षायु काण्डवाली लता जाति की वनस्पति है। यह जंगली एवं खेतों में लगाया हुआ पाया जाता है। इसके छोटे बीज रहित फलों को किशमिश कहते हैं। औषधीय योगों में मुन्नका का उपयोग किया जाता है। यह गुरु मधुर, शीतवीर्य, वात–पित्त शामक, वृंहण, वृष्य ज्वरनाशक, मेध्य, हृद्य, श्वास–कासहर, क्षयनाशक, बाजीकर एवं को मोत्तेजक है।

औषधीय प्रयोग में काला मुन्नका श्रेष्ठ माना जाता है। पक्कीदाख सारक, शीतल, नेत्रों के लिये हितकारी, बलदायक, वीर्यवर्धक, मूत्र और मल को निकालने वाली होती है। कच्चीदाख कम गुणों वाली भारी एवं खट्टी होती है। गोस्तनी कालीदाख वीर्यवर्धक एवं कफ पित्तहारी होती है। किसमिश कालीदाख के समान गुणकारी होती है। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्राक्षा तु मधुर स्निग्धा, तृष्याशीतानुलोमिनी।
बल्या बृष्या क्षतक्षीण तृषावातास्त्रपित्तजित्।। **रा.व.**
मूत्रदोष हरारूच्या वृष्यासंतर्पणीपरा।।

गोस्तनीदाख :

द्राक्षा तु गोस्तनीशीता, हृद्यावृष्यागुरुर्मता।
वातानुलोमनी स्निग्धा हर्षदाश्रमनाशिनी।।

59. नमेरूवृक्ष (पुनागं)
(Calophyllum Inophylla)

नमेरूवृक्ष : रघु.स. 4/94, कुमार.स. 1/55, 3/43

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।
द्यषदो वासितोत्संगा निषण्णमृगनाभिभिः।। **रघु.स. 4/94**

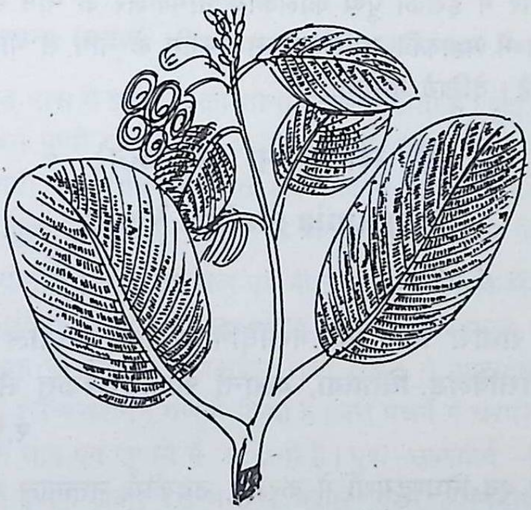

नमेरूवृक्ष (पुनागं) **Calophyllum Inophylla**

सेना के लोग सुरपुन्नाग वृक्षों की छाया में बैठने वाले हरिणों की नाभि से सुगन्धित शिलाओं पर बैठकर विश्राम करते हैं।

गणानमेरू प्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवती र्दधानाः।
मनःशिला विच्छुरिता निषेदुः, शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु।।
कुमार.स. 1/55

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रमथा दिगण भी उस प्रदेश में सर्वदा सुलभ सुरपुन्नाग के कुसुमों को धारण कर अत्यन्त मुलायम भोजपत्र को पहिनकर एवं शिलाजीत से व्याप्त चट्टानों में बैठकर शंकर भगवान् की सेवा में उपस्थित रहकर आनन्द मनाते थे।

द्यष्ठि प्रपातं परिहृत्य तस्य, कामःपुरः शुक्रमिव प्रयोगे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरूशाखं, ध्यानास्पदं भूतयते विंवेशः।।

कुमार.स. 3/43

कामदेव यात्रा में सम्मुख नन्दिकेशवर के अवलोकन विषयक परित्याग कर अर्थात् कामदेव शंकर की आंख बचाकर पुन्नाग की घनी झाड़ियों में छिप गया।

संस्कृत साहित्य एवं निघण्टु ग्रंथों में नमेरूवृक्ष से सुरपुन्नाग एवं पुन्नाग का उल्लेख है। यथा नमेरू पुरपुन्नागः इति विश्वः ::कुछ लोग सुरपुन्नाग से नागकेशर अर्थ करते हैं।

श्रीयुत वेद्य वापालाल जी ने सुरपुन्नाग से Ochrocurpopus longifalius लिखा है। बाजार में इसकी पुष्प कलिकायें नागकेशर के नाम से मिलती हैं। संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास ने पुन्नाग के नाम से भी नमेरुवृक्ष का उल्लेख किया है। देखिये पुन्नाग :।

60. नक्तमालः (करञ्ज)
(Pongamia glabra Vent)

नक्तमाल : रघु.स. 5/42

स नर्मदा रोधसि सीकारद्रैः मरूद्भि रानार्ततनक्तमाले।
निवेशयामासविलङ्-धिताध्वा, क्लान्तं राजोधूसरेकेतु सैन्यम्।।

र.घु.स. 5/42

संहिताग्रंथों एवं निघण्टुग्रंथों में करञ्ज, उदकीर्यः नक्तमाल ये शब्द करंज के लिये आये हैं। इसके वृक्ष प्रायः समस्त भारत वर्ष विशेषतः समुद्र तटीय प्रान्त, मध्य एवं पूर्वीय हिमालय से लेकर लंकापर्यन्त पाये जाते हैं। इसके बहुशाखीय छायादार वृक्ष होते हैं। गावों के किनारे प्राय इसके वृक्ष लगाये हुये पाये जाते हैं। पर्ण—सपत्रक, कोमल एवं मसृण होते हैं। पुष्प वैगनी रंग के श्वेताभ होते हैं। प्रत्येक शिम्बी में एक बीज होता है। इसके ऊपर का छिलका पतला, चिकना हल्के लाल रंग का होता है। बीज तैल चिकित्सा में तथा जलाने के काम आता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

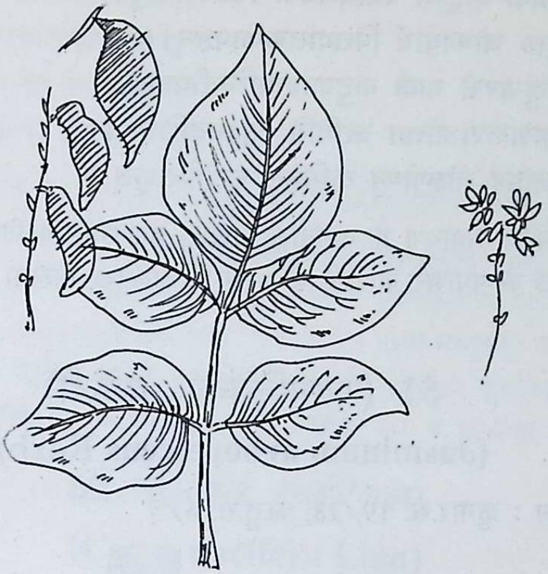

नक्तमालः (करंज) (Pongamia pinnata (Linn.) Nerr.

जेठ, आषाड़ मास में इस वृक्ष की शोभा प्रेक्षणीय होती है। वृक्ष के नीचे बिखरे हुये गुलाबी–श्वेत पुष्पों के ढेर ऐसे प्रतीत होंते हैं, मानो किसी ने मोती विछा दिये हों। इन्दुमती के स्वयंबर में जाते हुये अज ने मार्ग में नर्मदा के तट पर जहां करंज के वृक्ष पवन में नृत्य कर रह थे वहां पर विश्राम किया।

औषध उपयोग में पत्र, त्वक्, तैल एवं बीज का उपयोग किया जाता है। यह लघु, तीक्ष्ण, कटुविपाक उष्णवीर्य, वात–कफ नाशक, रक्तशोधक, व्रणशोधक एवं कासहर है। चरक ने कण्डूघ्न महाकषाय तथा सुश्रुत ने आरग्वधदि, वरूणादि, शिरोविरेचन एवं श्लेष्मसंशमन गण में किया है। पत्ते पचने में चरपरे, गरम, भेदक, पित्तजनक, कृमि घाव एवं सूजन में उपयोगी है। पुष्प–उष्णवीर्य –पित्त, वात, एवं कफ नाशक हैं। इसके अंकुर रस में और चरपरे, गरम, अग्निदीपन करने वाले पाचक तथा वात कफ कुष्ठ कृमि, विष एवं सूजन को दूर करने वाले हैं। करंज का तेल तीक्ष्ण गरम कृमिनाशक रक्तपित्तकारक, नेत्ररोग वातवेदना, कण्डू एवं त्वचा के विकारों में तैल का वाहय प्रयोग लाभ करता है। यथा

करंजः कटुकः पाके नेत्र्योष्णातिक्तको रसे।
कषायोदावर्त्त वातानां योनिदोषा पह' स्मृतः।।
वातगुल्मार्श व्रणहृत्, कण्डूकफविषापहः।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पर्ण पाके कटूष्णं स्याद्‌भेदकं पित्तलं लघु।
पुष्पमुक्तं चोष्णवीर्य पित्तवातकफापहम्।।
अस्याकुंररसे पाके कटुकाश्चाग्निदीपकाः।
शोथनाशकराःप्रोक्ता ऋषिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः।। **नि.र.**
करज्जतैलं तीक्ष्णोष्ण कृमिहृत् रक्तपित्तकृत्।। **आ.स.**

बाल्मीकीय रामायण में नक्तमाल (करंज) का उल्लेख किष्कन्धाकाण्ड एवं अरण्यकाण्ड के पंपासर के वनों के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

61 (नवमल्लिका, चमेली)
(Jasminum arborescens Roxb)

नवमल्लिका : कुमार.स. 19/28, ऋतु.स. 6/5

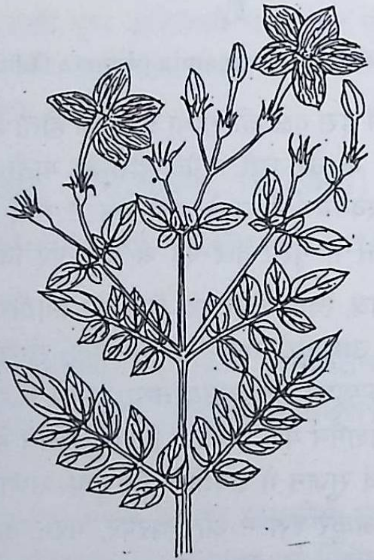

नवमल्लिका Jasminum grandiflorum Roxb.

विध्वस्य तेन सूरसैन्य महापताका,
नीतानभस्थलमलं नवमल्लिकाभाः।

उस आंधी में नवीन चमेली की तरह देवसेना की पताकाओं को छिन्न–भिन्न करके आकाश में उड़ा दिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं,
चलेषु नीलेष्वलकेश्वशोक।
पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः
प्रयाति कान्ति प्रमदाजनस्य।। **ऋतु. 6/5**

कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये चमेली पुष्प की विशेषता स्पष्ट की है।

निघण्टु एवं संहिता ग्रंथों में नवमल्लिका से वसन्ती, कुन्द, जाति आदि द्रव्यों के प्रयोग करने का संकेत मिलता है। शास्त्रीय नवमल्लिका कुन्द है। जिसे Jasminum arborescens Roxb कहते हैं। देखिये कुन्द महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में कुन्द नवमल्लिका, जाती (चमेली) कतिपय सुगन्धित पुष्पों का सुन्दरियों के केशपाशों की शोभा के लिये विषेश रूप से उल्लेख किया है।

62. नारिकेर (नारियल)
(Cocos nucifera Linn)

नारिकेर : रघु.स. 4/42, अभिज्ञान–शा.4

नारिकेर (नारियल) **Cocus nucifera Linn**

ताम्बूलीनां दलैस्तत्रः, रचिताऽऽपान भूमयः।
नालिकेरासवं योधाः, शात्रवं चं पपुर्यशः।। **रघु.स. 4/42**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शत्रुओं के दमन हेतु नारियल का आसव का पान किया।

नारियल का सामान्य परिचय : Cocos Nucifera Linn.

यह दक्षिण भारत, पूर्वी बंगाल, लंका, आदि स्थानों पर पाया जाता है। इसके कच्चे फलों को गिरी (खोपरा) कहते हैं। नारियल के मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। यह देखने में निःशाख तथ ताड़ जैसे वृक्ष होते हैं। काण्ड, बलयाकार, अपेक्षाकृत स्थूल एवं फूला हुआ होता है पत्तियाँ गुच्छक में होती हैं। पुष्पव्यूह–पत्रावृत, अवृन्त, काण्डज, स्थूल एवं मज्जरी में होता है। एक ही वृक्ष पर नर तथा स्त्री दोनों प्रकार के पुष्प पाये जाते हैं। फल प्रायः अण्डाकार, त्रिपाशिर्वक, लम्बा होता है। कच्चे फलों में रस भरा रहता है जिसे डाभ (नारिकेलोदक) कहते हैं। इसके गिरी एवं तैल, फल, पुष्प का उपयोग किया जाता है।

यह गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, केश्य, वातपित्त–शामक, जल–अग्निदीपन, रक्तपित्त–शामक, मूत्रजनन एवं ज्वरनाशक है। कच्चा फल–वृंहण, वल्य एवं रक्तपित्त शामक है। पक्काफल–वाजीकर, आवर्तजनन है। तैल कश्य, कुष्ठध्न, व्रणरोपक है। नारियल का जल स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकारी, दीपन, बास्तिशोधक, वीर्यवर्धक होता है। नारियल का फूल शीतल, रक्तातिसार, रक्तपित्त, प्रमेह और सोमरोग नाशक है। यथा–

नारिकेल स मधुरं गुरुस्निग्धं च शीतलम्।
हृद्यं सवृंहणं बस्ति शोधनं रक्तपित्तनुत्।। **आ.सा.स.**
जल के गुण-स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बा स्तिशोधनम्।
बृष्यं पित्त पिपासाध्नं नारिकेलोदकं गुरुः।। **शा.नि.**
पुष्प के गुण-नारिकेलस्य पुष्पं तु शीतं रक्ततिसार हृत्।
रक्तपित्तं प्रमेहं च, सोमरोगं च नाशयेत्।। **नि.र.**

कच्चे नारियल के गुण-विशेषत कोमल नारिकेल निहन्ति पित्तम् ज्वरमस्त्रदोषान्।

कच्चा नारियल विशेषकर के पित्तज्वर, रक्तविकार, वमन एवं दाह में उपयोगी है।

बाल्मीकीय रामायण में नारिकेर (नारियल) का उल्लेख अरण्यकाण्ड के लंका के समुद्रतट पर किष्कन्धा काण्ड के क्षीरसागर के किनारे, पश्चिमी समुद्र तट पर उत्तरकाण्ड के सेतु निर्माणार्थ आदि प्रसंगों में उल्लेख मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

63. निचुल
(Barringtonia acutangula Gartn)

निचुल : विक्रमो 4/13 मेघदूत पूर्व.....

विद्युल्लेखा कनकरूचिरं श्रीवितानं ममाभ्रंम्,
व्याघूयन्ते निचुलतरूभि र्मज्जरी चामराणि। **विक्र. 4/13**

वेत्र वृक्ष अपनी मज्जरी रूप चामर के चामर झला करते हैं। राजा गन्धमादन पर्वत पर खोई हुई अपनी प्रिया को ढूंढता हुआ वन के वर्णन के प्रसंग में कहता है कि निचुल वृक्ष की पुष्प मज्जरियाँ चामर का कार्य कर रही हैं।

स्थानादस्यात् सरसनिचुलात्। **पूर्व.मेघ.**

वक्तव्य : संस्कृत साहित्य एवं संहिता ग्रंथों के कतिपय स्थलों पर निचुल शब्द का उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों के टीकाकारों ने निचुल से हिज्जल समुद्र फल एवं जलवेतस यह अर्थ किया है। महाकवि कालिदास के उपर्युक्त पुष्पमज्जरी का चामर से तुलना कि है, इस आधार पर निचुल–जलवेसस (सेलिक्स) की प्रजाति होनी चाहिये। निचुल हिज्जल दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि यह जलद प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला द्रव्य विशेष है। चरक सुश्रुत में हिज्जल का नाम नहीं मिलता है। चरक ने वमनोपग दशेमानि द्रव्यों में निचुल, विदुल यह पाठ किया है। किन्तु निघण्टुकार ने हिज्जल का स्वतन्त्ररूप से वर्णन किया है। अधिकतर विद्वानों ने निचुल से हिज्जल (समुद्रफल) नामक द्रव्य स्वीकार यिका है जो कि Barringtonia acutangula नामक वृक्ष है।

निचुल का समान्य परिचय : Barringtonia acutangula Gartn

बंगाल एवं दक्षिण में इसके वृक्ष अधिकतर पाये जाते हैं। इसका मध्याकार वृक्ष सदा हरा रहता है। पर्ण–अभि–लट्वाकार, अभिप्रासवत् एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प लाल रंग के एवं मज्जरियों में आते हैं। इसे साधारण भाषा में समुद्रफल कहते हैं। फल का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है। छाल मछलियों के लिये विषैली है। समुद्रफल कफघ्न, वामक, आनुलोमिक एवं वेदना–स्थापन है। इसकी क्रिया शरीर पर मदन फल सद्यश होती है। कफज विकारों में यह अच्छी औषधि मानी जाती है। इसके चूर्ण का नस्य, शिरोवेदना में लाभ करता है। समुद्रफल गरम, कड़वा, त्रिदोषनाशक, वातरोग, शिरोरोग एवं भूतवाधाहर है। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समुद्रस्य फलं चोष्णं तिक्तं चैव त्रिदोषजित्।
वातं च भूवाधां च कफ भ्रान्ति शिरोरूजम्।।
जलेन धृष्ट्वा पीतं चेत कृमिनाशकरं परम्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में निचुल (समुद्रफल) का उल्लेख अरण्यकाण्ड के अध्याय 75/24 में पपासर के प्रसङ्ग में वर्णित है।

64. नीवार (तृणधान्य)
(Orijza)

नीवार : रघु.स. 5/9, 15 अभिज्ञान 4–23

नीवार पाकादि कडंगरीयैरामृश्यते जानपदैर्नेकच्चित्।
कालोप पन्ना तिथिकल्प्यभागं, वन्यं शरीरस्थिति साधनं वः।।
रघु.स. 5/9

योग्य समय पर प्राप्त हुआ अथितियो को भाग में मिलने वाले वन में उत्पन्न नीवार आदि तृण धान्य पशुओं से तो नाश नहीं किये जाते हैं। राजा ऋषिआश्रम बासियों से यह जानकारी करते हैं।

नीवाराः शुकगर्भः कोटरमुखः भ्रष्टातरूणामघः। अभिज्ञान शा. 4-23

ऋषि आश्रम के चारों तरफ नीवार आदि धान्य विद्यमान था। यह प्रसङ्ग अभिज्ञान शाकुन्तल में मिलता है।

आरण्यकोपात्त फलप्रसूतिः, स्तम्वेन नीवार इवावशिष्ठः।
रघु.स. 5/15

वनवासियों के फल तोड़ने से स्तम्बमात्र शेष रहे नीवार के समान शोभित होते हैं।

सा दष्ठनीवार बलीनि हिस्त्रैः, संबद्धवैरवानसकन्यकानि।।
रघु.सं. 14-28

वह क्रूर पशुओं से नीवार धान की बालिखाये हुये दिखाई देते हैं। यह जंगली धान्य है जिसे तपस्वी लोग खाते हैं जोकि चावल की जंगली स्वयंजात किस्म है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :

संहिता ग्रंथों में नीवार नामक द्रव्य का उल्लेख मिलता है। संहिताग्रंथों के टीकाकारों के आधार पर यह शालिधान्य का एक वन्य प्रकार है जिसे उडकाधान्य भी कहते हैं। संस्कृत–साहित्य में नीवार नामक ऋषिधान्य का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। यह मुनियों का धान्य है जिससे तपस्वी लोग सेवन करते हैं। वनस्पति शास्त्र के आधार पर यह जंगली किस्म का धान्य Orijza की किस्म है जोकि पानी वाले स्थानों पर स्वयं पैदा होती है। यह मधुर, स्निग्ध, लघु एवं पथ्या है। यथा

नीवारो मधुरः स्निग्धः पवित्रः पथ्यदो लघुः।। रा.नि.

बाल्मीकीय रामायण के अरण्य काण्ड मे नीवार (तृणधान्य) का उल्लेख सुदीक्षण के आश्रम से आगे एवं पंचवटी के प्रसंग में मिलता है।

65. नीप (कदम्ब)

(Anthocephalus indicus A. Rich)

नीप : ऋतु.स. 3/13, विक्र.मो. 4/64, पूर्व.ये. 21

मुक्ता कदम्वकुटजार्जुन सर्जनीपान्।
सपृच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः।। ऋतु. 3/१३
नीप स्कन्ध निषण्णहस्तः करिणीसहायो नागराजः तिष्ठति।
विक्र. 4-64

संस्कृत साहित्य में नीप शब्द से कदम्व अर्थ किया है कुछ विद्वानों का मत है कि कदम्व की दूसरी प्रजाति का नाम नीप है। देखिये कदम्व में। कदम्व के प्रसंग में विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। बाल्मीकीय रामायण में (कदम्व) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के चित्रकूट में पंचवटी में एवं माल्यवान् पर्वत पर आदि कतिपय स्थलों पर मिलता है।

66. नीलोत्पल (नीलकमल)

नीलोत्पल : कुमार.सं. 1/46, ऋतु.सं. 4/9, अभिज्ञान. 1/18.

प्रवालनीलोत्पल निविशेषमधीर विप्रेक्षितमायताक्ष्या।
कुमार.सं. 1/46

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मन्द पवन से हिलने वाले नील कमल की तरह सुन्दर कटाक्ष अवलोकन करना पार्वती ने हरिणियों से सीखा।

प्रफुल्ल निलोत्पल शोमितानि,
सरांसि चेतासि हरन्ति पुंसाम्। **ऋतु. 4/9**

हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुये कवि ने तालावों में नीलकमल पुष्पों की सुन्दरता का चित्रण किया है।

ध्रुवं स नीलोत्पल पत्र धारया। **अभि.शा. 1/18**

नीलोत्पल, उत्पल का ही पर्यायवाची शब्द है। देखिये उत्पल में। बाल्मीकीय रामायण में नीलोत्पल का उल्लेख अरण्यकाण्ड के पंपासर के प्रसंग में मिलता है। अरण्यकाण्ड के मायावी मृग के वर्णन के प्रसंग मे किष्कन्धा काण्ड के पंपासर में, माल्यवान् पर्वत पर श्रीराम की उपमा के प्रसंग में सुन्दर काण्ड के अग्नि के लपटों के समान आश्रम के आगे एवं पंचवटी के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

67. पंकज (कमल)

पंकज : रघु.स. 4/14, 8/55, 15/52, विक्रमो. 1/18 मालवि. 2/10 अभिज्ञान 5/31

पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा। **रघु.स. 4/14**

जैसे कि शरद ऋतु में कमल पुष्प तालाबों से सुलभ होते हैं। उसी तरह राजा रघु को कमल के लक्षणों वाली राजलक्ष्मी प्राप्त हुई।

निशिसुपृभिवैक पंकज विरताम्यन्तर षट्पदस्वनम्।। रघु.स. 8/55

विखरी हुई अलका वलीयुक्त वचन से रहित तेरा मुख रात्री में मूंदे हुये भीतर भौरों के शब्द से रहित अकेले कमल के समान मुझे दुखी करता है।

सतद्वक्त्रं हिमक्लिष्ठ किञ्जल्क मिवपङ्कजम्।। **रघु.स. 15/52**
निशावसाने नलनीवपङ्कजम्। **विक्रमों. 1/18**
असमग्रलक्ष्यकेसर मुच्छ्रसदिव पङ्कजंद्यष्ठम्।। **माल.वि. 1/10**

कमल के समान मुख विकसित एवं मुस्कराहट से युक्त था।

सवितावोधयति पङकजान्येव।। **अभिज्ञान.अ. 5/31**

महाकवि ने कतिपय स्थलों पर पङ्कज शब्द का उल्लेख किया है जो कि कमल का पर्यायवाची है। देखिये कमल।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

68. पद्मिनी (कमल)

पद्मिनी : रघु.स. 3/19, 4/5, 39,61, 19, 75 माल.मि. 2/12, कुमार.स. 1/15, पूर्व. में 42, उत्तर. 3/23

निवातपद्म स्तिमिलेन चुक्षुषा, नृपस्य कान्तं पिवतः सुताननम्।
रघु.सं. 3/13

पवन रहित कमल के समान निश्चल नेत्रों से पुत्र के मुख को पान करते हुये देखा।

पद्मा पद्मातपत्रेण भेजै साम्राज्यदीक्षितम्। **रघु.सं. 4/5**
आपाद पद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।। **रघु. 4/39**

चरण कमल पर नम्रीभूत हुये अर्थात कवि ने पैरों की उपमा कमलों से की है।

यवनी मुखपद्मानां सेहेमधुमदं न स.। **रघु.4/61**

वह रघु उस समय में वादलों के उदय होने से कमलों के वालातप के समान यवनी स्त्रियों के मधु मद को न सहता हुआ देखा।

इन्दोर गतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंशवः। **रघु. 19/75**

चन्द्रमा की किरणें कमल में नहीं जाती हैं सूर्य की किरणें कुमुद में नहीं जाती परन्तु गुणी के गुणों की प्रशंसा शत्रु पक्ष भी करता है।

. इस प्रकार उपर्युक्त कतिपय स्थल पद्मिनी के सन्दर्भ में मिलते हैं जो कि कमल का ही पर्यायवाची है। विस्तृत विवरण देखिये कमल में। बाल्मीकीय रामायण में पद्मिनी (कमलिनी) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड राम के वियोग में कमल का शुष्क होना पंचवटी में अशोकवन में सीता की तुलना पद्मिनी से आदि प्रसंगों मे है।

69. पारिजात

(Nyctanthes arbortristis Linn)

पारिजात : रघु.सं. 6/6, 10/11, 19/9 कुमार.सं. 8/29, 9/21, 38, 12/29 13/43, विक्र. 2/45

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रराज धाम्ना रघुसूनुरेव, कल्पद्रुमाणामिवपारिजात:।। रघु. 6/6

रघुपुत्र कल्पवृक्षों के मध्य में पारिजात के समान शोभित हुये।

आविर्भूतमयां मध्ये, पारिजात मिवापरम्।। रघु. 10/11

पारिजात (हारसिंगार) Nyctanthes arbortistis Linn.

शाखा के समान दिब्यभूषणों से युक्त भुजाओं से शोभित समुद्र के बीच में प्रगट हुये दूसरे पारिजात के समान दखाई दिये।

''द्वितीयापि सखी शच्या: पारिजातांश भागिनी।। रघु.वं. 8

पारिजात की अंश में भाग लेने वाली इन्द्राणी की सखी हुई।

तां पुलोमतनयालकोचितै : पारिजात कुसुमै : प्रसाधयन्।।
कुमार.सं. 8/29

इसके बाद नन्दन वन में पहुंचकर शंकर जी बहुत दिनों तक पारिजात के उन फूलों–पार्वती जी का श्रृंगार करते रहे, जिनसे इन्द्राणी के वाल सजाये जाते थे एवं देवताओं की बस्त्तिंयां इन प्रसाधन कला को बहुत चाव से देखती थीं। अर्थात् पारिजात पुष्पों का उपयोग केशश्रृंगार के लिये प्राचीन काल से ही चला आ रहा है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

रतिश्लधं तत्कवरी कलापमंसावसक्तं विगलत्प्रसूनम्।
स पारिजातोद्‌मपुष्पमैय्या, स्त्रजावबन्धा मृतमूर्तिमौलिः।।

कुमा.स. 9/21

सम्भोग करते समय पार्वती जी की चोटी उनके कन्धों पर बिखर गई थी, जिससे चोटी में गूंथे हुये पारिजात के फूल झड़ गये थे एवं शंकर जी ने उन बिखरे हुये बालों को पारिजात के फूलों की माला से बांध दिया।

तौ पारिजात प्रसवप्रसङ्गौ मरूत्सिषेवे गिरिजागिरीशौ।।

कुमार.सं. 9/39

उस समय आकाश गंगा के जलकणों से भरे तथा पारिजात के फूलों की सुगन्धि से सुवासित एवं पार्वती की रतिजनित थकान को दूर करने वाले वायु ने पार्वती की सेवा की।

किरीटकोटिच्युतपारिजात, पुष्पोत्करेणानमितेनमूध्नाः।।

कुमार.सं. 12/29

जिस समय स्वर्ग में रहने वाले देवताओं ने शिवजी को झुक कर प्रणाम किया तो उनके मुकुट पर लगे हुये पारिजात के पुष्प गिरने लगे।

निसर्ग कल्पद्रुमतोरणं तं स पारिजात, प्रसवस्त्रगाठयम्।।

कुमा.सं. 13/43

कार्तिकेय उस भवन में पहुंचे जहां पारिजात की फूलों की ढेरियां बिखरी हुई थीं।

पारिजात का सामान्य परिचय : Nyctanthesarbortristis Linn

इसके छोटे झाड़ीदार वृक्ष मध्य भारत तथा हिमालय के निचले प्रदेशों में अधिकतर पाये जाते हैं। पत्र खरस्पर्श, रूक्ष, अण्डाकार एवं सवृन्त होते हैं। पुष्प अत्यन्त सुगन्धित श्वेताभ केसरिया रंग के होते हैं। ये रात को खिलते हैं तथा सुबह को झड़ जाते हैं। साधारण भाषा में इनको हारसिंगार कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि पारिभद्र ही पारिजात है जिसे मन्दार भी कहते हैं। लेखक के विचार से पारिजात, पारिभद्र से भिन्न द्रव्य है। सम्भवतः पारिभद्र का पर्याय भी पारिजात हो। निघण्टु संग्रह में पारिजात का स्पष्ट वर्णन मिलता है। जो कि हारसिंगार है। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्राजक्त पारिजातश्च,हारश्रृंगारपुष्पकः।
नाल कुंकुमको रागपुष्पीचं खरपत्रकः।।

यह ज्वरघ्न, कफघ्न, मृदुविरेचक एवं शामक है। गृध्रसी वात में पत्र क्वाथ का व्रयोग विशेष उपयोगी है। हारसिंगार के पत्तों का रस कड़वा, ज्वर एवं गृध्रसी वात में उपयोगी है। इसकी छाल पान में रखकर खाने से खांसी दूर होती है। यथा–

रसः प्राजक्तपत्रस्य ज्वरघ्नास्तिक्तकस्मृतः।
पर्णखण्ड समायुक्तः त्वचाकासविनाशनः।। **श.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में पारिजात (हारसिंगार) का उल्लेख उत्तराकाण्ड के कैलाश में रम्भानामक अप्सरा के बालों के श्रृंगार में, अयोध्या की वाटिकाओं में आदि कतिपय स्थलों पर उल्लेख मिलता है।

70. पाटला

(Stereospermum suaveolens DC)

पाटला : रघु.स. 16/52, ऋतु.स. 1/28, 4/14, 5/13, अभिज्ञा. 1/3

मनोज्ञगन्धं सहकार भङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च।
सं बन्धता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघा बधिना प्रमृष्ठा।।
रघु.स. 16/52

मनोहरगंध युक्त आम के पत्ते और पुरानी मदिरा और नये पाटल के फूल संचय करने वाली ग्रीष्म ने कामी पुरुषों के सब दुःख दूर किये।

कमल वन चिताम्वुः पाटलामोदरम्यः।। **ऋतु.सं. 1/28**

कवि ने ग्रीष्म कालीन पाटला पुष्प का सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

रात्रि प्रजागर विपाटल नेत्र पद्मा।। **ऋतु 4/14**
सुभग सलिलावगाहः पाटल संसर्गि सुरभिवनवाताः।। अभि.शा. 1-3

ग्रीष्मकाल में पुष्पित पाटला वृक्ष बहुत सुन्दर लगते हैं ऐसी कवि की कल्पना है।

पाटला का सामान्य परिचय : Stereospermum suaveolens DC

सामान्य भाषा में इसे पाठर कहते हैं। यह उत्तरी भारत, बंगाल, बिहार एवं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमालय की तराई में सुलभ है। इसके मध्यम आकार के वृक्ष होते हैं। पर्ण 1–2 फीट तक लम्बे, विपरीत क्रम में स्थित, अयुग्मपक्षाकार, या विषमपक्षवत् होते हैं। पुष्प सुगन्धित बाहर से लाल किन्तु अन्दर से पीली रेखाओं से युक्त होते हैं। फली एक फुट तक लम्बी टेढ़ी ऐंठी हुई–सी, बेलनाकार होती है। पुष्प गीष्म ऋतु में नई पत्तियों के साथ खिलते हैं। औषध उपयोग में त्वक् एवं पुष्प का व्यवहार होता है। सित एवं रक्त पाटला दो भेद शास्त्रकारों ने बताया है। यह तिक्त, कषाय, कटु उष्ण वीर्य, त्रिदोषशामक, वेदनास्थापन, व्रणरोपण, ग्राही, ज्वरघ्न, मूत्रल एवं शोथहर है। पुष्प–हृद्य एवं बाजीकर है। पाटला अरूचि, सूजन, रुधिरविकार एवं श्वास उपयोगी है। इसका फूल, वात, पित्तातिसार और दाहनाशक है। फल हिचकी और रक्तपित्त में उपयोगी है। निघण्टुकारों ने श्वेत, रक्त, भूमिपाटला, क्षुद्रपाटला एवं बल्ली पाटला भेद से अलग–अलग उल्लेख किया है। यथा–

पाटलाऽरूचि शोथास्त्रश्वास तृड्छर्दिनाशिनी।
नात्पुष्णां तुवरस्वादु तत्पुष्पं कफ वातनुत्।।
पित्तातिसारदाहघ्नं फलं हिक्कास्त्रपित्तनुत्।। **धा.नि.**
पुष्पं कषाय मधुरं शीतं पित्त कफास्त्रजित्।। **शो.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में पाटला का उल्लेख किष्कन्धा काण्ड के 1/80 युद्धकाण्ड के 39/4 पंचवटी में, पंपासर के बन में पंपा के पर्वतीय क्षेत्र में आदि कतिपय स्थलों का उल्लेख मिलता है।

71. प्लक्ष (पारवर)

(Fiucs lacor Buch-Ham)

प्लक्ष रघु.सं. 8/93, 13/69, 17/12

तस्य प्रसह्यहृदयं किल शोक शंकु,
प्लक्षप्ररोह इव सौधतलंविभेद।। **रघु.स. 8/93**

निश्चय ही शोक का वाण शक्ति से उसके हृदय को, घर की छत्त को बड़ के वृक्ष के समान अन्त तक भेद कर गया था।

प्लक्षान्प्ररोह जटिलानिवयन्त्रिवृद्धान्।। **रघ.सं. 13/71**

डाढी, मूंछों के बढ़ने से मुख का रूप बदले हुये वट वृक्ष की जटा सद्यश मालूम थी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दूर्वायवाङ्कुर प्लक्ष त्वगूभिन्न पुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन्।। **रघु.सं. 19/12**

दूव यवांकुर बट की छाल और महुये के पुष्प सहित अर्चना पाई। संस्कृत साहित्य में प्लक्ष नाम द्रव्य से वट का उल्लेख टीकाकारों ने किया है। परन्तु लेखक के विचार से प्लक्ष नाम द्रव्य से वट का उल्लेख टीकाकारों ने किया है। जो कि आकृति में मिलता जुलता है। वनस्पति शास्त्र के आधार पर इसे Ficus Lacor कहते हैं। बाल्मीकीय रामायण में प्लक्ष बालकाण्ड आयोध्याकाण्ड के हवन सामग्री में काष्ट का प्रयोग एवं पंपासर के इसके वृक्षों का मिलना आदि प्रसंग है। पंचक्षीरी वृक्षों में प्लक्ष (पाखर) का उल्लेख मिलता है।

प्लक्ष का सामान्य परिचय : Ficus Lacor Buch-Ham

इसे साधारण भाषा में पाखर कहते हैं। इसके वृक्ष भी मध्यमाकार के एवं बड़े होते हैं। ये वृक्ष जंगलों एवं ग्रामों के निकट पाये जाते हैं। शाखायें सघन एवं सदा हरित होती हैं। यह शीतल, व्रणरोपक, रक्तपित्तघ्न एवं योनिरोग नाशक है। छाल का क्वाथ गण्डूष, व्रणंप्रक्षालन एवं डूश के लिये काम में लाया जाता है। यह कषैला शीतल, व्रण, रूधिरविकार एवं सूजन में उपयोगी है। योनिगत विकारों में छाल के श्रृतकषाय द्वारा योनिप्र, क्षालन में किया जाता है। यह पञ्चक्षीरीवृक्षों में मुख्य है। यथा–

प्लक्ष कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः।
दाहपित्त कफास्त्रघ्नः शोफहा रक्तपित्तहृत्।। **भा.नि.**

72. पुण्डरीक (कमल)

पुण्डरीक : रघु. 4/17, 10/9 मालवि. 4/9

पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काश चामरः।
ऋतुर्विडम्वयामास..... **रघु.सं. 4/17**

कमल के छत्र और खिली काश के चामर वाली शरद्. तु ने राजा की होड़ की, परन्तु उसकी शोभा को प्राप्त नहीं हुई।

प्रवद्ध पुण्डरीकाक्षं., वालातय निभांशुकम्।
दिवसं शारदामिव..... **रघु.सं. 10/9**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

खिले हुये कमल के समान नेत्र और प्रातः काल के धूप के समान वस्त्र श्रीवत्स को शोभित हैं।

सूर्योदये भवति या सूर्यास्तसमेय च पुण्डरीकस्य।
वेदनेन सुवदनाय..... **माल.वि. 4/7**

सूर्योदय एवं सूर्योस्त के समय कमल की दो अवस्थायें होती हैं। इस सुमुखी मालविका के मुख ने एक ही क्षण में उन दोनों अवस्थाओं को धारण कर लिया है। विस्तृत विवरण देखिये कमल में।

बाल्मीकीय रामायण में पुण्डरीक का उल्लेख अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड, सुन्दरकाण्ड आदि कतिपय स्थलों पर वर्षाकाल में श्वेत मल खिले हुये प्रसंग में सीता के अश्रुपूरित नेत्रों की तुलना में एवं चित्रकूट के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

औषधीय गुणधर्म :

पुण्डरीकं हिमंतिक्तं मधुरं पित्तनाशनम्।
दाहघ्न मस्त्रशोषघ्नं, पिपासाभ्रम नाशनम्।। **ध.नि.**

यह कषैला, मधुर, वर्ण को उज्वल करने वाला, नेत्रों को हितकारी, रूधिर विकार, पित्त, श्रम एवं दाह नाशक है। आयुर्वेद में श्वेतकमल, रक्तकमल, नीलकमल आदि कतपय किस्मों का विशद रूप से उल्लेख मिलता है।

73. पुन्नाग
(Calophyllum inophylla Vahal)

पुन्नाग : रघु.सं. 4/57

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोग्दार सुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्य शिलीमुखा।। **रघु.स. 4/51**

खर्जूर के स्कन्धों में बंधे हुये हाथियों के मद निकलने के सुगन्धि वाले गण्डस्थलों में पुन्नाग वृक्षों से भौंरे टूट पड़े। निघण्टु ग्रंथों में पुन्नाग एवं सुरपुन्नाग का उल्लेख नागकेशर के प्रसंग में मिलता है। पुन्नाग, सुरपुन्नाग एवं नागकेशर तीनों द्रव्य एक ही कुल के हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पुन्नाग का सामान्य परिचय : Calophyllum Inophyla Vahal

इसके बहुत सुन्दर वृक्ष दक्षिणी भारत के समुद्री किनारे पर तथा उड़ीसा, आसाम आदि स्थानों पर पाया जाता हे। पर्ण–लम्बा–गोल 3–4 तक चौड़े होते हैं। पुष्प श्वेताभ वर्ण के और सुगन्धित होते हैं। फल 1–1 1/2 व्यास में चिकने एवं पीले रेंग के होते हैं। कतिपय स्थानों पर पुष्प एवं फलों का उपयोग नागकेशर के नाम से किया जाता है।

यह मधुर शीत, सुगन्धित एवं पित्तनाशक है। खुजली तथा फुन्सियों पर तैल का उपयोग लाभदायक होता है। बाल्मीकीय रामायण में पुन्नाग अयोध्याकाण्ड 94/24, चित्रकूट में अरण्यकाण्ड 15/16 पंचवटी में पंपासर के वनों में अयोध्या की अशोक वटिका के आदि स्थलों पर वर्णन मिलता है।

पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धि पित्तनाशकृत्।
भूतविद्रावणं चैव देवतानां प्रसाधनः।। ध.नि.

74. पुष्करबीज (कमलगट्टा)

पुष्कर बीज : कुमार.स. 3/65

विशेषितां भानुमतो मयूखैर्मदाकिनी पुष्करवीजमालाम्।।

कुमार.स. 3/65

पार्वती ने प्रणाम करने के अनन्तर तपश्चर्या पूरी करके उठे हुये शंकर भगवान को अपने हाथ में सुखाये हुये कमलगट्टों की माला को पहनाया। पंकज, कमल, पद्म, पुष्कर अम्बुज, अरविन्द, सरोरुह, अम्भोज, सरसिज आदि का उल्लेख कमल के पर्यायवाची शब्दों के लिये किया गया है।

75. प्रियङ्गु

(Callicarpa macrophylla Vahal)

प्रियंगु : माल.अ. 3/8, 9, ऋतु.स. 4/10, 6/12

प्रियंगु लतापरिक्षिप्तमशोक शिलापट्टकं प्रविशावः।। माल.वि.3

महाकवि ने प्रियंगु के साथ लता शब्द भी दिया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी शाखायें लतासद्यश होती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रिये प्रियंगुः प्रियविप्रमुक्ता
विपाण्डुतां याति विलासिनीव।। **ऋतु 4/10**

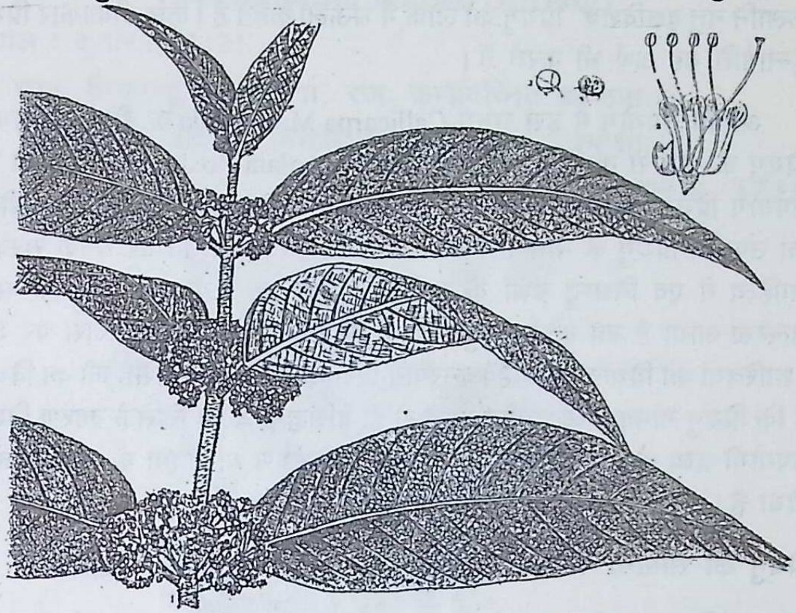

प्रियङ्गु **Callicarpa inacrophylla**

हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुये महाकवि ने प्रियंगु की सुन्दरता का वर्णन किया है।

प्रियंगु कालीयक कुङ्कु मानि
स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः।
आलिप्यते चन्दन मंगनाभिः,
मदालसाभि मृगनाभियुक्तम्।। **ऋतु.सं. 6/12**

कवि ने कालीयक, कंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों के साथ प्रियंगु की गणना की है। जिससे यह स्पष्ट है कि यह भी सुगन्धित द्रव्य है।

वक्तव्य : कहाकवि ने अपने ग्रंथों में प्रियंगु के लिये फलिनी, श्यामा लता आदि कतिपय पर्यायों का उल्लेख किया है। प्राचीन काल से ही प्रियंगु का उपयोग उद्वर्त्तन एवं लेप आदि के रूप में होता आया है।

संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों में प्रियंगु के कङ्गुधान्य का भी पर्याय मिलता है। यथा प्रियंगु गन्ध द्रव्यम्, कंगुश्च "अमरसिंह ने प्रियंगु एवं कंगु को भिन्न–भिन्न

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों से वर्णन किया है। भावप्रकाश कार ने प्रियंगु एवं गन्ध प्रियंगु से दो प्रकार के भेदों का वर्णन किया है। शारंगधर के टीकाकार ने "प्रियंगु लताविशेष तस्य फलानि नतु वृक्षविशेष" प्रियंगु को लोक में घऊंला कहते हैं। कुछ टीकाकार प्रियंगु पुन्नागेति यह अर्थ भी करते हैं।

औषधि उपयोग में इस समय Callicarpa Macrophlla के बीजों का प्रयोग प्रियंगु के नाम से करते हैं तथा कुछ क्षेत्रों में Aglaia Roxburghi के फलो का उपयोग प्रियंगु के नाम से करते हैं। कुछ क्षेत्रों में Prunus Mahaleb के बीजों का उपयोग प्रियंगु के नाम से किया जाता है। लेखक का विचार है कि संस्कृत साहित्य में एवं निघण्टु ग्रंथों के कतिपय स्थलों पर प्रियंगुलता का एक साथ उल्लेख आया है वह कोई उपर्युक्त द्रव्यों से भिन्न वनस्पति है। जिस पर शा: ा शास्त्रियों को विचार करना है। वनस्पति विशेषज्ञ ठा. बलवन्त सिंह जी का विचार है कि प्रियंगु नामक द्रव्य प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध द्रव्य था जिसके कारण विशेष उपयोगी द्रव्य होने से विद्वानों ने लता शब्द विशेषण या उपमा के रूप में जोड़ दिया है।

प्रियंगु का सामान्य परिचय : Callicarpa Macrophylla Vahal

यह हिमालय की तराई से लेकर काश्मीर, आसाम तथा बंगाल, बिहार तक पाया जाता है। इसकी गुल्मनुमा नत शाखादार झाडियाँ होती है। पर्ण लम्बे, अण्डाकार, प्रासवत् एवं लम्बाग्र होते हैं। पुष्प वर्षाकाल में खिलते हैं, खिलने पर ये पुष्प गुलाबी रंग के होते हैं। फल–शरद काल में पकते हैं तथा उग्र सुगन्धित होते हैं। डालियां, पुष्प गुच्छों एवं फलों से झुक जाती हैं।

आयुर्वेद में गुण धर्म : यह तिक्त, कषाय, मधुर, कटुविपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषशामक दाह प्रशमन, वेदनास्थापन, दीपन, अनुलोमन, रक्तशोधक, ज्वरघ्न एवं दाह प्रशमनकर है।

प्रियंगु शीतलो वांतिदाह, पित्तज्वरास्त्रजित्।
मुखकांति प्रजनो गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः।। **मदनविनोद**

बाल्मिकीय रामायण में प्रियंगु किष्कन्धा काण्ड 26/27, सुग्रीव के राज्याभिषेक के प्रसंग में, हनुमान जी के लंका जाते समय के प्रसंग में, अयोध्या के अशोक वन के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

76. प्रियाल (चिरोंजी)

(Bachanania lanzan Spreng)

प्रियाल : कुमार.सं. 3/31

मृगाः प्रियालद्रुममज्जरीणां, रजः कणैर्विघ्नित द्यष्ठिपाताः
मदोद्धता : प्रत्यनिलं विचेरु र्वनस्थली मर्मर पत्रमोक्षाः।।

कुमार.सं. 3/31

प्रियाल (चिरोंजी) Buchanania lahzan Spreng

आंखों में प्रियाल पुष्पों को पराग गिरने से अच्छी तरह देखने में असमर्थ एवं मद से उन्मत्त हरिणादिक हवा के सम्मुख सूखे पत्तों के गिरने से मर्मर शब्द को करने वाली वन भूमि पर इधर–उधर दौड़ते थे। यह वृक्ष भल्लातक कुल का है। अतः पुष्प मज्जरियों का रस यदि आंखों में पड जाय तो वेदना एवं छाले पड़ जाते हैं यही कारण है कि वनमृगों के नेत्रों में यह रस गिर जाय तो उनको देखने में असुविधा होती है।

प्रियाल का सामान्य परिचय : Buchanania lanzan Spreng

प्रियाल के वृक्ष समस्त भारत के उष्ण एवं शुष्क प्रदेशों में पाये जाते हैं। यह हिमालय, मध्य तथा दक्षिण भारत उड़ीसा आदि स्थानों पर अधिकतर पाया जाता है। इसके मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं। पर्ण–आयाताकार, अण्डाकार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पत्रतट–अखण्डित, चर्मिल एवं कुण्ढित होते हैं। पुष्प–उभयलिंगी, अवृन्त एवं हरिताभ श्वेत वर्ण के होते हैं। इसके बीजों को चिरोंजी कहते हैं। पके फल खाये जाते हैं जो कि स्वाद में खटा–मिट्ठा होता है। गिरी लालिमा लिये हुये भूरे रंग की होती है इसी गिरी को चिरौंजी कहते हैं।

यह गुरू स्निग्ध, मधुर विपाक शीतवीर्य, वातपित्त–शामक, वर्ण्य, केशरज्जन कुष्ठघ्न, वल्य, हृद्य, मूत्रल एवं वाजीकार है। छाल में टैनीन पाई जाती है। चिरौंजी मेवे की तरह खाई जाली है। इसकी मिठाई भी बनती है। यह उत्तम पौष्टिक एवं वृंहण है। चरक ने श्रमहर एवं उदर्द प्रशमन महाकषाय तथा सुश्रुत ने न्यग्रोधदि गण में प्रियाल का पाठ दिया है। यथा–

चारोजी मधुरा वृष्या, चाम्ला गुर्वीसरामता।
मलस्तम्भकारी स्निग्धा, स्निग्धा, शीतला धातुविवर्धिनी।
वृष्या च दाहपित्तघ्नी, तत्तैलं मधुरं गुरूः
किंञ्चिदुष्णा कफकरं पित्तवात विनाशनम्।। **नि.र.**
प्रियालं मधुरं स्निग्धं, वृंहण वातपित्तजित्।। **रा.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में प्रियाल (चिरौंजी) का उल्लेख अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड में चित्रकूट के प्रसंग में पंपासर के पास, एवं लंका जाते समय हनुमान जी ने मार्ग में प्रियाल के वृक्षों को देखा आदि प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

77. पूग (सूपारी)
(Areca catechu Linn)

पूग : रघु.सं. 4/44, 6/64

ततो बेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्य जयो ययौ।। **रघु.सं. 4/44**

इसके उपरान्त बिना यत्न जय पाने वाला रघु सुपारी के फले वृक्षों से भरे समुद्र के किनारे–किनारे दक्षिण दिशा को गया।

ताम्बूल वल्ली परिणद्धपूग, एलालता लिंगित चन्दनासु।
तमालपत्रा स्तरणासुरन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु।।
रघु.सं. 6/64

पान की लताओं से ढके हुये सुपारी के वृक्षों वाली तथा इलायची के बेलों

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

से लिपटी चन्दन वाली और तमाल पत्रों के बिछोने वाली मलयाचल पर्वत सुन्दर पवन से युक्त है।

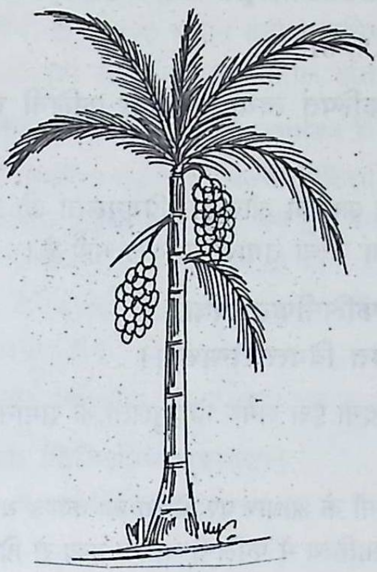

पूग (सूपारी) Areca catechu

पूग का सामान्य परिचय : Areca Catechu Linn

यह भारत के दक्षिण ब्रुम्बई, मैसूर, मद्रास एवं बंगाल के समुद्र तटवर्ती प्रदेशों तथा आसाम में सुपारी की प्रचुर मात्रा में खेती की जाती है। यह मलाया, द्वीप का आदिवासी पौधा है। कच्चे फलों को जल में उवाल कर लाल सुपारी बनाई जाती है। यह चिकिनी सुपारी के नाम से बाजारों में मिलती है। सुपारी के नारियल सद्यश वृक्ष होते हैं। पर्ण लम्बे एवं अनेकों पत्रक वाले होते हैं। पुष्प व्युह–अवृन्त, काण्डज एवं उभयलिंगी होता है। फल का बाहरी आवरण नारियल सद्यश सूत्रमय होता है। इनको हटाने पर सुपारी के बीज निकलते हैं। कच्चे फल विषैले मादकं होत होते हैं।

यह कषाय मधुर, विपाक में कटु, कफपित्तशामक, स्तम्मन, व्रणरोपण एवं गर्भाशय शोथहर है। विशेषतया सुपारी ओजोनाशक एवं विकासी द्रव्य है। इसके अधिक सेवन से भ्रम पैदा होता है जिससे नशा एवं चक्कर आने लगते हैं। यथा–

भेदि सम्मोह कृत्पूगं कषायं स्वादुरोचनम्।
कफपित्तहरं रूक्ष वक्त्रक्लेद मलापहाम्।। ध.नि.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

78. फलिनी (प्रियंङ्गु)

(Callicarpa macrobhylla Vahul)

फलिनी : रघु.सं. 8/61

मिथुनं परिकल्पितं त्वया, सहकार-फलिनी च नन्वियौ।

रघु.सं. 8/61

हे प्रिये तुमने आमको और इस प्रियंगुलता को जोड़ा माना था, इन दोनों के विवाह के बिना जाना तुमारा उपयुक्त नहीं है।

पश्य पक्व फलिनीफलत्विषा,
विम्वलाञ्छित वियत्सरोम्भसा।। **कुमार.सं. 8/61**

देखो यह चन्द्रमा इस समय प्रियंगुलता के समान लाल रंग का दिखाई पड़ रहा है।

उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर प्रियंगु का काण्ड या फल रक्ताभ वर्ण का होना चाहिये। संस्कृत साहित्य में फलिनी नामक द्रव्य से प्रियंगु लिया गया है। देखिये प्रियंगु।

79. बन्धूक (बन्धुजीव)

(Pentapetes phoenicea W. & A.)

बन्धूक : ऋतु.सं. 3/5, 25।

भिन्नाज्जन प्रचयकान्ति नमो मनोज्ञम्।
बन्धूक पुष्प रचिता रूणता च भूमिः।। **ऋतु.सं. 3/5**

शरद ऋतु में आकाश की शोभा बन्धूक पुष्प सद्यश रक्तवर्ण की एवं पृथ्वी कमलों के पुष्पों से शोभित होती है।

बन्धूक कान्ति मधरेषु मनोहरेषुः,
क्वापि प्रयातिसुंभगा शरदाग्मश्रीः।। **ऋतु.सं. 3/25**

सुन्दरियों की अधरों की शोभा बन्धूक पुष्प सद्यश रक्तवर्ण की थी यह सुन्दरता शरद् ऋतु में और भी अधिक बढ़ जाती है। यह श्वेत, रक्त, पीत पुष्पभेद से चार प्रकार का होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तविन्दुभिः।
बन्धूजीव पृथुभि, प्रदूषित्ताम्।। रघु.सं. 11/25

इसके उपरान्त दुफरिया के फूल के समान बड़ी 2 रूधिर की बूंदों से दूषित बेदी को देखा दुफरिया के पुष्प रक्त वर्ण सद्यश साल होते।

बन्धूक का सामान्य परिचय : Pentapetes Phoenicea W of A

इसे साधारण भाषा में दुफरिया कहते हैं। "बध्नाति चिन्तमिति वन्धूकः" इसके लाल रंग के पुष्प चित्त को बांध लेते हैं जिसके कारण इसे बन्धूक कहते हैं। गुल्म जपा समान होते हैं। प्रायः बगीचों एवं घरों में उगाया जाता है। राजनिघण्टु कार ने इसकी चार भेद बताये हैं। इसके पुष्प शरद ऋतु में अधिक खिलते हैं। इसी कारण इसे शरत्पुष्प भी कहते हैं।

यह कषाय, विपाक–कटु शीतवीर्य, वातपित्तहर एवं ग्राही है। यथा–

स्याद्वन्धुजीवो ग्राही किञ्चिदुष्णोंगुरूर्मत्तः।
पिशाच ग्रहवाधांच, नाशयेदित्तिकीतितः।। ध.नि

वक्तव्य :

चरके ने दशेमानि में बन्धूक का वर्णन किया है। विषों में दो स्थान पर बन्धूक का उपयोग किया गया है। "शिरोगते विषे नस्तः कूर्यान्मूलानि बुद्धिमान्। वन्धुजीवश्च भाग्यार्श्च सुरस्यसितस्य च।। सुश्रुत ने बन्धूक के फूल को उर्ध्वभागहर द्रव्यों में गिना है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने वन्धुजीव को मरूनीथा इतिलोके बन्धूक को बादुलीति लोके कहा है।

80. बिम्वी (कन्दूरी)
(Coccinia Indica)

बिम्वी : उत्तर.मे. 7, अभिज्ञा. 5/24, 6/20, माल.अ. 3/5, ऋतु.सं. 2/2, 22 कुमार. 3/56, 3/67

तन्वी श्यामा शिरवरिदशना पक्कविम्बाधरोष्ठी।। उत्त.मे.

अर्थात् सुन्दरियों की ओठो की लालिमा विम्वफल सद्यश है।

हिमार्त्त इव वेपते संकल इव विम्वाधरः।। अभिज्ञा. 5/24
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु, विम्वाधरं स्पृशसिचेद् भ्रमर प्रियायाः
अभि.शा. 6/20

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

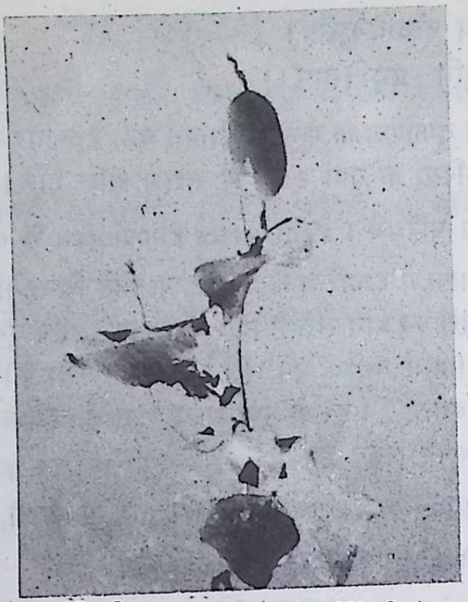

बिम्वी Coccinia indica W. & A.

जिस प्रकार भ्रमर कमल में बन्द होकर सुन्दर आनन्द अनुभव करता है उसी प्रकार रतिकाल में विम्वफल सद्यश ओठों का पान करने पर सुख की अनुभूति होती है।

रक्ताशोकरूचा विशेषितगुणों बिम्वाधरालक्तकः,
प्रत्याख्यात विशेषक कुखकः श्यामावदातारूणम्।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाज्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीमाधवी योषिताम्।। माल.वि. 3/5

रक्ताशोक पुष्प की सुन्दरता से रमणियों के विम्वसद्यश अधर पर स्थित अलक्तक तिरस्कृत होता है। काला उजला और लाल रंग से युक्त कुखक फूल के द्वारा कपोलास्थित तिलक पराजित होता है।

सुगन्धि निश्वास विवृद्ध तृष्णं, बिम्वाऽधरासन्नचरं द्विरेफम्।
कुमार. 3/56,

सुगन्धित निश्वास की तृष्णा से ओठों के पास आने वाले भ्रमरों के भय से आंख को चञ्चल बनाकर पार्वती को देखा।

उमामुखे विम्वफलाधरोष्ठे, व्यापारयामास विलोचनानि।।
कुमार. 3/67

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शंकर ने विम्व फल के समान ओंठ वाली पार्वती के मुख को तीनों आंखों से देखने लगे।

बिम्वी का सामान्य परिचय : Coccinia Indica W of A

इसकी लतायें प्रायः समस्त भारत में पाई जाती हैं। यह मीठी एवं कड़वी दो प्रकार की होती है। यह बहुवर्षायु, अनेक शाखा एवं प्रशाखाओं से युक्त प्रसरणशील लता है। काण्ड कोमल एवं नालीदार होता है। पर्ण, दृहयाकार, खण्डित एवं अनके शिराओं से युक्त होते हैं। पुष्प श्वेत रंग के फल पकने पर लाल रंग के हाते हैं। कच्चे फलों की सब्जी बनायी जाती है।

आयुर्वेद में गुण धर्म :

यह तिक्त, कषाय, विपाक–कटु, उष्णवीर्य, दीपन, यकृदुत्तेजक, शोथहर, कफनिःसारक, मधुमेह नाशक, स्वेदजनन एवं ज्वरघ्न है। चरक ने षोडशमूलिनी द्रव्यों में तथा सुश्रुत ने अर्ध्व भागहर द्रव्यों में बिम्वी का पाठ दिया है। मूल एवं पंचाग मधुमेह में विशेष उपयोगी है। यथा–

बिम्वी फलं स्वादुस्तन्यकृत् कफपित्तजित्।
दृद्दाहज्वर पित्तास्त्र कास श्वास क्षयापहम्।। शो.नि.

बाल्मीकीय रामायण में विम्बी फल का उल्लेख सुन्दरकाण्ड के 15/29 में अशोकबनिका में बिम्बोष्ठीसीता के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

81. बकुल (मौलसरी)
(Mimusops elengi Linn)

बकुल : रघ. 8/64, 9/30, 19/12, ऋतु.स. 2/24.

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समंयथा। रघु.सं. 8/64

हे किन्नर सद्यश कंठ वाली, तेरे श्वास के अनुकरण करने वाले बकुल पुष्पों में से मेरे साथ विलास कांधनी पूर्ण किये बिना कैसे सोती है। इस प्रसंग में बकुल का उल्लेख है।

मधुकरैरकरोन्मधु लोलुपै बकुलमाकुल मायतपंक्तिभिः।।
रघु.सं. 9/30

कान्ता के मुख के मद्य से उत्पन्न होने वाले भ्रमर ने आसव के समान गुणवाला होने से मधु से लुब्धलिप वाले भौरों से वकुलवृक्ष पूर्ण कर दिया। कवि की कल्पना है

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कि बकुल पुष्प युवा स्त्री के मुख का कुला पाकर पुष्पित होता है।

ताभिरपपुपहृतं मुखासवं सोऽपि बद्बकुल तुल्यदोहदः।।

रघु.स. 19/12

स्त्रियों के एकान्त में अत्यन्त मदकरने वाला, उसका दिया मुख का आसव बकुल वृक्ष भी लेने की अभिलाषा करता है।

शिरसि बकुमालां मालितीर्भिसमेताम्। **ऋतु.स. 2/24**

कवि ने वर्षाकाल में पुष्पित बकुल पुष्प की मालाओं की सुन्दरता स्पष्ट की है।

बकुल का सामान्य परिचय : Mimusops elengi Linn

मौलसरी के सघन वृक्ष पश्चिमी घाट के जंगलों में पाये जाते हैं। भारत में ये वृक्ष घरों सड़कों के किनारे एवं उद्यानों में लगाये हुये पाये जाते हैं। सघन एवं मध्याकार का होता है। पुष्प श्वेत रंग के एवं अति सुगन्धित होते हैं। फल–अण्डाकार, नारंगी पीतवर्ण का होता है स्वाद में यह कुछ कषाय एवं मधुर होता है।

यह कटु, कषाय कटुविपाक, कफपित्त शामक, ग्राही, रक्तस्तम्भक, गर्भाशय शैथिल्यहर, ज्वरघ्न तथा विषघ्न है। छाल का चूर्ण दन्तमज्जन के रूप में अधिक प्रयोग होता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म

बकुल शीतलोहृद्यो विषदोष विनाशनः।
मधुरश्च कषायश्च, मदाठयो हर्षदायकः।। **रा.नि.**

पुष्प के गुण : मौलसरी के फूल रूचिकारक, शीतल, सुगन्धित, मधुर, स्निग्ध, कषैला और मल को संग्रह करने वाले होते हैं। यथा–

पुष्पं कषायं मधुरस्निग्ध संग्राहि बकुलम्।। **"राजबल्लभ"**

फल के गुण : मौलसरी के फल मधुर, स्निग्ध, कषैले, विषद, शीतल, दांतों को स्थिर करने वाले आध्मान और वातकरक होते हैं।

बाल्मीकीय रामायण में बकुल अरण्यकाण्ड में विरही श्रीराम के प्रश्न करते हुये किष्कन्धाकाण्ड के पंपासर के वनों में, लंका के अशोकवन में, सेत्तुनिर्माण के प्रसंग में एवं उत्तरका ड के भरत द्वारा बसाये गये नगर में बकुल का उल्लेख मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

82. बीजपूरक (विजोरानिम्बू)

(Citrus medica Linn)

बीजपूरक : माल.वि. 314

समाहितिके देवस्योपवनस्थं बीजपूरक गृहीत्वागच्छेति।।

माल.वि. 2

देवी के उपहार देने के लिये देवोयान से बीजपूर नींवू ले आओ। निघण्टु ग्रंथों एवं संहिता ग्रंथों में मातुलुंग फलपूरक एवं बीजाह्वा आदि नाम वीजपूरक के लिये आये हैं। साधारण भाषा में इसे विजोरा निम्बू कहते हैं।

बीजपूरक का सामान्य परिचय : Citrus Medica Linn

यह हिमालय के बाहरी पर्वत श्रेणियों की उष्ण घाटियों में पाया जाता है। इसके जंगली वृक्ष भी प्रचुरता से पाये जाते हैं। फल–अम्ल, विपाक–मधुर, वीर्य अनुष्ण, अम्ल होने पर भी पित्तशामक, दीपन–पाचन, पाण्डु एवं कामला नाशक है।

वक्तव्य :

चरक ने मातुलुंग को हृद्य एवं छर्दिघ्न दशेमानि महाकषायों में उल्लेख किया है। वीजपूरक (विजौरा) एवं चकोतरा दोनों के फल मिलते जुलते हैं। इसके केसर टिंक्चरों और क्वाथों के सुगन्धि देने के काम आते हैं।

लोलिम्वराज ने बीजपूरक का सुन्दर वर्णन किया है। यथा–

साज्यसैन्धवमरोचकापहम्, मातुलुंग फलके सरस्मृतम्।।

"लोलिम्वराज"

प्राचीन लेखकों ने चकोतरा एवं विजोरा निम्बू को एक ही माना है। यथा

बीजपूर फलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघुः। **भा.प्र**
रक्तपित्तहरं कण्ठ जिह्वाहृदय शोधकम्।।

83. भद्रमुस्ता (नागरमोथा)

(Cyprus scariosus R.Br.)

भद्रमुस्ता : ऋतु.स. 1/17 Cyprus Scariosus R. B r.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भद्रमुस्तं परिशुष्क कद्रमम्,
सरः खनन्तायतपोत्रमडलैः।। **ऋतु. 1/17**

कवि ने ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के प्रसंग में सूर्य की उष्णता के कारण मोथा (मुस्तक) भी वर्णन किया है। तालाब भी सूख गये हैं जिसमें भद्रमुस्ता पैदा होता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

भद्रमोथा–चरपरा, शीतल, ग्राही, कड़वा, दीपन, पाचक, कषैला तथा कफ रक्तपित्त, तृषा ज्वर, अरूचि एवं कृमिरोग नाशक है। यथा–

मुस्तं कटु हिमं ग्राही तिक्तं दीपन पाचनम्।
कषाय कफ, पित्तास्त्र तृड् ज्वरारूचि जनतुनुत्।। **भा.प्र.**
अतिसारं रक्तदोषं ज्वरं चैव विनाशयेत्।
अरूचिं च तृषाचैव कृभीनपि विनाशयेत्।। **नि.र.**

मोथे की कई जातियां पाई जाती हैं। नागरमोथा वर्षात में सामान्यतया खेतों में पाया जाता है। भद्रमोथा सजल भूमि में पाया जाता है। केवटी मोथा कड़वा चरपरा, कान्तिदायक, विसर्प, कोंठ, खुजली कफनाशक एवं रक्तविकार में उपयोगी है।

84. भूर्ज (भोजपत्र)
(Betula utilis D. Don)

भूज : रघु.स. 4/73, कुमार.स. 1/7, 1/55, विक्र. 2/42

भूर्जेषु मर्मरीभूताः की कचिकः ध्वनि हैतवः।
गंगा शीकरिणों मार्गे, मरूतस्तं सिषेविरे।। **रघु.स. 4/92**

मार्ग में भोजपत्रों से मर्मर शब्द करने वाला एवं वांसों में शब्द करने की ध्वनि द्वारा गंगा के कणों से युक्त पवन रघु ने सेवन किया।

न्यस्ताक्षरा धतुरसेनपत्र, भूर्जत्वचः कुज्जरविन्दु शोणाः।
ब्रजन्तिविद्याधर सुन्दरीणामनङ्ग लेख क्रिययोपयोगम्।।
कुमार.स. 1/7

हिमालय पर्वत पर विद्याधरों की स्त्रियां गजविन्दु के समान लाल भोज पत्रों पर वनस्पतियों व धातुओं के रस से अपने सन्देशमय प्रेम पत्र को लिखकर प्रियतमों के पास भेजती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

गणानमेरू प्रसवावतंसा भूर्ज त्वचः स्पर्शवतीदधानाः।।

कुमार.सं. 1/55

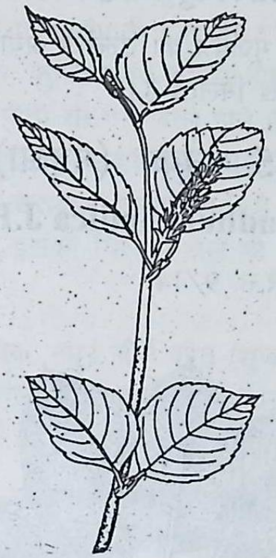

भोजपत्र Betula Utilis

अत्यन्त मुलायम भोजपत्रों को पहन कर एवं शिलाजीत से व्याप्त पत्थरों की चट्टानों पर बैठकर हिमालय के शिखरों में आनन्द मनाते थे।

प्राचीन काल में भूर्ज त्वक् का प्रयोग पत्र लिखने एवं शरीर पर वस्त्र की तरह धारण करने के लिये किया जाता था। प्राचीन समय में भोजपत्र (छाल) का उपयोग वस्त्र के स्थान पर एवं कागज आदि के लिये, प्रयोग किया जाता रहा ऐसा उल्लेख संस्कृत साहित्य में वर्णित है।

भूर्ज पत्रेण लेखं सम्पाधान्तरा इति। विक्र. 2/42

भूर्ज का सामान्य परिचय : Butela Utilis D. Don

इसके वृक्ष हिमालय के ऊंचाई वाले भागों पर प्रायः उत्तराखण्ड गढ़वाल, कुमायु, हिमाचल, काश्मीर, सिक्किम, भूटान आदि स्थानों पर पाये जाते हैं। वृक्ष मध्याकार के छाल चिकनी, चमकीली लालिमायुक्त सफेद धब्बेदार एवं अनेकों परतों में होता है। फूल मज्जरियो में खिलते हैं। वृक्ष की छाल को ही भोज पत्र कहते हैं भोजपत्र छाल का उपयोग लिखने हेतु भी किया जाता है। छाल का क्वाथ वातानुलोभक इसे कामला, पैत्तिकज्वर एवं योषापस्मार में दिया जाता है। भूतवाधा एवं ग्रह दोष में इसका धूप दिया जाता है। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूर्जः कटु कषायोष्णो भूत रक्षाकरः परः।
त्रिदोषशमनः पथ्यो, दुष्ठकौटिल्यनाशनः।।
पित्तरक्तरूजां हंता, मंत्रकार्येषु सिद्धिदः।। **यो.र.**

बाल्मीकीय रामायण में भूर्जपत्र का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के 14/24 के चित्रकूट के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

85 मधूकः (महुआ)

(Madhuca indica J.F.)

मधूक : रघु.स. 6/5, कुमार.स. 9/14

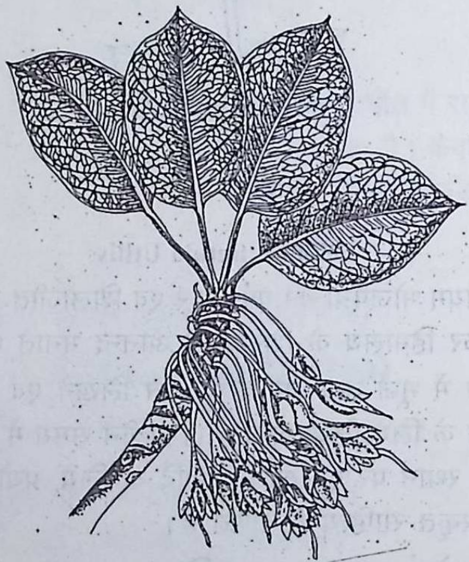

मधूक (महुआ) **Bassia Latifolia**

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्त्रंसिद्व्वाङ्क मधुकमाला।
ऋजुप्रमाण क्रिययैवतन्वी।। **रघु.सं. 6/25**

दूव लगी हुई महुये की माला को इन्दुमती ने धारण किया।

पर्याक्षिप त्काचितुदारवन्धँ दूर्वावतापाण्डुमधूकदाम्ना।।
कुमा.स. 7/15

किसी ने अगरू चंन्दनादि के धूप से गीले वालों को सूखाकर उसमें फल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लगाये, तथा दूवों के अंकुरों से युक्त हरे महुए के फलों की माला बांधी।

मधूक का सामान्य परिचय : Madhuca Indica J.F.

भारत वर्ष के प्रायः सभी भागों में महुआ के जंगली एवं लगाये हुये वृक्ष पाये जाते हैं। वृक्ष ऊंचे–ऊंचे एवं पर्णपाती होते हैं। पत्तियां शाखाओं पर समूहबद्ध अण्डाकार या आयताकार, कुण्ठित एवं चर्मिल होती हैं। पुष्पवृन्त पिलाई लिये हुये मांसल, रसदार एवं मीठी सी गन्ध वाले होते हैं। सूखने पर ये पुष्प मुन्नका की तरह हो जाते हैं। सूखे फल उवालकर अथवा आटे के साथ मिलाकर रोटी बनाई जाती है। पुष्पों से शराब भी बनाई जाती है। फल के अन्दर गहरी लाल रंग की गुठली होती है। इसकी गिरी से तैल भी निकाला जाता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

यह गुरू स्निग्ध विपाक, मधुर, बीर्य शीत (शुष्क पुष्प उष्ण) वातपित्तशामक कफनिस्सारक होता है। फलों से मधूकासव भी बनाया जाता है। इसके फूल मधुर धातुवर्धक, बलवर्धक हैं।

मधूको मधुरः शीत श्लेष्मलो बीर्यदस्मृतः।
पुष्टिकृत्तुवरस्तिक्तः पित्तदाह व्रंणश्रमान्
कृमिदोषं च वातं च, नाशयेदितिकीर्तितम्।।
पुष्पं च मधुरंशीतं धातुवृद्धिकरं गुरु।
स्निग्ध विकाशि हृद्यं च दाहपित्तमरूत्प्रणुत्।।
फलमस्य गुरुशीत मत्हृद्यं शुक्रलं मतम्।
स्निग्धं रसे चपाके च, मधुरधातुवर्धकम्।। **नि.र.**

महुवे का तैल मधुर, पिच्छिल तथा कफ, पित्तज्वर, दाह और पित्तनाशक है। छाल रक्तपित्तनाशक, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है।

बाल्मीकीय रामायण में मधूक (महुआ) अयोध्याकाण्ड के 94/10 में चित्रकूट के प्रसंग में अरण्यकाण्ड के 11/74 सुतीक्ष्ण आश्रम के आगे पंचवटी के मार्ग में एवं पंपासर के वनों में उल्लेख मिलता है।

86. मंदार (मंदार)

(Erythrina suberosa Roxb)

मंदार : रघु.स. 6/23, कुमार.स. 6/5, मेघ.उ. 11, 13, 76ए अभिज्ञान : 7/231, विक्रमो. 1/20, 4/63

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शच्चाश्चिरं पाण्डुकपोलम्वान, मन्दारशून्यानलकांश्चकार:।। रघु.स. 6/23

यज्ञों के निरन्तर बारंबार इन्द्र को बुलाने वाला यह राजा बहुत काल तक पीले कपोलों पर लम्वायमान इन्द्राणी के अलकों को मंदार के फूलों से शून्य करता हुआ।

आप्लुतास्तीरमन्दार, कुसुमोत्किरवीचिषु।
व्योमगंगा प्रवाहेषु, दिङ्नागमदगन्धिषु।। **कुमार.स. 6/5**

तीर पर के मन्दार वृक्षों के गिरे हुये फूलों द्वारा उछालने वाली तथा दिग्गजों के मदजल से सुगन्धित आकाश गंगा में वे ऋषि स्नान किये।

यस्योपान्ते कृतकतनय: कान्तया बर्धितो में,
हस्तप्राप्य स्तवकनमितो वालमन्दार वृक्ष:।। **उत्तर मेघ 79**

मन्दाकिन्या: सलिल शिशिरे-सेव्यमान मरूद्भि:।
मन्दाराणां मनुतटरूहां द्यापया वारितोष्णा:।। **उत्तर मं. 31**

इस प्रकार कतिपय संदर्भ स्थल मन्दार वृक्ष के उत्तर मेघदूत नामक खण्ड काव्य में मिलते हैं। मल्लीनाथ टीकाकार ने मन्दारा: कल्पवृक्षा: यह अर्थ किया है।

मन्दार कुसुमदाम्ना गुरुरस्या: सूच्यते हृदयकम्प:।। **विक्र. 1-2**

उर्वशी के पीनस्तनों के बीच मन्दार पुष्पों की माला शोभायमान थी।

मन्दार पुष्पैरधि वासितायां, यस्या शिखायामयमप्रणीय:।।
विक्र 4/6

मन्दारपुष्पों से सुवासित अपनी प्यारी के जिन अलकों में यह लगाया जाता है, वह प्यारी ही मेरे लिये दुर्लभ हो रही है।

वक्तव्य :

संहिता एवं निघण्टु ग्रथों में पारिभद्रक, मन्दार कण्टकी पलाश आदि कतिपय नामों का उल्लेख मंदार के लिये मिलता है। चरक में पारिभद्रक शब्द का उल्लेख नहीं आया है। कतिपय विद्वान् पर्वतीय–निम्ब को पारिभद्रक कहते हैं। कुछ टीकाकार मन्दार से मदार (अर्क) अर्थ करते हैं।

मन्दार का सामान्य परिचय : Erythrina suberosa Roxb

इसके वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं। पत्र–पलाश सद्यश तीन पत्तों वाले

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एकान्तर क्रम से होते हैं। वृक्ष पर्णपाति है। वसन्त में इस वृक्ष पर शुकचञ्जु सदृश गुच्छों में रक्त वर्ण के पुष्प खिलते हैं। पुष्पित वृक्ष रक्तवर्णाचित दिखाई देने लगता है।

आयुर्वेद में गुण-धर्म :–

यह कटु उष्ण, कफवातनाशक, दीपन एवं कर्ण–व्याधिनाशक है। पत्तों का ताजारस कर्णशूल में उपयोगी है। वेदनाहर के रूप में यह दन्तशूल में भी उपयोगी है। रजः स्त्रावर्धक, एवं नष्ठार्त्तव में उपयोगी है। यथा–

पारिभद्रः कटूष्णः स्यात्कफवातन्कृिन्तनः।
अरोचक हरः पथ्यो, दीपनश्चापि कीर्तितः।। ध.नि.

बाल्मीकीय रामायण में पारिभद्र (फरहद) अरण्यकाण्ड में लंका के समुद्रतट के प्रसंग में उल्लेख है।

87. मलय (चन्दन)

मलय : रघु.स. 12/32, विक्रमो. 3/33

रावणावरजातत्र राघवं मदनातुरा।
अभिपेदे निदाधार्ता व्यालीव मलयद्रुमम्।। र.व. 12/32

कामपीड़ित रावण की भगिनी रामचन्द्र के निकट मानो गर्मी से पीड़ित हुई सर्पिणी मलयाचल वृक्ष के नीचे जाकर चन्दन पर लिपट जाती है।

न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मणियष्ठय।। विक्रमो. 3

संहिता व निघण्टु ग्रंथों में मलय, मलयज ये शब्द चन्दन के पर्यायों में आये हैं तथा चन्दन को संस्कृत साहित्य में उष्णाताहर माना गया है। मलय चन्दन का पर्याय है। देखिये चन्दन।

88. माधवी

(Hitptage benghalensis Lurz)

माधवी : उत्त.मे. 18, अभिज्ञा. 1/30, 3/12, माल.वि. 3/5, विक्रमा. 2/4

रक्ताशोक श्चलकिसलयः केसरश्चात्रकान्तः
प्रत्त्यासन्नौ कुरवक बृन्ते माधिवी मण्डपस्य।। मेघ. 18

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि ने मण्डपों की सुन्दरता हेतु माधवी लता का उल्लेख किया है।

हला-शकुन्तलें.....त्वमिव स्वहस्तेन संवर्द्धिता माधवी लता

अभि.अ. 1/18

पत्राणामिव शोषणेनमरूता स्पृष्ठालता माधवी।। अभि.शा. 3/12

घरों की सुन्दरता हेतु शकुन्तला ने माधवीलता को काफी बढ़ाया हुआ है।

सावज्ञेव मुख प्रसाधन बिधौ, श्री मधवी योषिताम्

आभिज्ञा.शा. 3/30

कवि ने माधवी पुष्प के वसन्त ऋतु में पुष्पित होने की शोभा से सुन्दरियों का प्रसाधन भी ढीला पड़ गया है।

निषिञ्चमाधवीमेता, लता कोर्न्दी च नर्तयन्।
स्नेह दक्षिण्ययोर्योगात्कामीव प्रतिभाति मे। विक्रमा. 2/4

यह वायु माधवीलता को पुष्परस से पूर्ण भी कर रहा है और कुन्दलता को नचा रहा है। संस्कृत साहित्य में माधवीलता के लिये अतिमुक्तक शब्द भी आया है। माधवी इसको इसलिये कहते हैं क्योंकि इसमें वसन्त ऋतु में पुष्प खिलते हैं।

माधवी का सामान्य परिचय : Hiptage Benaghalensis Kurz

माधवी की लतायें काफी लम्बी फैली हुई होती है। इसकी अनेकों शाखायें होती हैं। पत्ते लम्बे चमकीले एवं अभिमुख होते हैं। पुष्प फीके गुलाबी श्वेत रंग के होते हैं। पुष्पों के सुगन्धित होंने से इसके मण्डप पर भौरों का मेला सा लगता है। इसी कारण राजनिघण्टुकार ने इसे भृंगप्रिया कहा है। स्त्रियाँ इसके पुष्पों को वेणी में धारण करती हैं। अतः इसे धम्मिलामोदनी कहा है।

मदनाल्कष्ठा शकुन्तला का वर्णन करते हुये कालिदास ने लिखा है कि माधवी पुष्प देखने के लिये राजा से आग्रह करती है। माधवी मण्डप में ही प्रेमीजनों का वार्तालाप और परिरम्भन होता है। यथा–

''पत्राणामिवशोषणेन मरूता स्पृष्टवा लता माधवी'' अभि.शा.

आयुर्वेद में गुणधर्म : -

माधवी कटुकातिक्ता,कषाया मदगन्धिका।
पित्तकासव्रंणान् हन्ति, दाहशोष विनाशनी। नि.र.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य :–

चरक सुश्रुत में माधवी नाम नहीं आया है। संहिता ग्रन्थों में अतिमुक्त शब्द आया है। फूलों की सुगन्धि मस्तिष्क के लिये आह्लादितकर है। पित्त प्रकोप में सूंघने से पित्त का शमन होता है। पत्र स्वरस उत्तम कृमिघ्न है।

बाल्मीकीय रामायण में माधवी किष्कन्धाकाण्ड के 1/77, पंपासर के बनों में युद्ध काण्डके 4178, सह्यगिरी कानन के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

89. मालती

(Jasminum grandiforum Linn)

मालती : उत्तर.मे. 38, ऋतु. 2/24, 3/2

मालती **Jasminum grandiflorum linn**

प्रत्याश्वस्तां समभिनवैर्जालकैः मालतीनाम्।। **उत्त.मे. 38**

शीतपवन द्वारा सुगन्धित मालती पुष्पों की हवा बहुत सुन्दर प्रतीत होती है।

शिरसि वकुलमालां मालतीभिः समेतां,
विकसितवनपुष्पैः यूथिका कुडमलैश्च।। **ऋतु. 2/24**

वर्षाकाल में चमेली के विकसित बहुत सुगन्धित प्रतीत होती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सप्तच्छदैः कुसुमभार नतैर्वनान्ताः,
शुल्कीकृता न्युपवनानि च मालितीभिः।। ऋतु. 3/2

कवि ने शरद ऋतु के वर्णन में मालती पुष्प का बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

वक्तव्य :

अमर कोष में सुमनाः मालती, जाति, ये तीनों नाम चमेली के पर्याय गिनाये हैं। जाति का अर्थ चिरकाल से जाई किया जा रहा है। परन्तु लेखक के विचार से जाई जाति से भिन्न द्रव्य है। भावप्रकाश कार ने जाति का हिन्दी नाम चमेली दिया है तथा जातिद्वय का भी उल्लेख किया है। अतः लेखक के विचार से सुमना मालती एवं जाति सम्भवतः तीनों भिन्न द्रव्य हैं। ये तीनों जातियां जेसमिनम् में से ही हैं।

मालती का सामान्य परिचय : Jasminum Grandiflorum Linn

चमेली की झाड़ीनुमा वेलें उद्यान में पाई जाती हैं। पुष्प श्वेत एवं सुगन्धित होते हैं। जंगलों एवं सड़कों के आसपास भी यह प्राकृतिक रूप में मिलता है। औषध में पत्र एवं पुष्प का प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

यह कषाय, तिक्त, कटु विपाक एवं शीत वीर्य है। कर्णपाक में जातिपत्र से साधित तैल लाभ करता है। अग्निदग्ध चिकित्सा में जात्यादि तैल का विशेष रूप से आयुर्वेद में उपयोग किया जाता है। यथा

मालती कफपित्तास्त्र, त्वग्दोष कृमिकुष्ठनुत्।
वामनी व्रणशोथघ्नी पूतिकर्णास्य पाकहृत्।। शो.नि.

बाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड के 91/51 भारद्वाज आश्रम में अरण्यकाण्ड के पंपासर में किष्ककन्धा काण्ड के 1/76 के पंपासर के अरण्य में आदि कतिपय स्थलों पर उल्लेख मिलता है।

90. मुस्ता (मोथा)

(Cyperus rotundus Linn)

मुस्ताः अभिज्ञान अ. 2/65, रघु.स. 15–19, 9/49, ऋतु.स. 1/19.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

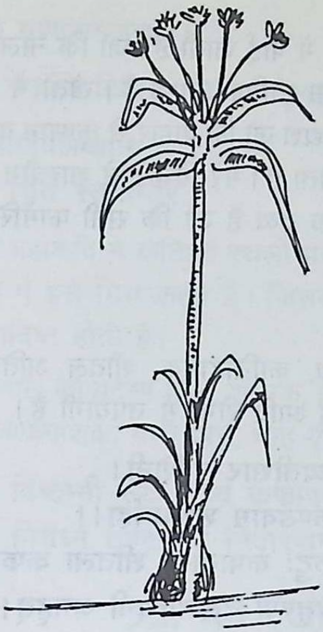

मुस्तक (नागारमोथा) **Cyperus rotundus Linn**

इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं, राक्षसस्तज्जिंघांसया।
प्रांशुमुत्पाटयामास, मुस्तास्तम्वमिवद्रुमम्।। **रघु.स. 15/9**

इस प्रकार शत्रुघ्न को भय दिखाकर मारने के निमित्त मोथे के समान उखाड़ दिया।

विश्रब्धक्रियत्ता वराहपतिभिः मुस्ताक्षतिपल्लवे।। **अभि.शा. 2/65**
स भद्रमुस्तं परिशुष्क कद्रमम्,
सरः खन्नायतपोत्र मण्डलैः।। **ऋतु.स. 1/17**

इस प्रकार महाकवि ने भद्रमुस्ता एवं मुस्ता का बहुत कम स्थलों पर उल्लेख किया है। निघण्टु ग्रंथों में मोथा एवं नागरमोथा में भेद पाये जाते हैं तथा एक को मुस्ता तथा दूसरे को कैवर्तमुस्ता (केवटी मोथा) कहा है। यह जलज स्थानों पर अधिक पाया जाता है। नागर मोथा को भद्रमुस्ता भी कहते हैं। कुछ निघण्टुकार भद्रमुस्ता को इन दोनों से भिन्न मानते हैं। दोनों जातियों के गुण समान हैं। सहिंता ग्रंथों में मुस्तक शब्द का उल्लेख कतिपय योगों में आया है। आधुनिक वनस्पति शास्त्रियों ने Cyperus Rotundus Linn को नागर मोथा माना है। लेखक के विचार से नागर मोथा Cyperus Scariosus R. Br. एवं साईप्रस पैङजोराई (गुन्द्रा) का प्रयोग उपयुक्त जो कि जलीय स्थानों पर पाया जाता है। बुन्देलखण्ड

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्षेत्र में यह जाति काफी मात्रा में पाई जाती है। जो कि नालों में लम्बी लालिमा लिये हुये सुगन्धित जड़ों वाला भौमिक काण्ड हैं। खेतों में मिलने वाला मोथा (साइप्रस रोटन्डस) के कन्द सद्यश जो कि वाहार से कृष्णाभ वर्ण का एवं सुगन्धित होते हैं। उसका संग्रह कम होता है। मेरे विचार से शास्त्रीय नागरमोथा (गुन्द्रा) साइप्रस स्केरियोस ही उपयुक्त द्रव्य है जो कि सभी फार्मेसियों में प्रयोग होता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

नागरमोथा चरपरा, मेध्य, कान्तिदायक, शीतल अतिसार, रूधिरविकार, रक्तरोग, पित्तज्वर दाह, कण्डू आदि रोगों में उपयोगी है।

कफ पित्त ज्वरकृमिवाय्वतीसार नाशिनी।
रक्त रूग्व्रणदाहघ्नी, कण्डवाम शूलधर्महा।। नि.र.
तिक्ता नागर मुस्ता, कटुः कषाया-च शीतला कफनुत्।
पित्तज्वरातिसारा, रूचितृष्णा दाहनाशिनी श्रमहृत्।। रा.नि.

91. मृणालः (कमल)

मृणाल : कुमार.स. 1/40, 3/49, 5/29, ऋतु.स. 1/19, विक्र. 1/20, रघु.स. 16/16, अभिज्ञा. 3/10, 6/29

मध्ये यथा शयाममुरवस्यतस्य, मृणालसूत्रान्तरमप्यलम्यम्।
कुमा. 1/40

कमल के समान नेत्रवाली पार्वती के परस्पर सटे हुये सुन्दर दोनों स्तन इस तरह उठे हुये थे कि इनके मध्य में कितना अवकाश है। इस परीक्षा के लिये परीक्षम ने इन दोनों के मध्य में विसतन्तु के जितना भी अन्तर नहीं पाया।

मृणाल सूत्राऽधिक सौकुमार्या, बालस्य लक्ष्मी ग्लपयन्त मिन्दोः।
कुमा.स. 3/39
मुणालिका पेलव मेवमादिभिः ब्रतैः स्वमंङग ग्लपयन्तहर्निशम्।।
कुमा. 5/29

कमल के समान कोमल शरीर को जलवास, अग्निवास, आदि विधि से पार्वती ने तपस्या की।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

करेणुभिदन्त मृणालमङ्गा।। **रघु.स. 16/16**

कमल के वन में प्रवेश किये हथनियों ने मृणाल के खण्डों का आघात किया।

मृणाल निर्म्माणवलयानि **अभि.शा. 3/10**

मृणाणसूत्रर चितं स्तनान्तरे **अभि. 6/29**

इस प्रकार से महाकवि ने कतिपय स्थलों पर मृणाल शब्द का प्रयोग किया है। साधारण भाषा में इसे भिस कहते हैं। जिसकी सब्जी बनाई जाती है। यह स्वाद में बहुत स्वादिष्ट होती है।

आयुर्वेद में मृणाल को पद्म्म कन्द, शालूक, भिसाण्ड कहते हैं। गुणों में कटु रूक्ष, रूचिकारक कफनाशक, भारी पित्त, दाह एवं तृषनिवारण है। यथा

शालूक कटु विष्टम्भी रूक्षं रुच्यं कफापहम्।
कषाय कास पित्तघ्नं तृष्णादाह निवारणम्। **शो.नि.**

92. यव (जो)
(Hordeum vulgare Linn)

यव : रघु.स. 10/12, कुमा.स. 9/82

अरूणरागनिषोधिभिरंशुकैः श्रवणलब्ध पदैश्च यवाङ्कु रैः।।
रघु. 9/43

कवि ने यवांकुरों को कानों में धारण करने का निर्देश किया है।

दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स, भेजे नीराजनाविधीन्।। **कुमा.स. 19/12**

दूव यवांकुर, वट की छाल और महुये के पुष्प सहित वृद्धों की पूजा की।

वधुमुख क्लान्त यवावतं, समाचार धूम ग्रहणाद्बभूव।। **कुमा. 7/82**

भारतीय संस्कृति में यव का विशेष स्थान है। इसका उपयोग हवन एवं पूजा आदि में विशेष रूप से किया जाता है। साधारण भाषा में इसे जौ कहते हैं। भारत के प्राय' सभी प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। लैटिन में इसे Hordeum Vulgare कहते हैं।

झुद्रधान्यो में यव जो का उल्लेख है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

93. यूथिका (जुही)
(Jasminum auriculatum Vlol)

यूथिका : पूर्व में. 26, विक्रमो. 4/46, ऋतु.स. 2/24

यूथिका (जुही) **Jasminum arborescens**

विश्रान्तः सन्व्रजवननदी रजातानिसिञ्च,
उद्यानां नव जलकणैः यूथिका जालकानि।। **पूर्व.में. 26**
मदकलयुवति शशिकला गजयूथप यूथिकाशवलकेशी।
स्थिर यौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका।। **वि.4/46**

मतवाले गजराज युवितियों में उत्कृष्ट यूथिका (जूही) कुसुम केश में लगाये देखने में मनोरम नित्य नवीना हमारी प्रेयसी तुम्हारे आखों के समाने आई है।

शिरसि वकुलमालां मालितीभिः समन्ता
विकसितनव पुष्पैः यूथिका कुडमलैश्च।। **ऋतु.2/24**

महाकवि कालिदास ने वर्षाकालीन जुही पुष्पों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

यूथिका का सामान्य परिचय : Jasminum auriculatum Vhal

जुही की लतायें प्रायः उद्यानों में पाई जाती हैं। पुष्प सुगन्धित पीताभ श्वेत

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वर्ण के होते हैं। डल्हण ने दो प्रकार के भेदों का उल्लेख किया है। सूश्रुत ने अतिसार, रक्तपित्त एवं प्रमेह में यूथिका का उल्लेख किया है। भानुजी दीक्षित ने जूही के मागधी, गणिका आदि नाम भी दिये हैं। जूही की बेल वन, उपवन, और पुष्पवाटिका में होती है। पुष्प सफेद और पीले रंग के होते हैं। पीली जूही अत्यन्त शोभायुक्त और सुगन्धिदायक होती है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

दोनों प्रकार की जूही शीतल, कड़वी, चरपरी, हलकी, मधुर, हृदय के लिये हितकारी, पित्तनाशक, रूधिर विकार, मुख रोग, दन्त रोग, नेत्र रोग, शिरोविकार एवं विषनाशक है। यथा–

यूथियुग्म हिमंतिक्तं कटु पाकरसं लघुः
मधुरं तुवरं हृद्यं, पित्तघ्नं कफवातलम्।।
व्रणास्त्र मुखदन्ताक्षि शिरोरोग विषापहम्।। **शा.नि.**

94. रक्त कदम्ब

रक्तकदम्ब : विक्र.अ. 4

रक्त कदम्व : सोऽयं प्रियया धर्मान्त शंसियस्येदम् **विक्र.अ. 4**

रक्त पुष्प विशेष कदम्ब वृक्ष का उल्लेख कवि ने अपने काव्य में किया है। आयुर्वेद में कदम्ब, भूमिकदम्व एवं धाराकदम्व का उल्लेख मिलता है।

95. रक्तपलाश

रक्तपलाश : कुमार.स. 3/29

वालेन्दु वक्राण्यविकासभावाद्धभुः पलाशान्यति लोहितानिः।
कु. 3/29

कालिका रूप होने से अर्थचन्द्र सद्यश टेडे एवं अत्यन्त लालवर्ण के पलाश पुष्प के समान शोभित हुये। देखिये पलाश।

96. रक्तपाटला

रक्तपाटला : रघु.स. 19/46

यत्सलग्नसहकार मासवं रक्तपाटल· सभागमपंपौ।। **रघु. १८/४६**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कवि ने वसन्तकाल में पुष्पित रक्तपाटला की उपमा मन्मथ के नवीनता के रूप में दी है।

97. रम्भा (केला)

रम्भा : अभिज्ञान 3/24, रघु.स. 6/35।

यदि रम्भोरु तवांङ्गसङ्गम् **अभि.शा. 3/24**

अनेन यूना सह पार्थिवन रम्भोरु कच्चिन्मनसोरूचिस्ते।।

रघु.स. 6/35

हे केले के समान जंघाओं वाली क्या तेरे मन की रूचि युवा इस राजा के संग क्षीप्रा नदी की तरंगों की पवन से कंपित बगीचों की पंक्तियों में रमण करने की है।

संस्कृत साहित्य में कदली का कतिपय स्थलों पर उल्लेख आया है। देखिये कदली।

98. लवङ्ग

(Syzygium aromatium (Linn) Merr)

लवङ्ग : कुमार.स. 8/25, 6/59

आचचाम स लवंग केसर श्चाटुकार इव दक्षिणनिलः।।

कुमार.स. ८/२५

जहां चन्दन की लताओं को हिलाने वाला तथा लौंग की फूलों की धूल से भरा हुआ दक्षिणी वायु रतिक्रीड़ा में लगी हुई पावर्ती का मन मीठी–मीठी बातों में व्यतीत हो रहा था।

द्वीपान्तरानीतलवंग पुष्पै रपाकृत स्वेदलवामरूभ्दिः।।

रघु.स. 57

सागर के किनारे में द्वीपान्तरों से लौंग के फूल लाने वाली वायु से पसीने के कण सुखाती हुई तुम विहार करें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(लौंग) लवंग

लंवग का सामान्य परिचय : Syzygium aromaticum (Linn) Merr

लौंग के झाड़िनुमा वृक्ष होते हैं। यह द्वीपपुंज जंजिवार, मलाया, जावा, सुमात्रा आदि स्थानों में अधिकतर पाया जाता है। इसके छोटे कद के सदाहरित वृक्ष होते हैं। देखने में ये वृक्ष बहुत सुन्दर एवं पत्र सुगन्धित होते हैं। पत्र लट्वाकार आयाताकार सरलधार एवं चमकीले होते हैं। पुष्प गुच्छों में तथा मंज्जरियों में खिलते हैं। कलियों को शुष्क स्थानों में सुखाया जाता है। इन्हीं को लंवग (लौंग) कहते हैं।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

यह लघु, तीक्ष्ण कटुविपाक, शीतवीर्य, कफ–पित्त, दीपन, पाचन, रूचिवर्धक लालास्त्रावजनक वातानुलोभक है। लौंग का तेल अग्निजनक, वातशामक, दन्तशूलनाशक, एवं कासरोग में हितकर है। लवङ्गादिवटी का उपयोग गले की खरास में किया जाता है। यथा –

लवंङ्ग कटुक तिक्त लघुनेत्र हितंहिमम्,
दीपनं पाचनं रूच्य कफपिन्तास्त्र नाशकृत्
कासं श्वासं चहिक्कां च क्षय क्षपयतिध्रुवम्।। **भा.नि.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

99. लाक्षा (लाख)
(Laccifer Lacca)

लाक्षा : ऋतु.स. 1/5, 6/13

नितान्त लाक्षारसराग लोहितैः
नितम्बिनी नाञ्चरणैः स नूपुरैः।
जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम्।। **ऋतु. 1/15**

सुन्दरियों के पैर लाल रंग के लाक्षारस से रञ्जित हुये सुन्दर लगते हैं।

गुरुणिवासांसि विहायतूर्ण
तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि,
सुगन्धि कालागुरू धूपितानि,
धत्ते जनः कामशरानुविद्धः।। **ऋतु. 6/13**

लाक्षा का सामान्य'परिचय : Laccifer Lacca

लाख यह जान्तव रालीय निर्यास है। यह लाक्षाजनक कीट वृक्षों के आश्रित रहता है। भारत वर्ष में लाक्षा का संग्रह बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों से किया जाता है।

लाक्षा कीट के लार्वा लाल रंग के होते हैं, ये वृक्ष रस को चूसकर अपनी जीवन वृद्धि करते हैं। यह रालीय स्त्राव टहनियों पर जमता है, जिसे कि लाक्षा कहते हैं।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

यह कफ पित्तशामक, स्तम्भन, वर्ण्य, शोणितस्थापन एवं हिक्का श्वास में उपयोगी है। इसका प्राय लाक्षादि तैल बनाया जाता है। यथा–

लाक्षा तिक्ता कषायोष्णा स्निग्धाशोणितपित्तनुत्।
कृमिश्लेष्म व्रणान्हन्ति, भूतज्वरार्तिनाशिनी।। **ध.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में लाक्षा (लाख) युद्धकाण्ड के 70/76 के रक्त की तुलना में प्रसंग में उल्लेख है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

100. लोध्र (लोध)

(Symplocos piniculata Wall)

लोध्र : रघु.स. 2/29, कुमार.स. 7/9, 19, ऋतु. 4/1 उत्तर में 2 श्लोक।

स पाटलायां गवितस्थिवासं धनुर्धर केसंरिणः ददर्श।
अधित्य कायमिव धातुमय्यां लोध्र द्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्।।

रघु.स. 2/29

राजा रघु ने लालवर्ण की गाय पर स्थित सिंह को पर्वत की कुक्षी में फूले लोध्र के वृक्ष के समान देखा।

तां लोध्र कल्केन हृताङ्गतैलाभाश्यानकालेयकृतांग रागाम्।।

कुमा.स. 7/9

सुहागिनी स्त्रियों ने लोध्र कल्क से शरीर पर उवटन लगाया हुआ है। उस काल में लोध्र का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में किया जाता था।

कर्णार्पितो लोध्रकषाय रूक्षे, गोरोचनाक्षेप नितान्तगौरे।
तस्या' कपोले परभागलाभाद्, बबन्ध चक्षूंषियवप्ररोहः।।

कुमा.स. 7/19

लोध्र के विलेपन से एवं गोरोवन से नितान्त शुभ्र श्रृंगार दर्शकों की आंखें बांध लेता है। अर्थात प्राचीन काल में लोध्र कल्प का उपयोग शरीर की सुन्दरता निखारने के लिये किया जाता था।

प्रफुल्ल लोध्रः परिंपक्क शालिः।।
विलीनपद्म प्रपतन्तुषारो,
हेमनतकालः समुपागतः प्रिये।। **ऋतु. 4/1**

कवि ने हेमन्त काल में पुष्पित लोध्र पुष्प का सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

नीता लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुता मानने श्रीः।। **उत्त.में 2**

हेमन्त काल में पुष्पित लोध्र सूर्य की किरणों से पाण्डुता की शोभा को प्राप्त कर रहा है।

लोध्र का सामान्य परिचय : Symplocas Paniculata Wall, Symplocos Racemosa

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भारत वर्ष में इसके वृक्ष कुमांयु से लेकर आसाम, गठवाल, छोटा विहार नागपुर के बनों में पाये जाते हैं। साधारण भाषा में पठानीलोध्र एवं पट्टिकालोध्र कहते हैं। व्यवहार में पठानी लोध्र की छाल का अधिक उपयोग होता है। इसके मध्य आकार के वृक्ष होते हैं। छाल खाकी रंग की एवं पतली छिलकेदार होती है। पत्र साधारण अनुपत्र छोटे वृन्तयुक्त आयताकार, लट्वाकार एवं कुण्ठिताग्र होते हैं। पुष्प मज्जरियों में श्वेतवर्ण के होते हैं। संस्कृत साहित्य में लोध्र वृक्ष का कतिपय स्थलों पर उल्लेख मिलता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

आयुर्वेद में लोध्रछाल संग्राही मानी जाती है। यह रूक्ष, कषाय, कटुविपाक शीतवीर्य, रक्तस्तम्भक व्रणरोपक, शोथहर गर्भाशय शोधक, वर्ण्य, श्वेतप्रदर एवं रक्त प्रदर में उपयोगी है। यथा–

लोध्र शीत कषायश्च हन्तितृष्णामं रोचकम्।
विषविध्वंसन प्रोक्ता रूक्षो ग्राही कफापहः।। **ध.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में लोध्र अयोध्याकाण्ड 94/8, चित्रकूट के प्रसंग में किष्कंधाकाण्ड 1/79 पंपासार के अरण्य में हिमालय पर्वत पर विंध्यपर्वत पर उत्तरकाण्ड के 42/4 अयोध्या की अशोक वनिका के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

101. वानीर (जलवेतस)
(Salix caprea Linn)

वानीर : रघु.स. 13/30, 35/ 16/21 पूर्व.में श्लोक 43

उपान्तवानीर वनोपगूठान्यालक्ष्य परिप्लवसारसानि।।
रघु.स. 13/30

श्री रामचन्द्र जी ने पुष्पक विमान में बैठकर जानकी जी को वानीर से ढके हुये वनों को दिखाया।

रहस्त्वदुत्संङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीर गृहेषुसुप्तः।।
रघु.स. 13/35

पंचवटी में वानीर (वेंत) की कुटी बनी हुई थी जो देखने में बहुत सुन्दर प्रतीत होती थी।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपान्तवानीर गृहाणि द्यष्टवा शून्यानि दूयं सरयूजलानि।।

रघु.स. 16/21

घाटों के किनारों पर वानीर (वेंत) की शून्य झोपड़ियों वाले सरयू के जलों को देखकर मैं दुख पाती हूँ।

तस्याकिश्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीर शाखम्। पूर्व.में. 43

वेंत की शाखाओं से छुये जाने वाली गम्भीरानदी बहुत सुन्दर मालूम पड़ती है। निघण्टु ग्रन्थों एवं संहिता ग्रंथों में वञ्जुल, वेतस, निंचुल आदि शब्द वानीर के पर्यायवाची शब्दों में उल्लेख आया है।

अधिकतर विद्वानों का मत है कि वानीर नामक द्रव्य से नदी के किनारों से उत्पन्न होने वाला विशेष सेलीक्स की प्रजाती में है, जिसकी शाखायें पानी की ओर झुकी हुई होती है। वानीर से नरसल तृण जाति विशेष द्रव्य का भी उल्लेख है।

वानीर का सामान्य परिचय : Salix Caprea Linn

वेदयुष्क का मध्यम आकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। यह काश्मीर, उत्तरपश्चिम सीमा प्रान्तों में पाया जाता है। शाखायें पतली एवं लचकीली होती हैं। पुष्प पीत वर्ण के एवं सुगन्धित होते हैं। पुष्पों से तैयार किया हुआ अर्क वेदमुश्क कहलाता है। छाल ग्राही, शीतल वेदनास्थापक, मूत्रल हृद्य एवं वाजीकर है।

वक्तव्य :

भावप्रकाश कार ने वानीर का पर्याय वञ्जुल लिखा है। चरक ने चिकित्सास्थान 4 में वञ्जुल एवं वानीर का एक ही साथ उल्लेख किया है। जिससे यह मालुम होता है कि दोनों भिन्न–भिन्न द्रव्य हैं। कतिपय स्थलों पर वेंत्त एवं वेतस भी एक साथ आये हैं। विदुल भी वेंतस का पर्याय भावप्रकाश कार ने दिया है। श्रीयुत वैद्य यादव जी त्रिविक्रम ने विदुल से हिज्जल अर्थ किया है। डल्हण ने विदुल से वेतस अर्थ किया है। देखिये निचुल। क्रमश यथा–

वानीर रसतिक्त शिशिरो रक्षोघ्नो व्रणंशोधनः।
पित्तास्त्र कफ दोषघ्नः संग्राही च कषायकः।। रा.नि.

कतिपय विद्वानों ने वानीर से नल (नरसल) तृण विशेष द्रव्य अर्थ किया है। नरसल, वांस के समान जलाशय के आस–पास पाया जाता है। इसकी आकृति ईख के समान होती है। गुणों में यह शीतल, मूत्रशोधक, मूत्रकृच्छ्र, दाह, बस्तिशूल

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हृदयंरोग एवं योनिरोग में उपयोगी है। ग्रामीण लोग नरसल का उपयोग झोपड़ी बनाने के लिये करते हैं।

बाल्मीकीय रामायण में वज्जुल अरण्यकाण्ड के 11/74 दीक्ष्ण के आश्रम के आगे पंपासर के अरण्य में एवं सहयपर्वत के कानन के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

102. विकंकत : (कंन्डाई)
(Flacourtia indicu Mirr)

संभ्रमोऽभवदपोटकर्मणामृत्विजां च्युत विककंत स्त्रचाम्।।

रघु.सं. 11/25

व्रहमणो ने विकंकत की श्रुवा का प्रयोग किया।

विकंकत को साधारण भाषा में कंडाई भी कहते हैं। इसका फल पकने पर मधुर होता है।

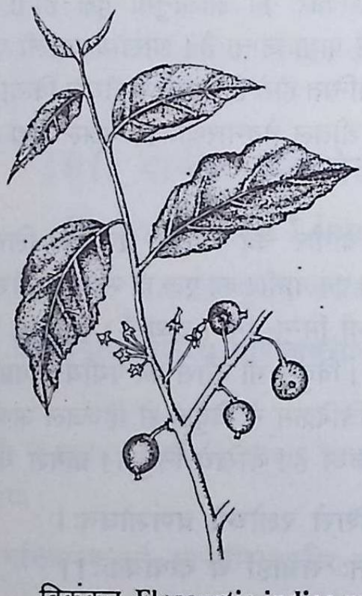

विकंकत **Flacourtia indica mirr.**

विकंतक का सामान्य परिचय : 5 Flacourtia indica Mirr.

इसके कांटेदार वृक्ष हिमालय के निचले भागों एवं बिहार, मध्यभारत एवं कोंकण आदि स्थानों में पाये जाते हैं। पत्र विभिन्न आकार के आयताकार,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अभिलट्वाकार एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प पीताभ हरित वर्ण के होते हैं। फल गोलाकार, गूदेदार पकने पर लाल वैंगनी रंग के होते हैं।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

यह दीपन, पाचन, कामला एवं प्लीहा वृद्धि में उपयोगी है। ग्रामीण लोग इसके पके हुये फल खाते हैं। पत्तों का उपयोग मवेशियों के चारे के लिये किया जाता है। यथा–

विकङ्कतोऽम्लो मधुरः पाकेऽति यधुरो लघुः।
दीपनः कामलास्त्रघ्नः पाचनः पित्तनाशनः।। **रा.नि.**

103. वेत्र (वेंत)

(Calamus tenuits Roxb)

वेत्र : रघु.स. 6/26, कुमार. 6/53, 9/47, अभि.शा. 5/1

तां सैव वेत्रग्रहण नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाम।
समीरणोत्थेव तरंगलेखा, पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्।।

रघु.स. 6/26

वेत्र ग्रहण में लगी हुई सुनन्दा इस प्रकार उस सुता को दूसरे राजक पास लेगई–मानो पवन से उठी तरंग की रेखा मानसरोवर की राजहंसी का दूसरे कमल के निकट ले गई।

तत्र वेत्रासनासीनान् कृतासन परिग्रहः।
इत्युवाचेश्वरान्वाचं, प्राञ्जलिर्भूधरेश्वरः।। **कुमार.स. 6/53**

अन्तपुर में सप्तर्षियों को वेंत के आसन पर बिठाकर हिमालय ने हाथ जोड़कर कहा।

सा नन्दिना वेत्र भृतोपदिष्टभागा पुरोगेण कलंचचाल।

कुमार.स. 9/49

अपनी रसमयी भाव–भंगिमों से लुभावनी पार्वती शंकर जी के हाथ में हाथ डाली हुई उन पथों पर धीरे–धीरे घुमा करती थी। जिन्हें हाथ में वेंत लेकर आगे–आगे नन्दी चलता जाता था। वेंत का उपयोग लाठी एवं कुर्सियों के निर्माण हेतु होता है ऐसा स्पष्ट किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आचार इत्यवहितेनमया गृहीता या वेत्रयष्ठिः अवरोध गृहेषुराज्ञः।।
अभिज्ञा.शा. 5/1

बेंत का सामान्य परिचय : Calamus tenuits Roxb

यह जल प्राय स्थानों में उपलब्ध लता जाति का पौधा है। लता सघन, आरोही एवं कांटेदार होती है। काण्ड, चिकना, हरित, कोषमय एवं पत्र धांरो से आवृत रहता है। पत्र रेखाकार भालाकार नुकीले, पत्रक कांटेदार होते हैं। पुष्प पत्र कोषों के अन्दर एकलिंगी मज्जरियों में पाये जाते हैं। वेंत की पांच प्रकार की जातियां पाई जाती है। फल एवं मूल का औषध में प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

जड़ ज्वरहर, पित्तहर पोष्टिक एवं विरेचक मानी जाती है। फल का गुदा ग्राही एवं कोमल अंकुरों का शाक तिक्तपौष्टिक माना जाता है। यथा–

वेतसः कटुक स्वादुः शीतो भूतविनाशनः।
व़ातप्रकोपनोरुच्यो, विज्ञेयो दीपनः परः।।
रक्तपित्तोद्भवं रोगं कुष्ठं दोषं च नाशयेत्।। **रा.नि.**

104. वेतसः (बज्जुल)
(Salix tetrasperma Roxb)

वेतस : रघु.स. 4/35, अभिज्ञा. 3/39

अनम्राणां समुप्द्धर्तुस्तस्भात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुक्ष्मैबृत्ति माश्रित्य वैतसीम्।। **रघु.स. ४/३५**

नदी के वेग से वेंत की सी वृत्ति अंगीकार करके आत्मा की रक्षा की।

वेतस का सामान्य परिचय : Salix Tetrasperma Roxb

इसके वृक्ष प्रायः नदी नालों के किनारे पाये जाते हैं। यह वृक्ष साधारण ऊंचा एवं शाखायें नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। पुष्प सफेदी लिये हुये मज्जरियों में खिलते हैं। इसकी लचकीली एवं पतले काण्ड से टोकरियां बनाई जाती हैं। कुछ विद्वान् वेत्र को ही वेतस मानते है, परन्तु अधिकतर विद्वानों का मत है कि वज्जुल, वानीर, वेत्र तीनो भिन्न–भिन्न द्रव्य हैं। टीकाकारों ने वेतस वेत्र एवं वानीर से वेत्र (वेंत) अर्थ किया है। दोनो प्रकार के वेंत (वेतस और जलवेतस) शीतल, व्रण शोधक, रक्तपित्तनाशक, कषैले एवं कफनाशक होते हैं। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वेतसस्य द्वंय शीतं रूक्षं चव्रण शोधनम्।
रक्तपित्तहरं तिक्तं, सकषायाकफापहम्।। ध.नि॰

105. शल्लकी (सलई)
(Boswelia serrata Roxb)

शल्लकी : विक्र. 4

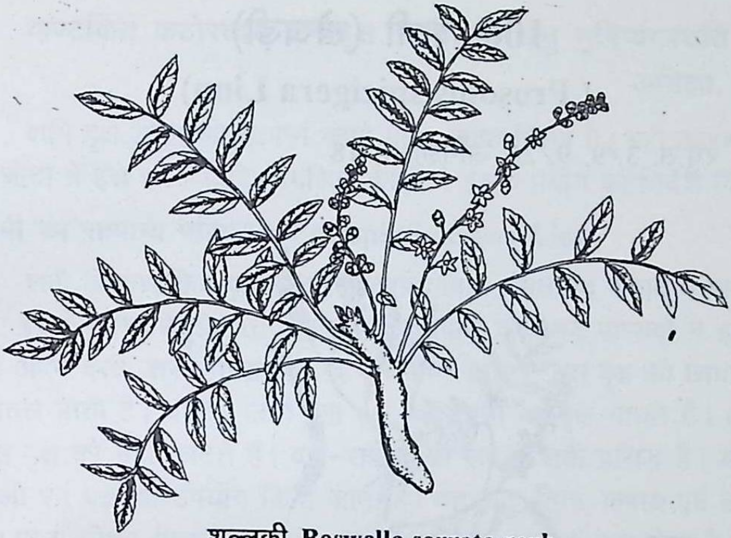

शल्लकी **Boswella serrata roxb.**

अभिलषतु तावदास वसुरभिरस शल्लकी मं गम्।। विक्र. 4/44

नवीनपल्लवों से युक्त तथा मद्य की तरह गन्ध वाले शल्लकी के वृक्ष हैं। शल्लकी वृक्ष से सुगन्धित राल तैयार किया जाता है।

शल्लकी का सामान्य परिचय : Boswellia Serrata Roxb

सलई के मध्यम प्रमाण के वृक्ष भारत के ऊष्ण प्रदेशों में सर्वत्र सुलभ है। इसका गोंद सुगन्धित, चिपचिपे, रक्ताभ एवं पीत वर्ण का होता है। इसके गोंद में उड़नशील तैल पाया जाता है। सलई निर्यास का उपयोग वातव्याधियों में किया जाता है। बाजार मे यह कुन्दुरू सलई गुग्गुलु के नाम से विकता है। इसका फल एवं फूल बवासीर कोठ (कुष्ठ) एवं अरूचि में उपयोगी है। यथा–

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

इसका उपयोग रक्तशोधक, उत्तेजक, आर्तवजन, एवं त्च्य के रूप में किया

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जांता है।

शल्लकी तुवरा शीता, श्लेष्मपित्तातिसारजित्।
रक्तपित्त व्रणहरी, पुष्ठिकृत्सुमुदीरिता।।
तत्फलं कफवातास्त्र कुष्ठारोचकनाशनम्।
पुष्पं चास्य कफं वातमर्शः कुष्ठारूचीर्जयेत्।। रा.नि.
निर्यासोस्य मतोनाम्ना कुन्दुरूः सुज्ञमाषितः।। नि.र.

106. शमी (खेजड़ी)
(Prosopis spicigera Linn)

शमी : रघु.स. 3/9, 9/26, अभिज्ञा. 1/18

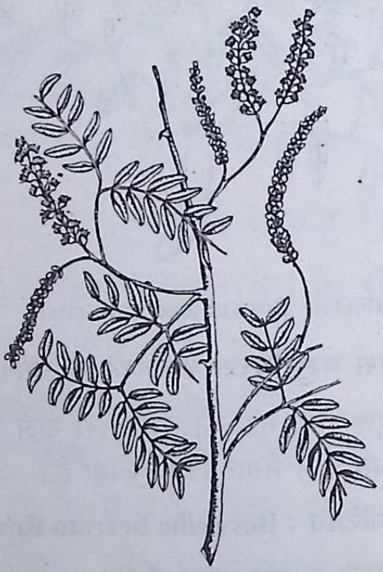

शमी **Prosopis spicigera Linn**

निधानगर्भामिव सागराम्वरां, शमीनिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
नदीभिवान्तः सलिलां सरस्वती, नृपः ससत्वां महिषीममन्यतः।।
रघु.स. 3/9

गर्भ में वृद्धि रखने वाली पृथ्वी के समान भीतर अग्नि रखने वाली शमी के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समान, भीतर जल वाली सरस्वती के समान राजा ने गर्भवती रानी का सम्मान किया।

हवि : शमी पल्लव लाजगन्धी पुण्यः कृशानो रुदियाय धूमः।

रघु.स. 9/26

घृत, शमी के पत्ते और धीमी सुगन्धी भरे हुये पवित्र धुयें ने अग्नि से उठकर कपोलों पर शिखा फैलाते हुये उसके कानों की नीलकमलता को प्राप्त किया।

कण्टकित कठोरत्वचं शमीवृक्ष, शमीलता छेत्तु मृषिर्व्यवस्थति।।

अभिज्ञा. 1/18

शमि वृक्ष अग्नि को उत्पन्न करने वाला काष्ठ विशेष है। यही कारण है कि प्राचीनों ने इसे हवन आदि मांगलिक कार्यों में इसके प्रयोग का निर्देश किया है।

शमी का सामान्य परिचय : Prosopis Spicigera Linn

शमी के कण्टकित वृक्ष गुजरात, काठियावाड़, सिंध एवं पंजाब में पाये जाते हें। इसके काष्ठ में तीव्र ताप होता है। गुप्तवास के समय पाण्डवों ने इसी वृक्ष पर अपने वस्त्र, शस्त्र छिपाकर रखे थे। ग्रीष्म काल में इस वृक्ष की छाया काफी शीतल होती है। ग्रामीण लोग इस वृक्ष को देवता का वृक्ष मानते हैं। इसलिंये इस वृक्ष को नहीं काटते हैं। यज्ञ–समिधा के रूप में शमी प्रसिद्ध है। औषध में फली एवं पत्र का उपयोग किया जाता है। यह कटु, तिक्त, कषाय एवं उष्णवीर्य है। फल–तीक्ष्ण, पित्तजनक, मेघा जनक, स्वादिष्ट गुरु एवं रूक्ष होता है। यथा–

शमी तुत्तवरारूक्षा, शीतालध्वी च तिक्तका।
कटुका रेचनी चैव, रक्तपित्तातिसार नुत्।।
कुष्ठार्शः श्वास कासध्नी कफ भ्रमकृमीन् हरेत्।
तत्फलं पित्तले रूक्ष मेध्यं केशविनाशनम।। **भा.प्र.नि.**

वक्तव्य :

शमी वृक्ष प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। चरक ने आसवयोनि की सूचि में शमीसार की गणना की है। अर्शरोग एवं अन्य कतिपय योगों के साथ शमीपत्र का उल्लेख है। वाग्भट्ट ने नेत्र रोगों में शमी का निर्देश किया है। बाल्मीकीय रामायण के अरण्यकाण्ड के प्रसंग में शमी वृक्ष उल्लेख पचवटी के प्रसंग मे भी वर्णन है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

107. शरः (तृणविशेष कुशः)

(Saccharum munja Roxb)

शर : पूर्व.मे. 49, माल.अ. 3/8

आराध्यैनं शरवणभवं देव मुल्लाङ्घिताध्वा।। पूर्व.मे. श्लोक 49

शरकाण्ड के वन देखने में सुन्दर लगते थे, ऐसी काव्यकार की कल्पना है।

शरकाण्ड पाण्डु गण्डस्थलेयमाभाति परिमिता भरणा।
माधव परिणतपत्रा कतिपय कुसुमेव कुन्दलता।। मा.स. 3/8

जिसके कपोल शरकाण्ड की तरह पाण्डुवर्ण का एवं शरीर परिमितालङ्का है। मालूम पड़ता है वसन्त में परिणत पत्र और कतिपय फूलों से युक्त कुन्द लता है।

शर का सामान्य परिचय : Saccharum Munja Roxb

यह तृण जाति की वनस्पति है जो कि समस्त भारत के नदी नालों के किनारे पाई जाती है। नालकाण्ड की कलमें बनाई जाती हैं। काण्डपीताभ वर्ण का होता है। पत्रों का उपयोग कागज वनाने एवं छप्पर बनाने के काम के आता है। मूल का उपयोग औषध में किया जाता है।

बाल्मीकीय रामायण में शर का उल्लेख युद्ध काण्ड में हवन सामग्री के प्रयोगार्थ है।

मूल : कषाय, मधुर एवं शीतवीर्य, त्रिदोष हर, तृष्णानिग्रहण, दाहशमन, रक्तशोधक, मूत्रल एवं रक्तपित्तहर है। यथा

शरद्वयं स्थान्मधुरं सतिक्त कोष्ण कफ भ्रान्ति मदापहारि।
बलं च वीर्य च करोतिनित्यं निषेवितं वातकफे च नित्यम्।। ध.नि.

108. शाल

(Shorea robusta Gaertn)

शाल : रघु.स. 1/134, 38, कुमार. 13/33

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व्युठोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महामुज।
आत्मकर्म क्षयं देह क्षात्रोधर्म इवाश्रितः।। रघु. 8, 1/13

शाल के समान लम्बी वाहों वाला अपने कार्य में समर्थ मानों क्षत्रियों का धर्म देहधारण किये हुये है।

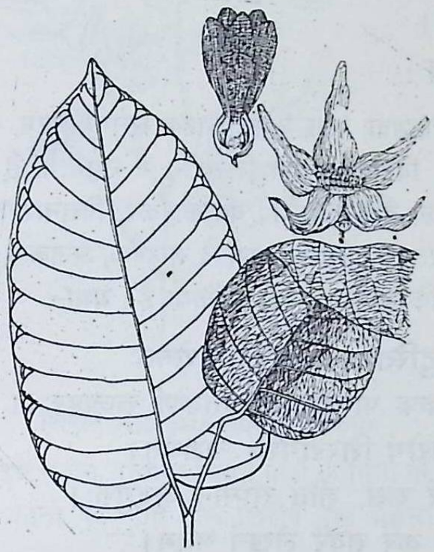

शाल Shorea robusta Gertn.

सेव्यमानौ सुखस्वशैः शालनिर्यास गन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैवतिराधूतवनराजिभिः।। रघु.स. 1/38

छूने से सुखादेने वाली शाल वृक्ष के गोंद की गंध वाली फूलों के पराग को उड़ाने वाली वन के वृक्षों की सुगन्ध को पवन शोभित किये हुये है।

विभिन्न भग्नोद्घृत शालसंघं, प्रेक्षांचकस्मरशत्रुसूनुः।
कुमा.स. 13/23

शिव के पुत्र कुमार कार्तिकेय ने इन्द्र के क्रीड़ावन नन्दन को देखा, जिसके शालवृक्ष या तो तोड़ दिये गये थे अथवा काट डाले गये।

शाल का सामान्य परिचय : Shorea robusta Gaertn

शाल के विशाल वृक्ष तराई क्षेत्र एवं मध्य प्रदेश, आसाम, बंगाल आदि स्थानों में पाये जाते हैं। पुष्प–पीताभ श्वेत वर्ण के वसन्त ऋतु में पुष्पित होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शालकाष्ठ गृहनिर्माण में विशेष रूप से काम आता है। इसके निर्यास को शालनिर्यास कहते हैं, जिसका चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। शाल को साधारण भाषा में शाख कहते हैं। संहिता एवं निघण्टु ग्रंथों मे अश्वकर्ण, अजकर्ण आदि द्रव्य शालसदृश वृक्ष शाल से भिन्न वृक्षों का उल्लेख मिलता है। निघण्टु ग्रन्थों में अश्वकर्ण एवं अजकर्ण शाल के पर्यायों में उल्लेख है। सर्ज भी निघण्टु का पर्याय माना है।

आयुर्वेद मे गुणधर्म :

शाल चरपरा, कड़वा, रूक्ष, कान्तिकारक स्निग्ध, गरम, पाण्डुरोग, कर्णरोग, प्रमेह, कुष्ठ, कण्डू, विषविकार एवं शिरोरोग में उपयोगी है। फल–मधुर, रूक्ष, शीतल, भारी मलको बांधने वाला। वातकारकर, पित्तनाशक, रूधिरविकार एवं क्षतक्षय को दूर करता है। निघण्टुकारों ने सर्ज्जक, अजकर्ण, शाल एवं मरिचपत्र भेद से शाल की किस्मों का उल्लेख किया है। यथा–

अश्वकर्ण कटुस्तिक्तोरूक्षः कान्तिरोमतः
स्निग्धोष्णः कफ पाण्ड्वार्ति पित्तकर्ण रूजाहरः।।
विषरोगं वातरोगं शिररोगश्च नाशयेत्।
फलं च मधुरं रूक्ष, शीतं स्तम्भन कृद्गुरुः।
मलावष्ठम्भन करं तुवरं लेखनं मतम्।
आध्मान शूल वातानां कारकं पित्तनाशनम्।।
रक्तदोष तृषादाह क्षतक्षय विनाशकम्।। **नि.र.**

बाल्मीकीय रामायण में शाल वृक्ष का उल्लेख युद्धकाण्ड 39/3 सुवैलपर्वत शिखर के प्रसंग में उल्लेख मिलता है। सर्ज (शाल) पुष्प का उल्लेख किष्कन्धा–काण्ड के 27/10 में माल्यवान पर्वत के प्रसंग मे मिलता है।

109. शिरीष (सिरस)

(Albizia lebbeck Benth)

शिरीष : रघु.स. 15/48, 61, 18/45, कुमार.स. 1/41, 5/4, अभिज्ञा. 3/30 उत्तर.मे. 2

च्यूतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसापपास।।

रघु.स. 16/48

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

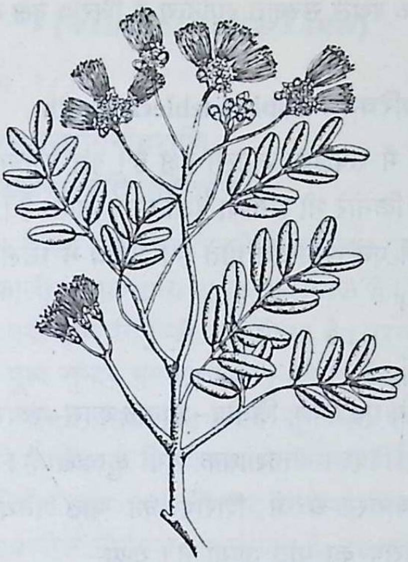

शिरीष Albizzia lebbek Benth.

पसीने से भीगे हुये नवीन नखक्षत चिह्न वाले कामिनी के कपोल पर अत्यन्त केशर लिपटा हुआ कानों पर लगा हुआ शिरीष पुष्प सहसा नहीं गिरता है।

अमी शिरीषं प्रसवावतंसा प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम्।

रघु.स. 16/61

नदी के धार में तैरते यह शिरीष पुष्प गहने शिवाल की लोभ वाली मछलियों से छलते हैं।

शिरीषपुष्पाऽधिक सौकुमार्याः वेदं स पायादपि भूषणेन।।

रघु.स. 18/45

शिरीष के फूलों से अधिक कोमल शरीर वाला वह भूषण से भी स्वेद को प्राप्त होता था।

शिरीष पुष्पाऽधिक सौकुमार्यों बाहुतदीयाविति में वितक्रः।।

कुमा.स. 1/41

पार्वती के दोनों वाहु शिरीष कुसुम से भी अधिक सुकुमार थे, ऐसा कवि का वितर्क है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कठिनं खलु ते चेतः शिरीस्येव वन्धनम्।। **अभि. 3/30**

इस प्रकार कतिपय स्थल संस्कृत साहित्य में शिरीष वृक्ष के सन्दर्भ में मिलते हैं।

शिरीष का सामान्य परिचय : Albizia lebleck Benth

यह समस्त भारत में उपलब्ध जंगली वृक्ष है। वृक्ष पर्णपाती एवं ऊंचा होता है। यह वृक्ष सड़कों के किनारे भी लगाया हुआ पाया जाता है। पुष्प अवृन्त पीताभ श्वेत चंवर जैसे कोयल एवं सुगन्धित होते हैं। औषध में छाल, बीज एवं पत्र का प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

यह लधुरुक्ष, कषाय एवं उष्ण, त्रिदोष–शामक कास–श्वास–नाशक शोथहर वेदना स्थापन, वर्ण्य, विषघ्न रक्तशोधक एवं कुष्वष्ठ है। चरक ने विषघ्न वेदनास्थापन एवं कषायस्कन्ध में शिरीष का पाठ दिया है। सुश्रुत के सालसारादिगण में शिरीष का पाठ आया है। यथा–

तिक्तोष्णो विषहावर्ण्य त्रिदोषशमनो लघु।
शिरीषः कुष्ठकण्डूघ्न त्वग्दोष श्वास कासहा।। **ध.नि.**

बाल्मीकीय रामायण में शिरीष का उल्लेख किष्कन्धा काण्ड के पंपासर के वनों के प्रसंग में मिलता है।

110. शिलीन्ध्र (खुम्ब)

शिलीन्ध्र : पूर्व.मे. श्लौक

कर्तुं यच्च प्रभवति मही मुच्शिलीन्ध्रामवन्ध्याम्।। **पूर्व.मे.**

कवि ने वर्षाकालीन श्वेत शिलीन्ध्र पुष्प का उल्लेख किया है। विश्वकोष के अनुसार शिलीन्ध्रं कन्दली पुष्प यह अर्थ किया है। वनस्पति विशेषज्ञ ठा. वलवन्तसिंह जी ने कन्दली नामक द्रव्य विशेष से केनम की प्रजाती का उल्लेख किया है। लेखक के विचार से शास्त्रीय शिलीन्ध्र खूंव (कुकुरमुत्ता) नामक द्रव्य विशेष है जो कि प्राय: वर्षाकाल में उत्पन्न होता है। निर्विष किस्मों का उपयोग शाकों में किया जाता है। शाक स्वादिष्ट वृष्य एवं बल्य होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

111. शेफालिका (शरद ऋतु का पुष्प)
(Vitex trifolia Linn)

शेफालिका : ऋतु.स. 3/14

शेफालिका कुसुमरागमनोहराणि,
स्वस्थस्थिताण्डजगणप्रतिनादितानि।। **ऋतु.स. ३/१४**

कवि ने शरद ऋतु का वर्णन करते हुये शेफालिका पुष्पों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है। शेफाली नामक द्रव्य अनेकार्थ बोधक है। निघण्टु कोषकारों ने शेफालिका से श्वेत एवं कृष्ण निर्गुण्डी अर्थ किया है। परन्तु संस्कृत साहित्य में शेफालिका पुष्प का पुष्प सुन्दर मनोहर एवं सुगन्धित के रूप में उल्लेख मिलता है। रुवर्ण युथिका, मालती, माल्लिका आदि सुगन्धित एवं मनोहारी पुष्पों का उल्लेख कवि ने अपने साहित्य में विशेष रूप से किया है। सिन्दुवार के पर्यायवाची शब्द शेफाली का निर्देश प्रायः सभी निघण्टु ग्रंथों में मिलता है। अतः निघण्टु कोषकारों ने श्वेत एवं नील नीर्गुण्डी शेफालिका है, यह अर्थ किया है। सम्भवतः पारिजात (हारिसिंगार) शास्त्रीय शेफालिका भी हो सकती है।

कालिदास ने अपने साहित्य में शेफालिका से हारसिंगार अर्थ किया है। देखिये पारिजात।

शेफालिकाऽन्यानिर्गुण्डी वनजनीलमज्जरी,
शुक्लाऽन्या श्वेतसुरसा भूतकेशी च कथ्यते।।
कटूष्णा नीलनिर्गुण्डी तिक्ता रुक्षा च कासजित।। **ध.नि.**

यह शरद ऋतु के फूल में शायद सबसे सुन्दर हरसिंगार है। बरसात अभी पूरी समाप्त भी नहीं हुई होती कि यह खिलना शुरू हो जाता है। शरद के बाद हैमंत में भी खिलता रहता है। संस्कृत कवियों ने शरद् की शोभा के वर्णन में हरिसिंगार (शेफालिका) के सौंदर्य और सुगंध का गुणगान किया है। शेफालिका का अर्थ है ऐसा फूल, जिसमें भौंरे मजे से सोते हैं। बंगला में इस फूल को शेफालिका या शिडली कहते हैं। सिंहली और तेलुगु में इसका नाम सेपालिका है। ये नाम संस्कृत से ही आए हैं।

यह पारिजातादि वर्ग (ओलिएसी) का पौधा है। लेटिन में इसे निकर्टेन्यस आर्वाट्रिस्टिस कहते हैं। निक्टेंथस शब्द ग्रीक के दो शब्दों नक्स और एंथेरस से मिलकर बना है। इन दोनों शब्दो के अर्थ क्रमश : रात और फूल है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आवर्सेराट्रिस्टिस का अर्थ है शोकवृक्ष। यानी रात को खिलने वाले फूलों का शोक वृक्ष।

पारिजात के मधुगंधीं फूल सितम्बर से दिसम्बर तक खिलते रहते हैं। पुष्परहित पारिजात का वृक्ष सुन्दर नहीं होता। इसमें 1.25 से दो सेंटीमीटर लंबी चपटी गोल सी कागजी फली लगती है, जो दो भागों में फट जाती है। प्रत्येक में एक बीज रहता है। सर्दियों की समाप्ति पर बीज पकते हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपनी कविताओं में हरसिंगार की सुषमा का खूब उल्लेख किया है। गुरूदेव के शन्ति निकेतन में मैं एक बार प्रभात फेरी में शामिल हुआ। हम लोग जब शेफाली वीथी में पहुंचे, तो ओंस से भीगी घास पर सफेद फूलों की झीनी चादर बिछी थी। प्रभात फेरी की टोली में मृदंग घोष में गुरूदेव का गीत गूंज रहा था। यथा

मातार कंठे शेफाली माल्य गंथ भरे छे अवनी।

यानी धरती माता के गले में शैफाली फूलों की हजारों मालाएं शोभित हो रही थीं और उनकी सुगंध से समस्त वातावरण महक रहा था।

बहुत पुराने समय से हरिसिंगार भारतीय बगीचे में बोया जा रहा है। इसके फूलों की नाजुक पंखुड़ियां सफेद मोम जैसी होती है। वक्राकार में तिरछी कटी हुई पंखुडियां 1.25 से 2 सैंटीमीटर लम्बी पीली, केसरिया सिरे पर शोभित होती है। पीले पुष्प नाल के कारण फूल का सौंदर्य दुगना हो जाता है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण (1060–1260) ने शेफालिका के परिचय में लाल डंठल वाला शरदत्रृतु का फूल लिखा है। बाण ने शेफालिका के ताजे पुष्प–नालो को पीलिमा कहा है। भारतीय और यूरोपिय विद्वान पुष्प नाल के रंग की तुलना मूंगे (प्रवाल) से करते हैं। रंग की इस विशेषता को प्रगट करने के लिए अंग्रेजी में इसका नाम कोरिल जेसमिन (प्रवाल चमेली) है। नवनीतम् में शेफालिका के पुष्प नालों के रंग की तुलना मूंगे और मनशिला से की गई है। पद्मावती की दासी कहती हे देखिए। हे मेरी बाल सहारी शेफालिका पुष्पों से भरी हुई मेरी अंजली ऐसे दीखती है जैसे की मनशिला की पट्टी हो।

शेफालिका के फूल पूजा में चढ़ाए जाते हैं। देवार्चन में फूलों का आमतौर पर पोधों के ऊपर सें तोड़ने की प्रथा है, हरसिंगार के फूलों को धरती पर से ही चुन लिया जाता है। भगवान (हरी) श्रृंगार करने के लिए फूलों का व्यापक उपयोग होने के कारण ही इसका नाम हरसिंगार पड़ा है। हरिद्वार में सुबह होते ही बच्चे अपनी नन्हीं–नन्हीं टोकरियों लेकर हरिसिंगार के फूल चुनने निकल जाते हैं। फूलों की भूरी तश्तरियां बैठकों में सजाई जाती हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बंगाल और बिहार की संस्कृति में हरसिंगार रम गया है। बिहार के आदिवासी इसे सम सिंहार कहते हैं। इस शब्द का अर्थ है कल्याण करने वाले शंकर का श्रृंगार। दक्षिण शेणनद के तटवर्ती प्रदेशों में स्त्रियों सम सिंहार के फूलों को चुनने का त्यौहार मनाती हैं। इस दिन का यह त्यौहार आश्विन महीने की अमावास से शुरू होता है। तड़के ही तरूणियों की टोलियां रात भर झड़े हुए फूलों को चुनने निकलती हैं। फूलों की टोकरियां लेकर ये घर लौटती हैं और नौ दिन तक वे शंकर की प्रतिमा पर ये फूल चढ़ाती हैं। दसवें दिन पूजा में चढ़ाए सम सिंहार के फूलों और पत्रों को प्रतिमा की नदी में प्रवाह कर देती हैं।

बाहरी हिमालय की पर्वत श्रेणियों में से लेकर नेपाल, असम, बंगाल और मध्य भारत में गोदावरी के दक्षिण की ओर तक शेफालिका पाई जाती है हरिद्वार में चंडी और मनसा देवी पहाडियों पर यह खूब पैदा हो रहा है। बहुत से भागों में बोया भी जाता है। हरसिंगार बहुत जल्दी उग आता है और उपयोगी ईंधन देता है। वृक्ष का जीवन हालांकि छोटा नहीं है, पर पुराने वृक्ष इतने सुन्दर नहीं दिखते, इसलिए इन्हें कुछ वर्ष के बाद उखाड़ कर पौधे लगा दिए जाते हैं।

यह बहुशाखी बड़ी झाड़ी या छोटा वृक्ष है जो पत्ते झड़ जाने से कुछ महीनों नंगा खड़ा रहता है। छाल मोटी, खुरदरी और हल्के भूरे रंग की होती है। छोटी शाखाएं स्पष्ट रूप से चार कोनों वाली होती है। सारा पौधा खुरदरा होता है। और इस पर कठोर सफेद बाल रहते हैं। छोटे डंठलों के सिरों पर घने गुच्छों में तीन से पांच तक फूल खिलते हैं। इनके पंखुड़ियों का निचला भाग जुड़ा होता है और एक नलिका के रूप में बन गया होता है। जिसे पुष्प नाल कहते हैं। यह चमकीली नारंगी वर्ण की होती है। पंखुड़ियों के ऊपर के भाग जो आपस में जुड़े हुए नहीं होते एकदम सफेद होते हैं।

हारसिंगार की पुष्प नालों में लाल रंग का रंजक पदार्थ पाया जाता है जो पानी में घुल जाता है। सामान्यता यह दूसरे रंगों के सहायक के रूप में काम आता है। इससे प्राय मदिराओं को रंगा जाता है। पुष्प नालों से रेशमी और सूती कपड़े भी रंगे जाते हैं। पर दुर्भाग्यवश इस सुन्दर नारंगी या सुनहरे पीले वर्ग को पक्का बनाने के उपाय अभी मालूम नहीं किए जा सके हैं। वर्मा में बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों को रंगने के लिए इस रंग का बड़ा आदर है। पंखुड़ियों के सफेद भागों से कभी–कभी जामुनी रंग निकाला जाता है। भीतरी छाल से भी लाल रंग प्राप्त किया जा सकता है। चौपड़ा और उनके सहकर्मियों (1948) ने लिखा है कि हरसिंगार के फूलों से खुशबूदार उड़नशील तेल निकाल कर उसे व्यापार में लाने की संभावना पर खोज की जानी चाहिए। आयुर्वेद के महर्षि हरिसिंगार को

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चिकित्सा में काम लाते थे। बुखार में इसके पत्ते उपयोगी माने जाते हैं। ताजा पत्तियों और अदरक का रस शहद के साथ देने से पसीना आकर बुखार उतर जाता है। पुराने बुखारों में पत्तों के ताजे रस को शहद के साथ पिलाते हैं। खांसी और दमे में पत्तों के चूर्ण को 120–145 मिलीग्राम की मात्रा में पान के साथ देते हैं। छाल को उपयोगी कफ–निस्सारक समझा जाता है। आमवात में भी इसके पत्ते उपयोगी माने जाते हैं। मंद आंच पर पत्तों को पानी के साथ पका कर बनाया हुआ काढ़ा शियाटिका में फायदा करता है।

बीजों को त्वचा के रोगों में उपयोगी माना जाता है। बीजों को पानी में पीस कर गंज पर लगाते हैं। कृमियों के उपद्रव के कारण बाल झड़ रहे हों तो इस लेप से लाभ मिलता है। फूलों से एक केश तेल बनाया जाता है। सर्पदंश की चिकित्सा में भी हारसिंगार प्रयोग किया जाता है।

112. शैलेय (छड़ीला)
(Prmelia perlata Ach)

शैलेय : रघु.स. 6/51, कुमार स. 1/55

अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि, शैलेयगन्धीनिशिलातलानि।।

रघु.स. 6-51

वर्षाकाल में जल के कणों से निर्मित शिलाओं पर उत्पन्न शैलेय एवं शिलाजीत के सुगन्धित शिलाओं पर बैठ कर भौरों का नृत्य देखा।

मन : शिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेय नद्धेषु शिलातलेषु।।

कुमा.स. 1/55

शिलाजीत एवं शैलेय से व्याप्त पत्थरों में बैठकर शंकर भगवान की सेवा में उपस्थित रहकर आनन्द मनाते थे।

शैलेय का सामान्य परिचय : Prmelia perlata Ach

इसे साधारण भाषा में छड़ीला कहते हैं। यह द्रव्य पहाड़ी जमीन के पत्थरों एवं वृक्षों पर उत्पन्न होता है। यह अपुष्पवर्ग का द्रव्य है। इसका उपरी पृष्ठ काला एवं नीचे की सतह सफेद होती है। इसकी कई जातियां हिमालय में पाई जाती हैं। छरीला शीतल, सुगन्धित, हृद्य, मूत्रल, व्रण, कण्डू, रक्तविकार, एवं तृषा तथा दाह में उपयोगी है। यथा–

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

शैलेय कटुकं शीत सुगन्धिलघुहृद्यकम्।
रूच्यं च कफपित्तघ्नं, दाहतृष्णा बमिप्रणुत्।।
श्वासं व्रणं च कण्डूं च कुष्ठाश्मरी विषज्वरान्।
रक्तदोष वातरोगं रक्तार्श चैव नाशयेत्। **निर.र.**

113. शैवाल (एलगी)

शैवाल : रघु.स. 5/46, 16/61 अभि.आ. 1/18

शैलोपम : शैवाल मज्जरीणां, जालानिकर्षुन्नुरसा सपश्चात्।।
रघु.स. 5/46

पर्वत के समान वह हाथी हृदय से सिवार की मज्जरी के समूहों को खींचता हुआ, अपने हिलाये हुये जलसमूह वाले नदी के प्रवाह से किनारों पर पहुंच गया।

परिप्लवा स्त्रोतसि निम्नगायाः शैवाल लोलाश्छलपन्तिमीनान्।।
रघु.स. 16/61

सुन्दरियों के जल में विहार करने पर उनके कानों से गिरे हुये शिरीष पुष्प शैवाल (काई) के साथ मिलकर मछलियों को ठगते हैं ऐसी कवि की कल्पना है।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापिरम्यं,
मलिनमणिहिमांशोलक्ष्मलक्ष्मीतनोति। **अभिज्ञा.अ. 1/18**

इस प्रकार से कतिपय सन्दर्भ स्थल शैवाल के संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है।

वक्तव्य :

निघण्टु ग्रंथों के आधार पर शैवाल संदिग्ध द्रव्य माना जाता है। कुछ विद्वान् जल कुम्भी सद्यश द्रव्य विशेष को शैवाल मानते हैं परन्तु कवि ने सन्दर्भ स्थलों के अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रायः जल में तैरता रहता है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने जलमुस्तक के पर्यायों में शैवाल का उल्लेख किया है। अतः संहिता एवं निघण्टुग्रन्थों के आधार पर संदिग्ध द्रव्य है। बाल्मीकीय रामायण में शैवाल जलद द्रव्य काई सुन्दरकाण्ड के 57/2 आकाश की तुलना, किष्कन्धा काण्ड के 30/55 माल्यवान पर्वत पर युद्धकाण्ड के 58/30 आन्त्र की तुलना से एवं उत्तरकाण्ड 77/5 वन सरोवरों के प्रसंग में उल्लेख मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

114. सप्तपर्ण (छितवन)

(Alostonia scholaris R. Br.)

सप्तपर्ण : रघु.स. 4/23, 5/48, ऋतु.स. 3/23 अभिज्ञान.अ. 1/30

प्रसवै : सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्त्रुवुः।। रघु.स. 4/23

कवि ने सप्तपर्ण के पुष्पों की सुगन्धी की विशेषता व्यक्त की है।

सप्तच्छद क्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाध्रय मदंतदीयम्। रघु.स. 5/48

सप्तपर्ण वृक्ष के दूध के समान कटु प्रवाह वाले उसके मदकी गन्धि की ग्रहण कर महावतों के तीव्र प्रयत्नों को भी न मानकर सेना के हाथी पीछे को भागे।

सप्तचछदैः कुसुमभार नतैर्वनान्ताः,
शुल्कीकृतान्युपवनानि च मालितीभिः।। ऋतु.स. 3/2

कवि ने शरद ऋतु का वर्णन करते हुये सप्तपर्ण से पुष्पित शाखायें नीचे को झुकी हुई सुगन्धित हैं उल्लेख किया है।

सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्री।। ऋतु.स. 3/13
प्रच्छाय्यशीतलायां सप्तपर्ण वेदिकाया मुपविश्य। अभिज्ञान.अ. 1/30

प्राचीन काल में सप्तपर्ण वृक्ष का उपयोग छायादार वृक्षों के रूप में किया था ऐसा कवि ने स्पष्ट किया है।

सप्तपर्ण का सामान्य परिचय : Alostonia Scholaris R.Br.

छतिवन के सदाहरित दुग्धमय विशाल वृक्ष होते है। शाखायें एवं पत्र चक्रिक क्रम से निकलते रहते हैं। पर्ण–चक्र में 3–9 चिक़ने आयताकार चमकीले एवं अधोपृष्ठ श्वेताभ होता हैं पुष्प श्वेत गुच्छों में एवं सुगन्धित होते हैं। छाल अग्निदीपक, उष्ण, सारक, कुष्ठ, रक्तविकार श्वास तथा गुल्मनाशक है। इसके अतिरिक्त छाल का उपयोग ज्वर, विषमज्वर अतिसार प्रवाहिका, चर्मरोग एवं कृमि में भी किया जाता है। चर्मरोगों पर क्षीर का लेप लाभदायक है। यथा–

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

त्रिदोष शमनोहृद्यः सुरभिर्दीपनसरः।
शूलगुल्म कृमीन्कुष्ठं हन्तिशाल्मलिपत्रकः।। ध.नि.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाल्मीकीय रामायण में छितवन का किष्कन्धा काण्ड के माल्यवान पर्वत के प्रसंग में वर्णन मिलता है।

115. सर्ज (शालनिर्यास)

(Vateria indica Linn)

सर्ज : ऋतु.स. 2/19. 3/13,

कदम्बसर्जार्जुननीयकेतकीः,
समीरणः कं न करोति सोत्सुकम्।। **ऋतु.स. 2/19**

कवि ने कदम्ब सर्ज, अर्जुन आदि प्रमुख वृक्षों का कतिपय स्थलों पर वर्णन किया है।

मुक्त कदम्वकुटजार्जुन सर्ज नीपान्
सपृच्छदानुपगता कुसुमोद्‌गमश्री।। **ऋतु.स. 3/13**

महाकवि ने शरद् काल में पुष्पित कदम्ब कुटज सर्ज आदि वृक्षों का सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

वक्तव्य :

भावप्रकाश निघण्टु कार के मतानुसार शाल भेद को सर्ज वृक्ष माना गया है जिसे Vateria Indica कहते हैं। संहिता ग्रंथ में लघुसर्ज, नदी–सर्ज, नीलसर्ज आदि नामों का कतिपय स्थलों पर उल्लेख आया है। कुछ विद्वान "शालसर्जतरूस्मृतः" यह मानते हैं। अजकर्ण अश्वकर्ण आदि नाम एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। सर्ज को देवधूप भी कहा गया है। **यथा–**

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

सर्जः सर्जरसः कालकूटो रजोद्‌भवः।
वस्त्रकर्ण कषायी च, लेखनों गन्धवृक्षकः।
वंशश्च शालनिर्यासो दिब्यसारः सुरेष्ठकः।
सर्जयुग्मं कषायं स्यात् वर्ण्य रूक्षं काफापहम्।

बाल्मीकीय रामायण में सर्ज (शालपुष्प) किष्कंधा काण्ड के 27/10 प्रस्त्रवणगिरि के प्रसंग में एवे माल्यवान् पर्वत के प्रसंग में वर्णन मिलता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

116. सरल (चीड़)

(Pinus longifolia Roxb)

सरल : रघु.स. 4/15, कुमा.स. 1/9, पूर्व.मे. 55

सरलासक्तमातङ्ग ग्रैवेयस्फुरितत्विषः।
आसन्नोषधो नेतुनक्त मस्नेह दीपिका।। **रघु. 4/15**

सरल वृक्षों में बंधे हुये गजवेलों में प्रतिविम्व पड़ने से अधिक कान्तिमान औषधी रात्री में बिना तेल के दीपक के समान प्रतीत हुई।

कपोलकण्डू करिभिर्विनेतुं विघट्टितानांसरलद्रुमाणाम्।। **कुमार.1-9**

सरल वृक्ष का उपयोग हाथियों के गण्डस्थल की खुजली मिटाने हेतु किया गया है। हिन्दी टीकाकरों ने सरल वृक्ष से देवदार अर्थ किया है। वास्तव में देवदार से भिन्न वृक्ष सरल (चीड) है,जोकि देवदार से मिलता जुलता है।

'सरलस्कन्ध संघट्टजन्मा' **पूर्व मेघ 55**
सरल देवदारु वृक्ष इति केचित्'

सरल का सामान्य परिचय : Pinus Longifolia Roxb

यह हिमालय के ढलानों पर समूह रूप में पैदा होने वाला वृक्ष है। साधारण भाषा में इसे चीड़ या इसके निर्यास को गंध विरोजा कहते हैं। देखने में ये वृक्ष बहुत सुन्दर होते हैं। काण्ड पर चीरा लगाने से गाढ़ा स्राव निकलता है जिसे विरोजा कहते हैं। यह विरोजा बहुत उपयोगी द्रव्य है। इससे तारपीन का तैल एवं विरोजा तैयार किया जाता है। इसका उपयोग मलहम, प्लास्टर आदि बनाने के काम में भी किया जाता है।

पहाड़ी क्षेत्रों के वनसम्पदा का यह महान उपयोगी वृक्ष है। करोड़ों रुपयों का लाभ देश को इन वृक्षों से उललब्ध है। **यथा –**

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

चीड़ कंटूष्णा कासध्नी, कफजित्दीपनीपरा।
अत्यन्त सेवितासा तु, पित्तदोषश्रमापहा। **रा.नि.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यह त्वचा के रोग सूजन, कण्डू और व्रणरोपक है। बाल्मीकीय रामायण मे सरल वृक्ष का अयोध्याकाण्ड में राजादशरथ के दाहसंस्कार के प्रसंग में उल्लेख है।

117. सहकार (आम)

(Mangipfera indica Linn)

सहकार : अभि.शा. 4/15, रघु.स. 4/9, 8/61, 9/33, 16/54, 19/46, कुमा. स. 4/38, विक्र. 2/20, ऋतु. 6/22, 26, मान.वि. 5/4.

सहकार शब्द आम के लिये आया है।

आम के पर्याय : आम्र प्रोक्ता सहकारेऽति सौरभः।
कामांङ्गो मधुदूतश, माकन्दःपिकवल्लभः।। **भा.नि.**

आम के पुष्प अतिसार, प्रमेह, कफ पित्त एवं विकृत रक्तरोग नाशक हैं। पके हुये आम वीर्यवर्धक, सुखदायक, हृदय के लिये हितकारी, वर्ण को सुन्दर करने वाला, शीतल एवं शुक्रवर्धक है। कच्ची अंभिया गरम, खट्टी, रूचिकारक मलरोधक, प्रमेहनाशक एवं अतिसार में उपयोगी है। आम की गुठली का चूर्ण मधुमेह में उपयोगी है। देखिये आम्र।

118. सिद्धार्थ (सरसों)

(Brassica campestris Linn)

सिद्धार्थे : (सरसों) कुमा.स. 7/7

सा गोर सिद्धार्थ निवेशवब्दिदूर्वा प्रवालैः प्रतिभिन्नशोभाम्।।

कुमा.स. 7/9

पार्वती ने वाण के साथ सफेद सरसों से मुक्त दूबो से शोभित स्नानीय कौशेयवस्त्र को धारण किया। भारतीय संस्कृती में गौरसर्षप भूतवाधाहर एवं कृमिघ्न माना गया है। निघण्टु एवं संहिता ग्रंथों में सित असित रंगभेद से दो प्रकार की सरसों मानी गई है।

सरसों का सामान्य परिचय : Brassica Campesteris

इसकी प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है। यह एक वर्षायु क्षप है। पत्तियों का शाक बनाया जाता है एवं इसके बीजों से तैल निकाला जाता हैं इसके रंग भेद से कई प्रकार पाये जाते हैं। जिसमें मुख्य राजिका (राई) है। यथा –

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

सिद्धार्थ कटुतिक्तोष्णों वातरक्त ग्रहापह :।
त्वग्दोषशमनो रुच्यो विषभूत व्रणापहः।। **रा.नि.**

119. सिन्दुवार (निर्गुण्डी)
(Vitex negundo Linn.)

सिन्दुवार : कुमार. 3/53

सिन्दुवार **Vitex Negundo Linn.**

मुक्ताकलापी कृतसिन्धुवारं, वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती।। कुमा. 3/53

कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये स्पष्ट किया है कि पद्म रागमाणि के समान लाल अशोक के सुवर्ण के समान पीले कर्णिकार के मोती के समान सफेद सिन्दुवार के वसन्त ऋतु में उत्पन्न होने वाले फूलों से बने आवरण को धारण करने वाली पार्वती को देखो। यह वसन्त ऋतु में पुष्पित होने वाला पौधा है।

वक्तव्य :

अधिकतर विद्वानों ने निर्गुण्डी का पर्याय सिन्दुवार श्वेत पुष्प विशेष निर्गुण्डी की दूसरी प्रजाति है। संहिता ग्रंथों में सितसिन्धुवार सिन्धुवाटिका आदि कतिपय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नामों का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः Vitextrifolia सिन्धुवार हो जिस पर विद्वानों को विचार करना है। गुणधर्मों के आधार पर भी सिन्दुवार एवं निर्गुण्डी में कुछ भिन्नता पाई जाती है।

पर्याय : सिन्दुवारश्वेतपुष्पःसिन्दुकः सिन्दुवारकः।
सिन्दुवारः कटुतिक्तः कफवात क्षयापहः। रा.नि.

120. स्थल पद्‌मिनी (ब्रह्मकमल)
(Sassurea Ovalata)

साभ्रेऽह्नीव स्थल कमलिनीं न प्रवुद्धां न सुप्ताम्।। उत्तर मे. 30

ब्रह्मकमल Saussurea Obvallata Wall

महाकवि कालिदास ने उत्तरी हिमालय के प्रसंग में स्थलकमलों का निर्देश किया है जो कि बर्फीले स्थानों पर पाया जाता है। लेखक के विचार से हिमालय के विशेष ऊंचाई पर उपलब्ध ब्रह्मकमल फेंनकौंल ही स्थलकमल है जोकि बिना तालाबों के उत्पन्न होते हैं। इसे वनस्पतिशास्त्र के आधार पर ससूरिया ओवेलाटा कहते हैं। तथा स्थानीय लोग इसे ब्रहमकमल कहते हैं। पुष्प खिलने पर उग्रसुगन्धी वाला होता है। हिमालय में इसकी कई प्रजातियां पाई जाती हैं। केदारनाथ, बद्रिनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री के मन्दिरों में इसके पुष्पों से विशेष रूप से पूजा की जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

121. स्यन्दन (सादन)
(Ougenia dalbergioides Benth)

सयंन्दन : कुमा.स. 19/10, अभिज्ञान, 1/35.

तत्स्यन्दनः सपदि सारथि संप्रणुन्न,
प्रक्षुब्ध वारिधरधीरगंभीरघोषः।
चण्डश्चचाल दलिताखिल शत्रुसैन्य,
मांसास्थिशोणित विपङ्कविलुपृचक्रः।। कुमा.स. 119/10

शीघ्र ही सारथी द्वारा हांका गया स्यन्दन वृक्ष द्वारा निर्मित रथ प्रलयकालीन भयंकर बादलों की भांति घरघराता हुआ अत्यन्त गंभीर ध्वनि के साथ वेग से चल पड़ा।

धर्मारण्यं विरुजतिगजः स्पन्दनालोक भीतः।। अभि. 1/35

स्टानदन वृक्ष के काष्ठ का उपयोग रथ के पहियों के निर्माण हेतु प्राचीन काल से किया जाता है।

स्यंन्दन का सामान्य परिचय : Ougenia Dalbergides Benth

सांदन के मध्यम आकार के वृक्ष 1,500 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। शाखा पतली श्वेताभ होती है। पुष्प श्वेत गुलावी रंग के गुच्छों में खिलते हैं। इसका काष्ठ बहुत मजबूत होने के कारण प्रायः गाड़ी के धुरों के लिये काम में लाया जाता है। इसी कारण इसे रथद्रु भी कहा गया है।

आयुर्वेद में गुणधर्म :

गुणों की दृष्ठी से यह ग्राही कफपित्त शामक, वयःस्थापन, कुष्ठध्न, प्रमेह व्रण एवं कृमिनाशक है। छाल संग्राहक एवं रक्तपित्तशामक है। गर्भपात रोकने के लिये पुष्पों का उपयोग मिश्री के साथ देने पर लाभ होता है। यथा –

तिनिशस्तु कषायोष्णः कफरक्तातिसारजित्।
ग्राहको दाहजननो वातामय हरःपरः।। रा.नि.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

122. हरिचन्दनः (चन्दन)

हरिचन्दनः रघु.स. 3/59, 6/60, कुमार.स. 5/69, अभिज्ञा.आ. 7/2

ततः प्रकोष्ठे हरचन्दनाङ्कि ते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम्।।

रघु.स. 3/59

तव रघु ने हरिचन्दनयुक्त इन्द्र के पहुंचे पर मथते हुये सागर को समान घोर शब्दायमान धनुष की प्रत्यञ्चा को वाण से छेदन किया।

क्लृप्तांग रागो हरिचन्दनेन।। **रघु.स. 6/60**

कन्धे पर हार लटकाये हरिचन्दन से अंगारयुक्त यह पाण्डु देश का राजा प्रातःकाल की धूप से लाल शिखर युक्त पर्वतराज के समान शोभित हुआ।

स्तनद्वयेऽस्मिम्न्हरिचन्दनास्पदे, पदं चिताभस्मरजः करिष्यति।।

कुमार.स. 5/69

हरिचन्दन लेपन योग्य तुमारे इस स्तन द्वय पर शंकर के वक्षस्थल का चिताभस्म सम्पर्क करेगा।

आभृष्ठ वृक्षो हरिचन्दनाङ्का, मन्दारमालाहरिणापिनद्धाः।

अभि. 9/2

पश्यहरिचन्दनेन स्तनमध्योच्छ्वा सिना कथितम्। **विक्र. 1/6**

हृदय पर लगाये गये हरिचन्दन का लेप भी शीतलकाल को प्रदान कर रहा है।

हरिचन्दन से श्वेत चन्दन का प्रयोग किया जाते है। चन्दन का लेप देवताओं की पूजा में विशेष रूप से किया जाता है। इसीलिये इसे हरिचन्दन कहते हैं।

चन्दन का सामान्य परिचय : Santalum Album Linn

यह दक्षिण भारत, मैसूर, कूर्ग, मालावार आदि प्रदेशों के जंगलो में पाया जाता है। चन्दन का तैल भारत वर्ष में प्रसिद्ध है। श्वेत चन्दन के मध्यम आकार के सदाहरित वृक्ष होते हैं। काष्ठसार सुगन्धित होता है। पुराने वृक्षों का पीताभ भूरे रंग का काष्ठ उपयोगी माना जाता है। कुछ विद्वान चन्दन सद्यश गुणकारी अन्य प्रजाति को हरिचंदन कहते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेद में गुणधर्म :–

यह तिक्त, मधुर कटुवितपाक एवं शीतवीयर्य कफपित्तशामक हृद्य, ज्वरघ्न, दाहप्रशम में मूत्रजनन, मूत्रमार्ग विशोधन, दुर्गन्धहर वर्ण्य एवं विषघ्न है। यथा–

हरिचन्दन तुदिब्यं तिक्तहिमं तदिहंदुर्लभ मनुजे।
पित्ताटोप विलेपी च, दवथुश्रमशोषमान्द्यतापहरम्।। **शा.नि.**

सन्दर्भ ग्रंथ

(अ) कालिदास के ग्रंथ :

अभिज्ञान शाकुन्तलम् राघवभट्ट कृतटीका निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

ऋतुसंहार, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी।

कुमारसम्भव, डा. सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

मालवाग्निमित्रम्, संस्कृत हिन्दी टीका सहित वाराणसी

मेघदूत, मोहनदेव पन्त कृत व्याख्यासहित

रघुवंश महाकाव्य, मल्लीनाथ टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

विक्रमोर्वशीय, साहित्य अकादमी नई दिल्ली

(ब) अन्य सहायक ग्रंथ :

1. संस्कृत साहित्य मां वनस्पतिया वापालाल ग. वैद्य सूरत, गुजराती भाषा 2. बाल्मीकीय रामायण में आयुर्वेद वेद्य अम्बालाल, जोधपुर, 3. कालिदास के पक्षी, हरिदत्त वेदालंकार गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय 4. चरक संहिता आयुर्वेद दीपिका व्याख्या तथा जल्यकल्पतरु टीका सहित, 5. सुश्रुतसंहिता डल्हणटीका सहित, 6. प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम् डा. मायाराम उनियाल, 7. भावप्रकाश निघण्टु विद्योतनी टीका, 8. धन्वन्तरि निघण्टु सहित राजनिघण्टु, विनयगणेश आपटे, 9. शालिग्राम निघण्टु लाला शलीग्राम जी वैश्य, खेमराज, श्रीकृष्णदास निर्णय सागर प्रैस, बम्बई, 10. निघण्टुरत्नाकर निघण्टुखण्ड भाग–2, 11. कालिदास की वनस्पतियाँ वैद्य मायाराम उनियाल सचित्र आयुर्वेद श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना, वर्ष 1975–76. 12. पर्यावरणविशेषांक सचित्रआयुर्वेद; पटना।

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No.........................
Book No.........................
Acc No.........................

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेखक

डा. मायाराम उनियाल

जन्म स्थान : दोणी, कोटीफैगूल, टिहरी गढ़वाल, उ.प्र.।

जन्म तिथि : ३-५-१९४०।

सहायक निदेशक (आयुर्वेद) केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार) नई दिल्ली।

मानद उपाधि : वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका) आयुर्वेद पुर्नवसु (भारत)।

शोधपत्र : राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय आयुर्वेद पत्र, पत्रिकाओं में लगभग ४०० शोध पत्रों का हिन्दी, अंग्रेजी में प्रकाशन।

प्रकाशन :

१. उत्तराखण्ड वनौषधि दर्शिका (सचित्र) केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (भारत सरकार) नई दिल्ली।

२. अष्ठांग संग्रह की वनस्पतियां, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. पटना।

३. मेडिसिनल फ्लोरा आफ गढ़वाल हिमालय सचित्र, [illegible]जी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, लि. नागपुर, महामहिम राष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा जी द्वारा विमोचन।

४. प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्यगुण विज्ञानम् सचित्र, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. पटना, स्वास्थ्य मंत्री करतारी देवी हरियाणा सरकार द्वारा विमोचन।

५. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण एवं कालिदास की वनस्पतियां (सचित्र) श्री शर्मा आयुर्वेद मन्दिर, दतिया, म.प्र.।

६. लद्दाख हिमालय की वनस्पदा एवं तिब्बती चिकित्सा प्रणाली। डाबर इण्डिया द्वारा आयुर्वेद विकास में प्रकाशित सचित्र लेखमाला एवं केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान परिषद् द्वारा पुरस्कृत।

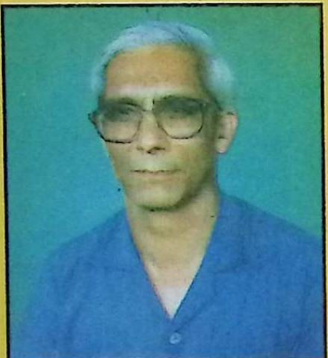

७. बिहार के छोटा नागपुर एवं संथाल परगना के आदिवासी जनजातियों में लोकप्रचलित जड़ी-बूटियों से उपचार। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. पटना प्रैस में प्रकाशनाधीन।

८. कतिपय राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों में आयुर्वेद प्रदर्शनियों का आयोजन एवं शोध पत्र प्रस्तुत।

९. वर्ष १९९३ में हर्ब्बल एकेडमी एवार्ड से सम्मानित।

१०. विदेशयात्रा— श्री लंका, ब्राजील, सिंगापुर, बैंकाक, नेपाल, मौरेसिस।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection